गुरुदत्त साहित्य

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकाल

गुरुदत्त

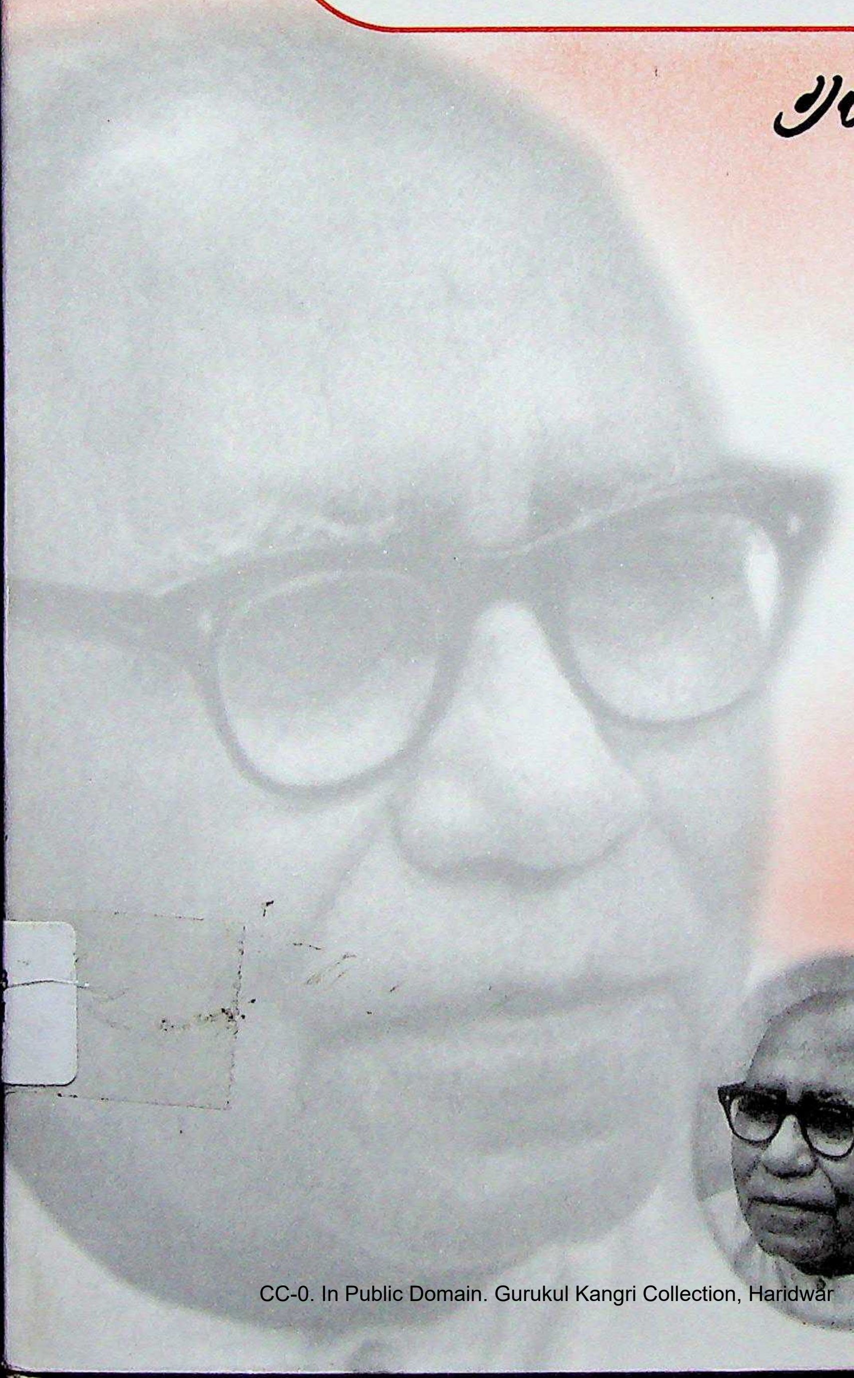

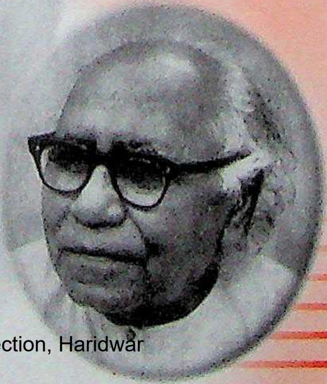

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

167962

श्री गुरुदत्त के कुछ चुने हुए उपन्यास

राजनीति पर आधारित

स्वाधीनता के पथ पर, पथिक, स्वराज्यदान, विश्वासघात, देश की हत्या, दो लहरों की टक्कर, दासता के नये रूप।

पौराणिक कथाओं के आधार पर

कुमार सम्भव, उमड़ती घटाएं, (राम कथा पर आधारित) अमृत-मंथन, परम्परा, अग्नि परीक्षा, (महाभारत पर) परित्राणाय साधूनाम्।

ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि पर

विक्रमादित्य, पुण्यमित्र, लुढ़कते पत्थर (अशोक-कालीन), पत्रलता (हर्षवर्धन पर), गंगा की धारा (अकबरकालीन), खण्डहर बोल रहे हैं (औरंगज़ेब के काल पर)

सामाजिक उपन्यास

अनदेखे बन्धन, एक और अनेक, मानव, गुण्ठन, आवरण, यह संसार, धरती और धन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकाल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकाल

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web: aarshsahitya.com

Central Library
167962
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

गुरुदत्त

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web: aarshsahitya.com

081
167962

हिन्दी साहित्य सदन
नई दिल्ली-110005

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web: aarshsahitya.com

R
089.9143
GUR-M

© हिन्दी साहित्य सदन

मूल्य : ₹ 250.00

प्रकाशक : **हिन्दी साहित्य सदन**
2 बी. डी. चैम्बर्स, 10/54 देशबन्धु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005
फोन : 23553624, 23551344; फैक्स : 23553624
email : indiabooks@rediffmail.com

संस्करण : 2012

मुद्रक : अजय प्रिंटर्स, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम परिच्छेद

मध्य रात्रि व्यतीत हो चुकी थी। दूर कोई पुरुष मधुर, रसमयी ध्वनि में गा रहा था। साथ वीणा बज रही थी। रात्रि की निस्तब्धता में यह ध्वनि खुली खिड़की में से होकर राजप्रासाद के शयनागार में भी पहुँच रही थी।

महाराज विक्रमादित्य अपनी दोनों पत्नियों के साथ पलँग पर क्रीड़ा करते हुए सो गए थे, परन्तु इस मधुर गान और वीणा की स्वर-लहरी ने उन्हें जगा दिया। कुछ देर तक वह अपनी पत्नी कुबेर के बाहुपाश में बँधे हुए लेटे रहे और वीणा तथा गाने की मधुर ध्वनि को सुनते रहे, परंतु जब गीत का भाव समझ में आने लगा तो वह पत्नी की भुजाओं को अपने गले से निकाल उठकर पलँग पर बैठ गए। उनकी दूसरी पत्नी, जो उनके दूसरी ओर लेटी हुई थी, पलँग पर बैठी संगीत सुन रही थी।

ध्रुवदेवी महाराज को उठकर बैठते देख मुस्कराती हुई महाराज की ओर देखने लगी। महाराज ने उसे बैठे देख पूछ लिया, ''तो तुम जाग रही हो?''

ध्रुवदेवी ने अधरों पर उँगली रखते हुए महाराज को चुप रहने का संकेत दिया। वीणा बज रही थी और गाने वाला गा रहा था :

है चला जा रहा महाकाल...

गायन में रस था, भाव था और स्वर-वैचित्र्य था।

महाराज विक्रमादित्य को राजगद्दी पर बैठे बीस वर्ष से ऊपर हो चुके थे। महाराज तो स्वयं प्राय: पाटलिपुत्र में ही रहते थे। उनका प्रतिनिधि वर-रुचि मंत्री के रूप में उज्जयिनी में राज्य चलाता था।

ध्रुवदेवी को पाटलिपुत्र का जलवायु अनुकूल नहीं बैठता था और वह प्राय: उज्जयिनी में ही रहती थी। महाराज दूसरी पत्नी कुबेर के साथ वहाँ आया-जाया करते थे।

लगभग एक वर्ष की अनुपस्थिति के उपरांत विक्रम उज्जयिनी में दो दिन हुए आए थे। आज शयनागार में सोये-सोये इस रसमयी मधुर ध्वनि से उनकी नींद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुल गई। विक्रम को यह देख विस्मय हुआ कि ध्रुवदेवी पहले ही जाग रही थी। जब वह अपना विस्मय उससे प्रकट करने लगे तो उसने होंठों पर उँगली रखकर महाराज को चुप रहने के लिए कह दिया। गानेवाला गा रहा था—

है चला जा रहा महाकाल…

कुछ समय तक वीणा बजती रही और गाने वाले ने आगे गाना आरंभ कर दिया—

टिक-टिक करता चला जा रहा है जीवन का विकराल काल।
खेल-कूद में निकल गया है बाल्यकाल और यौवन जाल॥
है चला जा रहा महाकाल…

ध्रुवदेवी और विक्रम मंत्रमुग्ध हुए सुन रहे थे। कुछ समय तक वीणा झंकार करती रही। गाने वाले ने फिर गाना आरंभ कर दिया—

अति सुन्दर लुभायमान है यौवन में उन्माद भरा यह।
फूल-फूल पर फुदक-फुदक कर करता रहता जीवन रसाल॥
है चला जा रहा महाकाल।

विक्रमादित्य कुछ पूछना चाहते थे, परंतु ध्रुवदेवी अभी भी संगीत सुनने का आग्रह कर रही थी। गीत चल रहा था—

जल कुम्भ में हो छेद जैसे जीवन रस रिसता है वैसे।
रिक्त कुम्भ की भाँति ही तो जीवन का है अन्तकाल॥
है चला जा रहा महाकाल।
इसमें रस नित भरता जा तू बूँद-बूँद कर जीवन घट को।
अंतकाल तक रहे भरा यह सुकर्मों से हो जग निहाल॥
है चला जा रहा महाकाल।
जीवन के अवलोकन पर तब पाएगा अवशेष बहुत हैं।
किया हुआ है तुच्छ कार्य अनकिया हुआ है अति विशाल॥
है चला जा रहा महाकाल…

वीणा तो गीत समाप्त होने पर भी बज रही थी और बीच-बीच में यह स्वर गूँजने लगता था—*है चला जा रहा महाकाल।*

शयनागार की निस्तब्धता भंग की ध्रुवदेवी ने। उसने पूछा, "तो नहीं समझे महाराज?"

"नहीं, यह कौन है? यह कविजी महाराज तो नहीं?"

"हाँ, आपके मित्र महाकवि मातृगुप्त।"

"ओह, समझ गया, कालिदास!"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''हाँ, महाराज। यह अपने परिचितों से कहते रहते हैं कि उनका नाम मातृगुप्त है।''

''यह अपने माता-पिता का नाम नहीं जानता। अपने पालने वाले को ही जानता है। वह भी अब नहीं रहा। इसी कारण वह अपने को मातृगुप्त के नाम से विख्यात कर रहा है।''

''रात के समय, जब यह गाता है तो पूरा राजमहल गूँज उठता है।''

''जीवन से कुछ निराश प्रतीत होता है।''

''उसके स्वर से तो ऐसा प्रतीत नहीं होता! गीत के भाव में भी निराशा अनुभव नहीं होती। एक लंबी जीवन-यात्रा का ही संकेत प्रतीत होता है। यह कह रहा है कि इस यात्रा में अभी करने को बहुत कुछ शेष है।''

''यह यहाँ दिनभर क्या करता रहता है? अब तो यह मुझे मिलने भी नहीं आता।''

''परंतु आपने उसे कभी बुलाया भी तो नहीं।''

विक्रमादित्य इससे गंभीर विचार में मग्न हो गए। महाराज को चुप देख ध्रुवदेवी ने वह दिन स्मरण करा दिया जब मंत्रिमंडल छोटे भाई के स्थान पर बड़े भाई को शासक बनाना चाहता था। उस समय राजधानी पाटलिपुत्र के लक्ष-लक्ष नागरिक राजमहल को घेरकर खड़े हो गए थे। उस लाखों की भीड़ के नेता कविवर कालिदास ही थे। मंत्रिमंडल में हो रही चर्चा पर इस नागरिकों के प्रदर्शन का ही प्रभाव हुआ था कि छोटा भाई राजगद्दी पा गया था।

विक्रमादित्य को स्मरण आया तो क्षमा भाव से कहने लगे, ''हाँ, मुझे उसे स्मरण रखना चाहिए था।''

राजकुमार की साहित्यिक गोष्ठी के प्राय: सभी सदस्य, कुछ तो जीवन-कार्य से मुक्त हो चुके थे अथवा कई किसी न किसी राज्य-कार्य पर नियुक्त थे। कालिदास ने कभी राज्य-कार्य में रुचि प्रकट नहीं की थी और न ही विक्रमादित्य ने उसे किसी राज्य-कार्य के योग्य समझ उसकी किसी पद पर नियुक्ति की थी।

पलँग पर हलचल और वार्तालाप होता सुन महाराज की दूसरी पत्नी कुबेर की भी नींद खुल गई। वह भी उठकर बैठ गई और विस्मय में अपने पति और सहपत्नी की ओर देखने लगी।

''कुबेर, तुम अभी सो सकती हो। रात्रि अभी एक प्रहर से अधिक शेष है।''

कुबेर ने मुस्कराते हुए पूछ लिया, ''और आपके लिए दिन निकल आया है?''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर तीनों हँसने लगे। विक्रम ने पूछा, ''कुबेर, सुनो और बताओ कि यह कौन गा रहा है?''

इस समय मातृगुप्त गा रहा था—

है चला जा रहा महाकाल।
जीवन के अवलोकन पर तो पाएगा अवशेष बहुत है।
किया हुआ है तुच्छ काम अनकिया हुआ है अति विशाल॥
है चला जा रहा महाकाल।

''तो महाराज,'' कुबेर ने कह दिया, ''अब सोना नहीं चाहिए। कुछ शेष कार्य कर लिया जाए।''

''हाँ, अभी मेरी कुबेर रानी का मन नहीं भरा।'' विक्रमादित्य ने कहा और उसे अपने अंग संग लगा लिया।

ध्रुवदेवी ने कहा, ''कवि का भी तो मन भरा प्रतीत नहीं होता।'' उसने पति का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए फिर कहा, ''महाराज, कवि को कृतकृत्य कर दीजिए। उसे राजप्रासाद में रहते हुए बहुत काल व्यतीत हो गया है।''

''मुझे उसके दर्शन किए पाँच वर्ष से ऊपर हो चुके हैं।''

''आपके स्थान पर यदि मैं होती तो इसी समय उसे बुलाकर, उसकी इच्छा जान उसे निहाल कर देती।''

''इस आधी रात के समय?''

''परंतु महाराज। राज्य तो दिन-रात जागता रहता है। शास्त्र कहता है—

दंडः शास्ति प्रजाः सर्वा दंड एवाभिरक्षति।
दंडः सुप्तेषु जागर्ति दंड धर्मं विदुर्बुधाः॥[1]

''ठीक है,'' महाराज ने कहा, ''कवि भी तो जाग रहा है। अभी उसकी अभिलाषा जानकर कुछ कर देता हूँ।''

इस पर कुबेर ने महाराज के भुजपाश से निकलते हुए कहा, ''महाराज, यह पुण्य-कार्य अविलम्ब करना चाहिए।''

कवि अभी भी गा-बजा रहा था। वह कह रहा था—

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपः क्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्रधारया शमीलतां छेतुमृषिर्व्यवस्यति॥[2]

---

1. जब प्रजा सोती है तो दण्ड अर्थात् राज्य कार्य जागता रहता है।
2. इस सहज सुन्दर शरीर से जो तपस्या के लिए साधना चाहते हैं वे सत्य ही नीलकमल की पंखुड़ी की धार से शमी के पेड़ को काटने का यत्न कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"बहुत सुन्दर! बहुत सुन्दर!!" ध्रुवदेवी के मुख से निकला, "हाँ, जो जिसके योग्य हो उससे वही कार्य लेना चाहिए।"

विक्रम राज्य-कार्य के योग्य वस्त्र पहनने लगा तो उसकी रानियाँ भी वस्त्र बदलने लगीं। महाराज ने पूछा, "तुम कहाँ जा रही हो?"

"कवि मातृगुप्त का राज्याभिषेक देखने।" कुबेर ने कह दिया।

"राज्याभिषेक?"

"हाँ, महाराज! साधुओं का भी राज्याभिषेक होता है। परंतु वह नीलकमल की पंखुड़ी से शमी के पेड़ काटने के समान नहीं होना चाहिए। उसके योग्य कार्य पर ही उसकी नियुक्ति होनी चाहिए।"

'हाँ, यही विचार कर रहा हूँ कि किस कोमल लता के उच्छेद के लिए उसको कहूँ। इस समय वह इक्यावन वर्ष का हो चुका है। इस समय तो वह किसी कोमलांगी की भुज-लताओं का भार भी सहन नहीं कर सकेगा।"

"तो महाराज, कवि का विवाह करने का विचार कर रहे हैं?"

"अभी तो कुछ भी विचार नहीं कर रहा। अभी तो उसकी इच्छा जानना चाहता हूँ।"

"तो चलिए, महाराज।"

तीनों शयनागार से निकल आए। राजप्रासाद के इस कक्ष में भी एक बैठकघर था। वहाँ पहुँच द्वार के साथ लगी घंटी की डोरी खींची।

बाहर घंटी बजी तो सेवक हड़बड़ी में आँखें मलता हुआ सामने आ खड़ा हुआ। महाराज और दोनों रानियों को बाहर जाने योग्य वस्त्र पहने देख पूछने लगा, "महाराज, सारथी को बुलाऊँ?"

"नहीं, मोहन, सारथी नहीं। कवि मातृगुप्त के द्वार पर जाओ और उसको हमारा नमस्कार कहकर कहना कि हम यहाँ उसका स्मरण कर रहे हैं।"

"महाराज, अभी अथवा कल किसी समय?"

"देखते नहीं कि हम भेंट करने योग्य वस्त्र पहने हुए हैं?"

मोहन ने झुककर प्रणाम किया और चला गया। महाराज दोनों रानियों के साथ आगार में जाजिम पर लगे प्रश्रयों का आश्रय लेकर बैठ गए। ध्रुवदेवी ने मुस्कराते हुए कहा, "पाँच वर्ष उपरांत सम्राट ने अपने मित्र को स्मरण किया है और वह भी रात के तीसरे प्रहर में?"

"नहीं रानी, मित्र को नहीं। आज तो राजा ने एक प्रजा को स्मरण किया है। तुमने ही तो कहा है कि जब प्रजा सोई होती है, राज्यदंड जागता रहता है।"

कुबेर ने मुस्कराते हुए पूछ लिया, "सिर फोड़ने के लिए ही न?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ, हो सकता है, और जीवन का प्रसाद बांटने के लिए भी हो सकता है।"

"इस पर कवि विस्मय कर रहा होगा।"

"उसे विस्मय करना ही चाहिए। हम भी तो उसके अभी तक यहाँ बेकार पड़े रहने पर विस्मय कर रहे हैं।"

"परन्तु वह तो एक अति मधुर कार्य कर रहा था। वह कविता कर गा जो रहा था!"

"वैसे तो हम भी एक महान कार्य कर रहे थे, "कुबेर ने कहा, "कवि के और हमारे कार्य में तुलना हो सकती है।"

"क्या कर रही थी, मेरी प्यारी बहन?" ध्रुवदेवी ने पूछा।

"कुछ वैसा ही जैसा कवि कर रहा था। वह भी तो गाता-बजाता हुआ जीवन-रस ले रहा था। हम उससे कम रसमय कार्य नहीं कर रहे थे। हमारी वीणा कवि की वीणा से कम मधुर नहीं बज रही थी।"

इस पर तो विक्रमादित्य खिलखिलाकर हँस पड़े। ध्रुवदेवी ने पूछा, "तो कुबेर बहन की वीणा बजनी बंद हो गई है?"

"नहीं बहनजी, वह तो अब भी बज रही है। यह मेरे हृदय-तंत्र की वीणा है। जब तक महाराज सामने रहते हैं वह बजती रहती है।"

इसी समय मोहन की द्वार के बाहर आवाज आई, "महाराज, कविजी महाराज पधारे हैं।"

उत्तर विक्रमादित्य ने दिया, "आने दो।" और कवि के स्वागत के लिए उठकर खड़े हो गए।

कवि बैठक का द्वार खोल भीतर आ गया। वह अपने दायें हाथ में वीणा पकड़े हुए था। उसने बायाँ हाथ उठाकर प्रणाम किया, पहले महाराज का और पीछे महारानियों को। उसने कहा,"महाराज, उपस्थित हूँ।"

विक्रमादित्य ने उसके प्रणाम तथा व्यंग्यात्मक कथन की ओर ध्यान न देते हुए कवि को अपने दोनों हाथों से पकड़कर अपने और रानियों के सामने बिठाते हुए कहा, "मित्र, क्षमा करना। असमय बुलाया है।"

"मेरे लिए तो यह असमय नहीं। हाँ, श्रीमान और रानियों के लिए यह असमय हो सकता है?"

कुछ समय तक महाराज के कहने की प्रतीक्षा कर उसने पूछा, "तो महाराज, बजाऊँ?"

विक्रमादित्य कहने वाले थे कि नहीं। उसको इस काम के लिए नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बुलाया गया था। परंतु ध्रुवदेवी ने कहा, "हम विस्मय कर रहे थे कि वहाँ आप अकेले बैठे गाते हुए किसको सुना रहे होंगे। गाना है तो यहाँ ही आकर गाना ठीक होगा।"

"सुनने वाला, कम से कम, एक तो वहाँ भी था।"

"तो उसे यहाँ बुला लीजिए।" कुबेर ने कहा।

"वह मेरे साथ ही रहता है और यहाँ आ गया है।"

"ओह!" महाराज ने मुस्कराते हुए कहा, "तो उसे हमारी स्वीकृति के बिना साथ ले आए हो?"

"श्रीमान, वह बहुत ढीठ है। बिना मेरे कहे यहाँ आ गया है और आपसे भी भय नहीं करता।"

"तब तो बहुत कठिन है।"

"तो उसे दण्ड दीजिएगा?"

"नहीं, मित्र के भक्त को तो दण्ड का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। इस पर भी महाराज, भारतसम्राट के अंतःपुर में आते हुए कुछ तो शिष्टाचार अपनाना चाहिए।"

"कौन है और कहाँ है वह?" ध्रुवदेवी ने गंभीर भाव में पूछ लिया।

"वह अव्यक्त, सर्वव्यापक और महान शक्तिशाली परमात्मा के नाम से जाना जाता है।"

"तो रात की निस्तब्धता में उसे गा-गाकर सुनाया करते हैं!"

"मैं तो अपनी कृतियाँ सदा उसे ही सुनाता रहता हूँ। वह ही इनकी प्रेरणा देता है और उसी के चरणों में इनको अर्पण करता रहता हूँ।"

अब तो महारानियाँ भी समझने लगी थीं। अतः कुबेर ने कहा, "तब तो कविवर, आप अपने प्रेरक और श्रवणकर्ता को प्रसन्न करिए। हम भी उसमें से प्रसाद ले लेंगे।"

बिना किसी के अधिक कुछ कहे कवि ने वीणा बजानी आरंभ कर दी। यह स्वर तो पहले ही हुई पड़ी थी। वह लगा उसमें से तान और जोड़ बजाने। आधी घड़ी पर वीणा बजाने में उपरांत कवि ने गाया—

मनुआ, राम नाम तू बोल।

एक-दो बार गाकर वह पुनः बजाने लगा। एक घड़ी भर और बजाकर उसने वीणा से हाथ उठा लिया। अब उसने पूछा, "तो महाराज, अब जाऊँ?"

"बस?"

"भारतसम्राट की नींद खराब हो रही होगी।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''यह तो विवादास्पद कथन है। इस पर भी हम अपने मित्र कविवर मातृगुप्त के बहुत आभारी हैं। कवि को उज्जयिनी में आए कितने वर्ष हो गए हैं?''

''महाराज, बीस वर्ष। पहले पन्द्रह वर्ष पाटलिपुत्र में रहा हूँ। इससे पहले पितृतुल्य गुरुजी के चरणों में बैठा पाणिनी को स्मरण किया करता था।''

''और यह कविता करना कहाँ से सीखा है?''

''उसी महान प्रेरक के दरबार में। एक दिन अनायास ही प्रस्फुटित होने लगी थी। जब मैंने कही तो भगवान ने आशीर्वाद दे दिया।''

''क्या कहा था भगवान ने?''

''कहा था, जीवन भर के लिए यही काम ठीक है। महाराज, इसे आज पैंतीस वर्ष से ऊपर हो चुके हैं और यह गंगा की धारा की भाँति अनायास ही स्रवित होती रहती है।''

''हमें स्मरण है, जब कवि महाराज हमारी साहित्यिक गोष्ठी में पहली बार आए थे और आते ही काव्य कौमुदी की छटा बिखेरने लगे थे।''

''हाँ, महाराज, स्मरण है। पंडित विशाखदत्त मुझे पाटलिपुत्र के राजमार्ग पर खड़े कविता करते और श्रोतागणों को पुलकित करते देख बाँह से पकड़ गोष्ठी में ले आये थे। मैं उस समय सोलह--सत्रह वर्ष का था।''

''मैं समझता हूँ कि यदि उस समय कवि ने विवाह किया होता तो इस समय कवि की कविता के श्रोताओं की संख्या कुछ तो बढ़ गई होती।''

''महाराज, वह तो बिना विवाह के भी हो रहा है। जिस दिन भी मैं महाप्रभु के मंदिर में जाता हूँ, सैकड़ों मंदिर में घेरकर खड़े हो जाते हैं और बिना एक-आध रचना सुने वहाँ से आने नहीं देते।''

''परंतु रात की निस्तब्धता में तो उस सर्वव्यापक के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं होता!''

इसका उत्तर मातृगुप्त ने नहीं दिया और वीणा हाथ में पकड़ खड़ा हो गया।

:: 2 ::

इस पर विक्रमादित्य ने कवि को हाथ के संकेत से रोककर कहा, ''हमारा, कवि को इस समय बुलाने का उद्देश्य तो अभी पूर्ण नहीं हुआ।''

''सत्य! तो श्रीमान, बताइए और क्या चाहते हैं? मैं तो समझा था कि मैंने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
आपकी अभिलाषा पूरी कर दी है।''

''नहीं मित्र, मैं विचार कर रहा था कि हमारी साहित्यिक गोष्ठी के सब सदस्य किसी न किसी जीवनोपयोगी कार्य में लग गए हैं। केवल कविमित्र ही अपने जीवन की घड़ियाँ अकार्य गँवा रहे हैं।''

''नहीं महाराज, मैं जीवन को अकार्य नहीं गँवा रहा। मैं तो जीवन को····
फूल-फूल पर फुदक-फुदक कर करता हूँ जीवन रसाल।''

''ओह, किस-किस फूल के रस का पानकर जीवन रसाल किया है?''

''वह तो महाराज, अनगिनत हैं। उनकी गणना नहीं कर सकता। अनेक स्थानों पर रहा हूँ। उनको एक ही वाक्य में बता नहीं सकता।''

''अच्छा, यह बताओ, एक साधारण मनुष्य की बोली में, न कि कवि की भाषा में, ऐसी जो मेरे जैसा एक सैनिक समझ सके। मैं अपने मित्र के लिए क्या कर सकता हूँ जिससे उसके जीवन के अंत तक उसे सुख-सुविधा और शांति मिल सके?''

''तो श्रीमान,'' मातृगुप्त का एक ही वाक्य में उत्तर था, ''अपने मित्र को प्रात: के पूजा-पाठ के लिए तैयारी करने अपने आगार में जाने की स्वीकृति दी जाए। इससे मुझे परम सुख मिलेगा।''

कवि अभी भी खड़ा था। उसके बायें हाथ में वीणा थी। दायें हाथ से तीनों राजसी व्यक्तियों का प्रणाम कर वह आगार से निकल गया।

विक्रमादित्य मुस्कराते हुए ध्रुवदेवी की ओर देख रहे थे। महारानी ने गंभीर मुद्रा से कहा, ''यह तो कुछ न हुआ।''

''मुझे कवि के इस व्यवहार से इसकी एक पुरानी बात स्मरण आ गई है। मैं जब दो-दो रानियों से विवाह कर अपने मित्रों की गोष्ठी में गया तो सब बधाइयाँ देने लगे। इस पर एक ने कहा, 'अब हमारी गोष्ठी में केवल कवि कालिदास ही अविवाहित रह गए हैं। इनका भी किसी सभ्य, सुशील ब्राह्मण कन्या से विवाह हो जाए तो बहुत अच्छा रहे।''

''मुझे अपने राजपुरोहित शम्भुदत्त की युवा लड़की की याद आ गई। अत: मैंने कहा, यदि यह चाहें तो इनका विवाह कल ही हो सकता है।''

''इस पर यह कहने लगा, पाटलिपुत्र में सब बड़े-बड़े लोग दो-दो विवाह करने लगे तो मुझे चिंता लग गई कि मेरे लिए यहाँ कोई लड़की कुँवारी नहीं रहेगी। इस कारण मैंने कल ही एक देहात की कन्या से विवाह कर लिया है।'

''इस पर तो सब मित्र कवि की नवविवाहित को बधाई और आशीर्वाद देने के लिए कवि के निवास-गृह की ओर चल पड़े। यह हम सबको घर की बैठक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बिठा अपनी पत्नी को लेने भीतर चला गया। इसने कहा था कि वह अति लज्जाशील है, स्वयं बाहर नहीं आएगी। इतना कह वह उसे बाहर लाने के लिए भीतर चला गया। इसके बाहर आने में देर हो रही थी। हम समझ रहे थे कि यह देहातिन को बाहर आने और अपने मित्रों से मिलने की प्रेरणा दे रहा है।

"आखिर यह आया और अपने हाथ में एक काठ की पुतली वस्त्राभूषणों से सुसज्जित उठाए हुए ले आया। बैठक घर में आकर बोला, 'यह बेचारी आपसे बात नहीं करेगी। इसे विद्वानों से बात करने में लज्जा अनुभव होती है।'

"इस पर मित्रवर्ग खिलखिलाकर हँस पड़े। तब से यह कवि अभी तक अविवाहित है।"

इस घटना को सुन ध्रुवदेवी ने कहा, "इसकी वह काठ की पुतली लज्जाशील नहीं थी, वरंच मैं समझती हूँ कि यह पंडित स्वयं लज्जाशील था। यदि उस समय आप बलपूर्वक इसका विवाह कर देते तो ठीक होता। यह ऐसे ही हो सकता था जैसे किसी लज्जाशील लड़की का विवाह उसके माता-पिता स्वयं निश्चित कर देते हैं।"

"तो अब कर दें?"

"अब क्या होगा। अब इसकी आयु पचास वर्ष से ऊपर हो चुकी है। अब इसको न तो स्वयं विवाह का रस आएगा और न ही इसकी पत्नी को।"

"तो अब क्या किया जाए?"

"मैं समझती हूँ कि जो कुछ आप इसको देना चाहते हैं, वह बिना इसको बताए दे दीजिए। जब गले में ढोल बाँध देंगे तो यह बजाएगा ही।"

विक्रमादित्य विचार में लीन हो गए। कुछ विचार कर उन्होंने कहा, "ध्रुव! तथास्तु।"

फिर कुछ विचार कर महाराज ने कहा, "इस पर भी इस विषय में एक योजना बनानी पड़ेगी और इसमें कुछ दिन लगेंगे।"

महाराज विक्रम उज्जयिनी में कुछ दिन रहने के लिए आए थे। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि पाटलिपुत्र लौटने से पूर्व वह कवि को किसी उपकारी काम पर लगाकर ही जाएँगे। वह विचार कर रहे थे कि वह कवि को कुछ ऐसी वस्तु देकर जाएँगे जिससे वह अपने जीवन को निर्विघ्न और सहज ही व्यतीत कर सके।

अगले दिन पुनः मध्य रात्रि के उपरांत कवि की वीणा बजने लगी और वह गाने लगा। वह वीणा बहुत मधुर बजाता था। गाना तो संगीत में भाव भरने के लिए करता था। आज उसने गाया—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीतेनोद्धषितस्य माषशिमिवच्चिन्तार्णवे मज्जतः
शान्ताग्नि स्फुटिताधरस्य धमतः क्षुत्क्षामकंठस्य मे।

"वाह।" कवि के भाव को समझते हुए विक्रमादित्य के मुख से अनायास ही निकल गया।

"क्या कहा है कवि ने? कुबेर ने पूछ लिया।

"कह रहा है कि शीत से पीड़ित उड़द की फली की भाँति और जल में शांत हो रही अग्नि की भाँति मैं चिंतामग्न हूँ।"

"तो महाराज इसके चिंता सागर को सुखा दीजिए और इसकी निर्धनता की शीत मिटा दीजिए।"

"मैंने एक योजना विचार की है।"

"क्या?"

"अभी बताने की नहीं। यदि योजना परिपक्व हो गई तो बता दूँगा।"

इस पर ध्रुवदेवी ने कहा, "कुछ ऐसा प्रबंध करिए जैसे कन्या को पालकी में बिठा ससुराल विदा कर दिया जाता है। पालकी में बैठते समय वह नहीं जानती कि ससुराल कैसी है? जब वह पति के घर में पहुँचती है तब ही जान पाती है कि वह राजा के घर गई है अथवा किसी रंक के घर।"

"ऐसा ही विचार कर रहा हूँ। एक बार नववधू की भाँति जब ससुराल पहुँच गया तो फिर भाग नहीं सकेगा।"

कवि वीणा बजाता हुआ पुनः गाने लगा था। उसने देव वाणी में वही कविता पुनः गाई। महाराज ने कहा, "यह गा रहा है कि फटे होंठों से आग बुझाने का यत्न कर रहा हूँ, परंतु धुएँ से कंठ रुँध रहा है।"

कवि ने आगे गाना आरंभ कर दिया था—

निद्रा क्वाप्यवमानितेव दयिता संत्यज्य दूरं गता
सत्पात्रप्रतिपादितेव वसुधा न क्षीयते शर्बरी।

जब पुनः वीणा बजने लगी तो महाराज ने कुबेर को कवि की कविता का भाव बताया, "वह कह रहा है कि नींद उससे ऐसे दूर चली गई है जैसे किसी दरिद्र पुरुष की नायिका उसे छोड़ जाती है, और रात ऐसे व्यतीत नहीं होती जैसे किसी सुपात्र से दी हुई धरती समाप्त नहीं होती।"

ध्रुवदेवी कहा, "महाराज, स्थिति संकटापन्न प्रतीत होती है। अब अधिक विलम्ब करना ठीक प्रतीत नहीं होता। भारतसम्राट के घर पड़ा निर्धन ब्राह्मण भूख से व्याकुल प्राण छोड़ रहा है। यदि ऐसा हो गया तो अनन्त काल तक कलंक लगा रह जाएगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

:: 3 ::

उज्जयिनी में कई दिन से कश्मीर का राजदूत आया हुआ था। वह वहाँ के मंत्रिमंडल का यह संदेश लाया था कि उनके देश में पिछले दस वर्ष से कोई राजा नहीं है और वहाँ मंत्रिमंडल राज्य कर रहा है। मंत्रियों के शासन में अनेक अवगुण उत्पन्न हो रहे हैं। इस कारण महाराज विक्रमादित्य से भारत का सम्राट होने के नाते यह निवेदन किया गया था कि कश्मीर में किसी उचित व्यक्ति को राजा के पद पर नियुक्त कर दें।

राजदूत ने बताया, ''महाराज, आजकल कश्मीर देश में न कोई राजा है और न ही राज्यपरिवार का कोई घटक। पिछले दस वर्षों से मंत्रिमंडल वहाँ का प्रबंध कर रहा है। मंत्रियों में से कोई भी राजा बन देश की रक्षा करने की सामर्थ्य नहीं रखता। अत: मंत्रिमंडल ने यह निवेदन किया है कि कोई राज्योचित गुण रखने वाला तेजस्वी वहाँ शासन करने के लिए भेज दिया जाए।''

विक्रमादित्य ने पूछा, ''मंत्रियों में कोई स्वयं राजा क्यों नहीं बन जाता!''

''महाराज,'' राजदूत ने कहा, ''सब मंत्री अपने आपको राजा बनने के योग्य मानते हैं। सब यह इच्छा कर रहे हैं कि वे राजा बन जाएँ। इस कारण कोई अपने में से किसी अन्य को राजा के रूप में स्वीकार नहीं करता। सब अपने सामने दूसरों को अयोग्य मानते हैं। इस कारण महामंत्री ने आपसे निवेदन किया है कि उन पर नियंत्रण रख सकने योग्य किसी को वहाँ भेजेंगे तो सब मंत्रिगण उसे आपका प्रतिनिधि मान उसके नियंत्रण को सहन करेंगे।''

इस प्रार्थना के साथ कश्मीर का राजदूत आया हुआ था और विक्रमादित्य निश्चय नहीं कर सका था कि उसको क्या उत्तर दे। इन्हीं दिनों मातृगुप्त की समस्या सम्मुख आई तो विक्रमादित्य के मन में दोनों समस्याओं का समन्वय हो गया।

इस पर भी समस्या यह थी कि कवि को किस प्रकार वहाँ का राजपद स्वीकार करने के लिए मनाया जाए। कवि की रुचि के विषय में विचार करते हुए विक्रमादित्य को महारानी ध्रुवदेवी की बात स्मरण आ गई। उसने कहा था कि लड़कियाँ जब ससुराल भेजी जाती हैं तो उनको बताया नहीं जाता कि वे किस प्रकार की ससुराल में जा रही हैं। जब वे वहाँ जाती हैं तो फिर अपने को अपनी ससुराल के अनुकूल बना ही लेती है।

इस विचार के आते ही महाराज ने अपने महामंत्री वररुचि को इस विषय पर विचार करने के लिए बुला भेजा। मंत्री आया तो महाराज ने कश्मीर राजदूत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की बात चला दी। महाराज ने कहा, ''महामंत्री, कश्मीर के राजदूत को यहाँ आए बहुत दिन हो गए हैं। उसको उत्तर देकर वापस भेज देना चाहिए।''

''हाँ, महाराज। उसे यहाँ आने में दो मास लगे थे और जाने में भी इतना ही समय लगेगा। उस विषय में महाराज की क्या आज्ञा है?''

''हमारा विचार है कि कवि मानेगा नहीं।''

''हमारा विचार उसकी स्वीकृति लेने का नहीं है। जहाँ तक मैं उसका स्वभाव समझा हूँ, वह गले में बँधे ढोल को बजाने का है। हमें स्मरण है कि जब पिताजी के समय वह और तुम निराश हुए जा रहे थे तो तुम उसे पाटलिपुत्र में ले आए थे और वहाँ तुमने उसे कथा करने पर लगा दिया था और उसने राज्य में विप्लव खड़ा कर दिया था।

''कुछ वैसी ही बात मैं अब करना चाहता हूँ। उसे वहाँ किसी बहाने से भेज दूँ और जब वह वहाँ पहुँच जाए तो उसका अभिषेक करवा दूँ। एक बार वह राजगद्दी पर बैठ गया तो फिर अपने कर्त्तव्य को बहुत योग्यता से निभाएगा।''

''हाँ, यदि ऐसा हो सके तो ठीक हो होगा।''

''मैं समझता हूँ कि यह संभव है। आप एक पत्र कश्मीर के महामंत्री को इस अभिप्राय का लिख दें कि अपने राज्य का एक अति योग्य व्यक्ति भेजा जा रहा है। वह नहीं जानता कि उसे राजा बनाया जा रहा है। आप उसे यह बात तब ही बताइएगा जब वह सिंहासन पर बैठ जाए। यह भी लिख दें कि उसे हमारा आज्ञापत्र उसी समय दिखाया जाए।''

''महाराज, यह तो हो जाएगा, परंतु वह अपने महाकाल के मंदिर को छोड़कर नहीं जाएगा।''

''इसे हम पर छोड़ो। हम उसको कश्मीर में भ्रमण के लिए भेज देंगे।''

वररुचि अनिश्चित मन महाराज का मुख देखता रह गया। उसे बात समझते न देख विक्रमादित्य ने कह दिया, ''देखो महामंत्री, हमारी बड़ी रानी का यह कहना है कि यह तो सर्वत्र हो रहा है। जब लड़कियाँ विवाह कर पालकी में बिठाई जाती हैं तो वे नहीं जानतीं कि वे कैसे पति के घर जा रही हैं। परंतु जब ससुराल पहुँच जाती हैं तो फिर वहाँ का काम करने लगती हैं। महारानी जी का विचार है कि कवि भी वैसा ही व्यवहार करेगा।''

''देख लीजिए। उसका यहाँ भी कइयों से मोह कहा जाता है।''

''अच्छा, ऐसा करो महामंत्री, कश्मीर को लिख दो कि हम अपने एक विश्वस्त और योग्य पुरुष को भेज रहे हैं और उसको बिना बताए कि वह किस प्रयोजन से वहाँ भेजा गया है, उसे राजगद्दी पर बिठाकर हमारी आज्ञा सुना दें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब वह मान जाएगा और कश्मीर को एक अति विद्वान और योग्य राजा मिल जाएगा।''

''ठीक है महाराज! कवि को जाने के लिए राजी आपको ही करना होगा।''

वररुचि ने कश्मीर के महामंत्री के नाम पत्र लिखकर वहाँ के राजदूत को दिया और उसे कश्मीर वापस भेज दिया।

इस वार्तालाप के एक सप्ताह के उपरांत विक्रमादित्य ने प्रतिहार भेजकर मातृगुप्त को बुला भेजा। कवि अविवाहित था। उसका एक सेवक था। नाम था चन्द्र। वह कवि का खाना बनाता था और उसके घर के अन्य काम करता था। वही कवि के लिए राज्य से मिलने वाला मासिक खर्चा लाता था और उसके लिए रसद-पानी खरीदता था।

कवि तो मस्त व्यक्ति था। प्रातः उठ स्नानादि से निवृत्त हो वह या तो अपनी कविता करने अथवा की हुई कविता को मार्जित करने बैठ जाता था। अथवा जिस दिन मन करता, अपनी वीणा ले महाकाल के मंदिर को चल पड़ता था और जिस दिन वहाँ पहुँचता, सुनने वालों की भीड़ एकत्रित हो जाती थी और फिर वह वहाँ से मध्याह्न से पूर्व अवकाश नहीं पा सकता था।

एक ऐसे ही दिन महाराज का प्रतिहार कवि को बुलाने उसके घर पहुँचा तो सेवक से विदित हुआ कि कवि महाकाल के मंदिर में गए हैं। प्रतिहार मंदिर में जा पहुँचा। वहाँ कवि का वीणावादन और कविता सुनने भारी भीड़ एकत्रित हो रही थी। मंदिर खचाखच भर रहा था। लोग बाहर प्राँगण तक खड़े थे और भीतर जाने का मार्ग नहीं था।

प्रतिहार ने भीड़ को इधर-उधर करने का यत्न किया, परंतु वह आगे निकलने में सफल नहीं हुआ। किसी ने प्रतिहार से कहा, ''शांति से खड़े होकर सुनो। धक्के मत दो।''

प्रतिहार ने उस व्यक्ति से कहा, ''भगवन्, मैं संगीत सुनने नहीं आया। भारतसम्राट महाराज विक्रमादित्य के आदेश से कवि को राजप्रासाद में ले चलने के लिए आया हूँ।''

''परंतु आगे जाने का तो मार्ग नहीं है।''

''परंतु श्रीमान, महाराज का आदेश मौखिक रूप में कविजी महाराज तक तो पहुँच सकता है। आप अपने आगे खड़े हुए व्यक्ति को कह दीजिए और वह अपने आगे वाले को कह दे तो महाराज का आदेश कविजी के पास पहुँच जाएगा।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिहार की बात वहाँ खड़े व्यक्ति को समझ आ गई और यह सन्देश कवि के बगल में बैठे पुरोहित के पास पहुँच गया। पुरोहित ने कवि से कहा, ''महाराज अपने प्रासाद में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।''

''परंतु पंडितवर, हम तो विश्वसम्राट के प्रासाद में बैठे हैं। यहाँ से बिना उसकी स्वीकृति के उठकर कैसे जा सकते हैं?''

पंडित मौन हो गया। प्रतिहार बेचारा भीड़ के बाहर महाराज का संदेश देने के लिए खड़ा रहा। मध्याह्न के समय कवि ने देवता की स्तुति समाप्त की और भीड़ कवि के लिए मार्ग छोड़कर खड़ी हो गई।

मातृगुप्त भीड़ से बाहर निकला तो मंदिर के द्वार पर खड़े प्रतिहार ने महाराज का संदेश दिया। कवि ने कहा, ''पर भाई, मैं विश्वसम्राट के दरबार में उपस्थित था। वहाँ से छुट्टी अब मिली है। चलो, अब हम तुम्हारे साथ हैं।''

प्रतिहार कवि के लिए महाराज का निजी रथ लेकर आया था। वह कवि को उस पर बिठाकर, स्वयं सारथी के पास बैठ रथ को राजप्रासाद पर ले गया।

राजप्रासाद में कवि को ले जाकर महाराज के सम्मुख उपस्थित कर दिया।

''बहुत देर कर दी?'' महाराज ने प्रतिहार से पूछा।

उत्तर कवि मातृगुप्त ने दिया। उसने कहा, ''क्षमा करें महाराज! मैं देवता के दरबार में उपस्थित था और उसकी आज्ञा के बिना आ नहीं सका।''

विक्रमादित्य ने व्यर्थ की बात करनी नहीं चाही। उसने मतलब की बात कह दी। उसने कहा, ''कवि की उड़द की फली को शीतकाल की रात्रि में सिकुड़ते देख महारानी ध्रुव ने कवि के लिए यह सुझाव दिया है कि उनको देवभूमि कश्मीर भ्रमण का अवसर दिया जाए। अतः हमारा आग्रह है कि हमारे मित्र को इस नगर के कृत्रिम वातावरण से निकलकर माँ प्रकृति के विशाल प्रांगण में स्वच्छन्द भ्रमण करते हुए प्रभु की विचित्र लीला को देखने के लिए चल देना चाहिए।''

''तो महाराज, मुझको देश से निष्कासन का दंड दिया जा रहा है?''

''नहीं मित्र। प्रभु के भक्त को प्रभु की अद्‌भुत लीला देखने की प्रेरणा दे रहा हूँ।''

विक्रमादित्य ने कुछ समय तक आँखें मूँद विचार कर कहा, ''कुछ वर्ष हुए हम अपनी दोनों रानियों के साथ प्रकृति की इस अनुपम देन, कश्मीर देश को देखने के लिए गए थे। जो कुछ हमने वहाँ देखा वह जीवनान्त तक अविस्मरणीय रहेगा।

''एक रात महारानी ध्रुवदेवी ने कवि को उच्च स्वर में यह कूक लगाते सुना था—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शीतेनोद्धषितस्य माषशिमिवच्चिन्तार्णवे मज्जतं: ।'''

''इसे सुन महारानी जी बहुत दु:ख अनुभव करती हुई पूछने लगीं, 'कब से कवि इस नगर में निवास कर रहा है?'

''मैंने स्मरण कर बताया, 'लगभग पन्द्रह वर्ष हो चुके हैं।''

''इस पर वह कहने लगीं, 'कवि को कश्मीर की सुन्दर भूमि पर कुछ समय के लिए भ्रमण पर भेज देना चाहिए।'

''अत: मैं कविरत्न के समक्ष आज यह प्रस्ताव कर रहा हूँ कि वह वसुन्धरा के इस सर्वश्रेष्ठ भूभाग पर भ्रमण के लिए प्रस्थान करें।

''आज चैत्र मास की नवमी है। हम अपना वेगगामी रथ कविजी महाराज को दे देंगे और यह चालीस दिन में कवि को कश्मीर की राजधानी श्रीनगर में पहुँचा देगा। इससे आपको भ्रमण में भी बहुत सुविधा रहेगी। यदि आज ही चल पड़ें तो वैशाख के अंत से पूर्व वहाँ पहुँच सकेंगे।

''वहाँ के महामंत्री के नाम हम एक पत्र देंगे। उसमें आपका पूर्ण परिचय और हमारे मित्र होने का श्रेय लिखा होगा। रथ का सारथी एक ब्राह्मण होगा जो आपकी भोजन-व्यवस्था भी कुशलता से कर सकेगा। हमारे नाम का संरक्षण सदा आपके साथ रहेगा।''

''महाराज, आपकी कृपा मुझ पर सदा से बनी हुई है। इस कारण मैं आपके समीप रहता हुआ सदा सुख और आनन्द अनुभव करता हूँ।''

''यह होना ही चाहिए और हम विश्वास दिलाते हैं कि हम वहाँ भी अपने मित्र के साथ ही होंगे। हमारा परिचय वाला पत्र साथ होने से हम ही साथ समझे जाएँगे। यह आपके हाथ में सदा छत्र की भाँति बना रहेगा।''

मातृगुप्त महाराज का वचन सुन मन ही मन विचार करने लगा। कुछ देर तक विचार कर पूछने लगा, ''महाराज, मुझे कितने काल के लिए यहाँ से निष्कासन की आज्ञा हो रही है?''

विक्रमादित्य मुस्कराते हुए कवि की ओर देखते हुए बोले, ''मित्र, न तो मैंने आज्ञासूचक कोई शब्द कहा है और न ही किसी प्रकार की अवधि बताई है। साथ ही कहा है कि भारत देश की महारानी ध्रुवदेवी ने यह सुझाव दिया है। उन्होंने कवि को यह कहते सुना है'''स्फुटिताधरस्य धमत: क्षुत्क्षामकण्ठस्य मे।'

''यह सुन वह समझी थीं कि हम प्रकृति में फलने-फूलने वाले एक पुष्प को इस काव्य-रसविहीन नगरी में रखकर अन्याय कर रहे हैं। यह महारानीजी का सुझाव था कि कवि को कश्मीर भेजा जाए। वहाँ तो सूखी लकड़ी भी भूमि में गाड़ दी जाए तो वह शीघ्र ही हरी-भरी हो पल्लवित तथा पुष्पित होने लगती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R 089.9143
GUR-M
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा कवि तो सजीव, सतर्क और ईश्वर की कृपा से काव्यरस से परिपूर्ण है। वह वहाँ जाकर क्या नहीं बनेगा, भगवान ही बता सकता है। हम चाहते हैं कि मित्र मातृगुप्त स्वेच्छा से वहाँ जाएँ और स्वेच्छा से वहाँ भ्रमण करें और अपनी इच्छानुसार वहाँ रहें।''

''तो भगवन्, समझ लीजिए कि मैं वहाँ गया हूँ और लौट आया हूँ। यहाँ भी कुछ रसमय बंधन हैं, जिन्हें छोड़ने को चित्त नहीं करता। रही मेरी कविता की बात, वह तो महाराज, मरुभूमि में भी पल्लवित होती रहती है। आपकी कृपा से घी, दूध खाने को मिलता है और फटे होंठों की बात तो मात्र कवि की कल्पना का प्रदर्शन था।''

Central Library
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar
167962

''क्या बंधन है यहाँ?'' महाराज ने बात बदल पूछ लिया।

''भगवन्, महाकाल का मंदिर है।''

''पर वह तो सर्वव्यापक है।''

''महाराज, मंदिर में आनेवाले श्रोतागण भी तो हैं। वहाँ भेजे प्रतिहार से पता करिए, कितना जमघट था वहाँ आज?''

''हमें ज्ञात है। जब प्रतिहार जा चुका था तो हमें सूचना मिली थी। कि कवि अपनी वीणा लिये हुए महाकाल के मंदिर को जा रहा था। सूचना देने वाले ने यह भी बताया था कि नन्दिनी भी आज पूजा के लिए आई हुई है और कवि मध्याह्न से पूर्व वहाँ से आ नहीं सकेगा। इस सब सूचना पर हम भोजन करने चले गए थे और मध्याह्नोत्तर ही मित्र की प्रतीक्षा में यहाँ आए हैं।

''देखो मातृगुप्त, महाकाल तो सर्वत्र व्यापक है, और यदि मित्र चाहें तो नन्दिनी को भी कश्मीर भ्रमण के लिए भेजा जा सकता है।''

कवि नन्दिनी का नाम महाराज के मुख से सुन रक्ताभ मुख के साथ महाराज की ओर देखने लगा। शीघ्र ही अपने को सतर्क कर बोला, ''महाराज, नन्दिनी तो एक विवाहिता स्त्री है। वह अपने पति को छोड़ एक वृद्ध कवि के साथ क्या करने जाएगी?''

''हमारा विचार था कि कदाचित् नन्दिनी को पति से अधिक कश्मीर की यात्रा रसमय अनुभव होगी।''

''नहीं भगवन्, यह नन्दिनी नहीं जो हमें उज्जयिनी में बाँधे हुए है। यह यहाँ का महाकाल का मंदिर है जिसने हमें बाँध रखा है।''

''परंतु हमें विश्वास है कि कवि के यहाँ से भ्रमणार्थ जाने पर महाकाल भगवान उदास नहीं हो जाएँगे। साथ ही हम मंदिर की विकराल मूर्ति को महाकाल नहीं मानते। वह तो अनादि, अनन्त, सर्वव्यापक तथा अव्यक्त तत्त्व है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह तो सदा सबके अंग-अंग रहता है।''

मातृगुप्त निरुत्तर हो महाराज का मुख देखता रह गया। इस पर विक्रमादित्य ने भावनामय हो कह दिया, ''मातृगुप्त, हमारा आग्रह है कि एक बार वितस्ता के तट पर केसर के खेतों से उठती मादक गंध और पर्वतों पर घूमते, नाभि में कस्तूरी लिये, मृग देख आओ। हमें विश्वास है कि वहाँ जाकर हमारा मित्र हमें भी भूल जाएगा और फिर उसको वापस लाने के लिए हमें स्वयं वहाँ जाना पड़ेगा। यह तो दुगुना पुण्य-लाभ होगा।''

विक्रमादित्य की प्रेरणा सफल हुई और कवि कश्मीर जाने के लिए तैयार हो गया। नन्दिनी का कवि को विचार अवश्य था। वह समझता था कि नन्दिनी वटवृक्ष का आश्रय ले अध्यात्म के आकाश को छू सकने की सामर्थ्य प्राप्त, वृक्ष के न रहने पर, धूल में मिल जाएगी। इस पर भी उसे भगवान के भरोसे छोड़ जाने को तैयार हो गया। वह समझ नहीं सका था कि किस नाते उससे बँधा हुआ अपने को प्रकट करे।

उसने कहा, ''ठीक है महाराज, मैं कुछ काल के लिए उज्जयिनी को भगवान महाकाल और भारतसम्राट के सरंक्षण में छोड़कर जा रहा हूँ।

''महाराज, आप पत्र तैयार करवाकर मेरे निवास-स्थान पर भिजवा दीजिए। मैं दो-तीन दिन में तैयार हो जाऊँगा।''

महाराज विक्रमादित्य ने उठते हुए कहा, ''हमें बहुत प्रसन्नता है कि हमारे प्रिय मित्र ने हमारी महारानी का आग्रह मान लिया है।

''अब आप जाकर लंबी यात्रा की तैयारी करिए। शीघ्रातिशीघ्र तैयार होकर हमें सूचना भेज दें और यात्रा के पूर्ण प्रबंध के साथ हम अपना रथ और सारथी द्वार पर भेज देंगे।

''हमें प्रतीत होता है कि नन्दिनी को पता चलते ही वह कवि के पीछे भाग खड़ी होगी।''

''महाराज, मैं उसे यह बताकर नहीं जाऊँगा कि मैं किधर जा रहा हूँ। मैं उत्तर को जा रहा हूँ, परंतु उसको पता होगा कि मैं दक्षिण को गया हूँ।''

:: 4 ::

नन्दिनी महाकाल के मन्दिर के पुजारी की लड़की थी। पंडितजी ने उसका विवाह उज्जयिनी के एक गणित के विद्वान आचार्य सुधाकर से कर दिया था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गणितज्ञ पंडित सुधाकर सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि की गतिविधियों का लेखा करता हुआं तीस वर्ष की वयस तक भी विवाह के लिए रुचि अनुभव नहीं करता था। जब नन्दिनी विवाह-योग्य हुई और उसका पिता उसके लिए वर की खोज करने लगा तो पंडितजी की दृष्टि सुधाकर पर पड़ी। पंडितजी गणिताचार्य की सेवा में स्वयं पहुँच विवाह का प्रस्ताव करने लगे। सुधाकर ने विवाह में अरुचि प्रकट करते हुए कहा, ''पुरोहितजी, मुझे विवाह में रुचि नहीं हो रही। यहाँ किसी स्त्री से किलोल करने के लिए अवकाश ही नहीं।''

''परंतु आचार्यवर, यह प्रकृति का नियम है कि सतोगुण का रजोगुण से संयोग हो। अन्यथा तमोगुण प्रधान हो नरक का द्वार खोल देगा।''

आचार्य सुधाकर को पुरोहितजी की बात युक्तियुक्त प्रतीत हुई। कुछ काल तक मौन रहकर सुधाकर ने अपने मन को टटोला और कहा, ''अपनी लड़की से पूछ लीजिए। यदि एक गणित के विद्वान की पत्नी बनने की इच्छा हो तो उसे यहाँ छोड़ जाइए।''

''ऐसे नहीं महाराज, आप वर बनकर उसे वरने आइए। तब मैं वेदमंत्रों के साथ यज्ञ करता हुआ उसे आपकी सेवा के लिए सौंप दूँगा।''

इस प्रकार नन्दिनी सुधाकरजी की पत्नी बन उसके जनशून्य गृह को देदीप्यमान करने चली आई। इस संयोग को हुए पाँच वर्ष व्यतीत हो चुके थे, परंतु अभी तक कोई संतान नहीं हुई थी। इससे नन्दिनी उदास रहने लगी थी।

मन की इस स्थिति में वह एक दिन माँ से मिलने गई तो मंदिर में भीड़ देख विस्मय करने लगी। वहाँ उसने एक प्रौढ़ावस्था के व्यक्ति को देवता के सम्मुख वीणा बजाते सुना तो देखती रह गई और जब कवि ने गाया—

महाकाल महाकाल देवा। देवा देवा देवा।

तो नन्दिनी मंत्रमुग्ध मूर्तिवत् देखती रह गई। स्वर में बल, लोच, स्पष्टता और माधुर्य था। जब संगीत आगे चला तो कविता की लय और सामंजस्य पर यह स्तब्ध रह गई। कवि गा रहा था—

महाकाल महाकाल देवा। देवा देवा देवा।
जगतनियन्ता सबके पालक सकल प्रजा के भाग्य-विधाता
दुष्टजनों के संहारक तुम साधुजनों के देवन देवा।
हो भैरव विकराल काल तुम दुर्जन के हो महाकाल तुम।
संतजनों के प्रतिपाल तुम निर्बल-पालक देवन देवा।
महाकाल महाकाल देवा। देवा देवा देवा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कवि की वाणी–सरिता प्रवाहित होती श्रवणकर नन्दिनी कवि के गुणों पर मोहित नित्य मंदिर में आने लगी और उत्सुकता से कवि के पुन: आ देवता की स्तुतिगान सुनने की प्रतीक्षा करने लगी। कवि कभी–कभी ही आता था, परन्तु नन्दिनी जान जाती कि वह कब आता है। अंतर संवेदना से उसके मन में स्फुरित होने लगा और वह उसी दिन मंदिर में देवदर्शन के लिए आने लगी जिस दिन कवि देवता को प्रसन्न करने वीणा–सहित वहाँ आता था।

नन्दिनी अपनी करताल लाकर कवि के संगीत के साथ ताल देने लगी तो लोग समझने लगे कि देवता की स्तुतिगान के अतिरिक्त भी दोनों में आकर्षण उत्पन्न होने लगा है।

इस संयोग को बनते हुए भी दो वर्ष व्यतीत हो चुके थे। मास में दो–तीन बार महाकाल मंदिर में संकीर्तन होता और कवि वीणा बजाता, अपनी रुचि की कविता कहता और नन्दिनी उसकी वाणी और कला पर मुग्ध करताल बजाती और कभी–कभी कवि के पीछे सहायक स्वर भरती। उसकी बाँसुरी–तुल्य मीठी बारीक वाणी के स्वर कवि की नर ध्वनि के साथ अपना रंग भर देते।

इस देवपूजा में नन्दिनी का सम्मिलित होने जाना उसके पति सुधाकर को भी पता चला। उसका एक सहयोगी गणिताचार्य एक पाठशाला का अध्यापक एक दिन सुधाकर से कहने लगा, "आचार्यवर, आपकी पत्नी नन्दिनी तो बहुत मीठा गाती है।"

"सत्य! कहाँ सुना है तुमने उसे गाते हुए?" सुधाकर ने विस्मय करते हुए पूछ लिया।

"तो आप नहीं जानते?"

"क्या नहीं जानते?"

"श्रीमती नन्दिनीजी का महाकाल मंदिर में जाकर कवि मातृगुप्त के साथ मिलकर कीर्तन करना!"

"नहीं। उसने घर पर तो संगीत क्या कभी अगीत का स्वर भी नहीं गाया। भाई मधुकर, मैं तो विवाह करने से डरता था। मेरा विचार था कि घर पर कोई स्त्री आई तो दिन–रात चिड़िया की भाँति चूँ–चड़ाँ करती फिरेगी और मेरे कार्य में विघ्न पड़ेगा, परंतु वह तो घर में चौकी पलँग के समान ही मौन पड़ी रहती है। कभी उसका प्रयोग कर लिया तो उसने कभी आपत्ति नहीं की और कभी उसकी आवश्यकता महीनों ही नहीं पड़ी तो उसने एक पलँग की भाँति रोष अथवा हर्ष प्रकट नहीं किया। इससे मुझे अति सुख अनुभव हुआ है।"

"तो आप उसकी संगत में रस नहीं लेते?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
''ऐसे ही जैसे दिन-भर के कार्य से थक जाने पर पलँग पर सोने से सुख अनुभव होता है।''

''भोजन कौन बनाता है ?''

''एक सेविका माँ के जीवनकाल से कार्य करती है। वह रसोई का कार्य और घर की अन्य सेवाएँ संपन्न करती रहती है। नन्दिनी उसके कार्य से सर्वथा संतुष्ट रहती है।''

''और मित्र, पत्नी के दर्शन कितने दिन पश्चात् करते हो ?''

''नित्य प्रातःकाल वह चरण दबाती है तो मेरी नींद खुल जाती है। तदनन्तर दिन में दोनों समय भोजन करते हुए मेरा मुख देखा करती है।''

''मित्र,'' मधुकर ने हँसते हुए कहा, ''तो यह पत्नी के दर्शन का अर्थ समझते हो। यह तो आपकी सेविका भी करती होगी!''

''हाँ, नन्दिनी के घर पर आने से पूर्व वह यह कार्य भी करती थी। परंतु वह भोजन के समय मेरे मुख पर देखा नहीं करती थी।''

इस पर तो मधुकर और भी जोर से हँसते हुए पूछने लगा, ''उसे पत्नी बना शैया पर भोग किया है अथवा वह भी नहीं ?''

सुधाकर को समझ आ गया। वह भी खिलखिलाकर हँस पड़ा और बोला, ''तो तुम रतिक्रिया की बात पूछ रहे हो। अरे बाबा, विवाह के उपरांत यह भी भला कोई पूछने की बात है! उसके पिता ने इसी कारण तो मुझसे विवाह किया था। उसने कहा था कि रजस् और सत्व गुण का संयोग होना चाहिए, अन्यथा तमस् गुण प्रधान हो जाता है।''

''तो मैं समझता हूँ,'' मधुकर ने कहा, ''तुमने पत्नी से मिलकर साम्यावस्था उत्पन्न नहीं की। इसी कारण तुम्हारी सन्तान नहीं हुई।''

''आज नगर में चर्चा है कि पंडित सुधाकर की पत्नी नन्दिनी कवि मातृगुप्त से अपने में साम्यावस्था उत्पन्न करने जाती है।''

''कहाँ जाती है ?''

''साम्यावस्था तो शयनागार में जाने से ही हो सकती है।''

''भाई मधुकर, यह तो बहुत ही भयंकर आरोप है। प्रमाण है क्या ?''

''वैसे ही जैसे....बोधो धूमादिभिरिव वह्नेः।

''परंतु मित्र, नन्दिनी ने तो इस युक्ति का खंडन कर दिया था। उसने कहा था कि लोग कभी कोहरे को धुआँ मान अग्नि का विचार करने लगते हैं। यह मिथ्या विचार होता है।''

मधुकर अपने मित्र सुधाकर की विश्लेषणात्मक बुद्धि को जानता था और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह इस प्रश्न का उत्तर न जानते हुए कहने लगा, ''दोनों में अंतर तो धुएँ अथवा कोहरे में जाने से ही पता चलता है। दोनों की अनुभूति भिन्न-भिन्न होती है। परन्तु मित्र, पत्नी का व्यवहार धुआँ है अथवा कोहरा, यह तो उसका पति ही जान सकता है। पति के अतिरिक्त किसी अन्य का अधिकार नहीं कि वह इस क्षेत्र में हाथ बढ़ाए।''

''अच्छी बात, मैं परीक्षा करूँगा।''

''तो यही समय है। आपको विदित है कि इस समय वह कहाँ है ?''

''माँ से मिलने गई है।''

''वह मातृगुप्त के साथ महाकाल मंदिर में संगीत कर रही है।''

''तब तो मैं अभी जा सकता हूँ।''

''हाँ, परंतु अदृश्य रहकर ही परीक्षा करनी चाहिए।''

''यत्न करूँगा। परोक्ष अथवा अपरोक्ष रह सकने का संबंध तो उसकी दृष्टि का विषय है।''

''मेरा विचार है कि मंदिर में इस समय बहुत बड़ी भीड़ एकत्रित हो रही है। आप सुगमता से छुपकर उसकी गतिविधियों को देख सकेंगे।''

सुधाकर उसी समय मंदिर को चल पड़ा। वह मंदिर-द्वार के बाहर ही खड़ा रहा। मंदिर के गोपुर से लेकर देवस्थान तक लोग स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध खचाखच भरे हुए थे। सब चुप थे और देवस्थान से वीणा की झंकार सुनाई दे रही थी। वीणा के स्वर सुधाकर जैसे शुष्क प्रवृत्ति के कानों को भी रसयुक्त प्रतीत हुए। वह अपने साथ खड़े एक व्यक्ति से पूछने लगा, ''आज यहाँ क्या है ?''

साथ खड़े व्यक्ति ने विस्मय से सुधाकर के मुख की ओर देखा और साथ ही होंठों पर उँगली रख चुप रहने के लिए कहा। सुधाकर इतनी भीड़ को देखकर समझा कि यहाँ धुएँ की आशंका नहीं की जा सकती। धुएँ में इतने लोग खड़े नहीं रह सकते। वह वहाँ से लौट जाने का विचार कर रहा था कि एक पुरुष के स्वर में संगीत का शब्द सुनाई दिया। शब्द पर्याप्त दूरी से आ रहा था और यत्न करने पर ही वह समझ सका कि क्या गाया जा रहा है। गाने वाला गा रहा था—

प्रभु जी कैसी लीला रचायी।
मैं देख-देख भरमाई॥

जब गानेवाला पुरुष दूसरी बार बोला, 'मैं देख-देख भरमाई' तो उसके स्वर के साथ एक स्त्री का बारीक, परंतु अति मधुर स्वर सम्मिलित हो गया। अनायास ही सुधाकर के मुख से प्रश्न निकल गया, ''अरे, यह कौन है ?''

साथ खड़े व्यक्ति ने कहा, ''कृपया मौन!''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवश सुधाकर को अपने कल्पना के घोड़े दौड़ाने पड़े। उसने अपनी पत्नी को गाते कभी सुना नहीं था। इससे वह अनुमान ही लगा रहा था कि यह साथ गानेवाली नन्दिनी हो सकती है।

वीणावादन और गायन आगे चलने लगा। गाया जा रहा था—

यह सूर्य-मंगल-सोम-शनिश्चर-बुद्ध-बृहस्पति तेरे अनुचर
गगन में हैं घूमते अगणित पर करते नहीं हैं रुसवाई।
मैं देख-देख भरमाई…

'देख देख भरमाई' पर ही स्त्री का स्वर उठा और गाने वाले का साथ देने लगा।

सुधाकर अभी भी भ्रम में था। वह समझ रहा था कि मूर्ख मधुकर ने उसके मन में व्यर्थ की ईर्ष्या उत्पन्न कर उसका एक घंटा समय व्यर्थ गँवा दिया है। यह नन्दिनी नहीं हो सकती। उसकी इतनी मीठी ध्वनि! और फिर संगीत में इतना अभ्यास! यह असंभव है।

इस समय गाने वाला फिर गाने लगा था। वह गा रहा था—

भूतल पर तो कतिपय प्राणी हीन-दीन दुःखिया अज्ञानी
झगड़-झगड़ कर आतुर होते नित्य परस्पर करें लड़ाई।
मैं देख-देख भरमाई…
मेरे तेरे बटवारे में तो उलझ रहे सब संसारी
जाती बेला हाथ में तेरे नहीं रहेगा कुछ भी भाई।
मैं देख-देख भरमाई…

अब सुधाकर संगीत के भाव पर विचार करने लगा। उसे भाव तो ठीक ही प्रतीत हुआ और फिर वह विचार करने लगा कि यदि इतने लोग उसकी पत्नी के मुख से यह सर्वसिद्ध बात सुनने एकत्रित हुए हैं तो अवश्य ही उसकी पत्नी बहुत अच्छा गाने वाली है।

इसी उधेड़बुन में मध्याह्न हो गया और सुनाई दिया कि गाने वाला श्रोतागणों को सम्बोधन कर कह रहा है—

"बंधुओ, मैं कुछ काल के लिए उज्जयिनी से बाहर जा रहा हूँ और देवता की पूजा में उपस्थित नहीं हो सकूँगा। अतः आपसे तब तक के लिए छुट्टी चाहता हूँ। परंतु भक्तजन, वास्तविक बात तो यह है कि यह महाकाल देव हम प्राणियों को यह स्मरण कराने के लिए अवतरित हुए हैं कि हम समझें कि हम सब एक यात्रा पर चल रहे हैं। यह यात्रा अनादि और अनन्त है। हम दुःखों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बचकर यात्रा पर चल रहे हैं। यह यात्रा अनादि और अनन्त है। हम दुःखों से बचकर यात्रा को निर्विघ्न चला सकें, यही हमारा यत्न है। इसमें महर्षि व्यास ने एक जीवन-मार्ग बताया है। वह है—

तथा च सर्वभूतेषु वर्तितव्यं यथात्मनि।

''सब प्राणियों के साथ ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए जैसाकि हम अपने साथ चाहते हैं।

भगवान आप सबका भला करें।''''

सब एक स्वर से गाने लगे—

महाकाल महाकाल देवा। देवा देवा देवा।

सब स्त्री-पुरुष एक स्वर से कई बार इस पद को गाकर कुछ तो घरों को लौट पड़े, कुछ देव-दर्शन के लिए फूल-पत्र क्रय करने लगे और कुछ कवि और साथ गाने वाली स्त्री का दर्शन करने के लिए देवस्थान की ओर लपके।

सुधाकर का साहस नहीं हुआ कि इस भीड़ में धक्केबाजी करे। वह गोपुर में एक ओर खड़ा हो गया। वह गाने वालों के दर्शन करना चाहता था।

एक घड़ी भर लगा मंदिर से जाने का मार्ग खाली होते। अभी भी दर्शकगण पंक्ति बाँध कवि और उसका साथ देने वाली के लिए मार्ग के दोनों ओर खड़े थे। सुधाकर भी इन पंक्ति बाँधे हुओं में एक था।

मातृगुप्त और नन्दिनी दोनों साथ-साथ चले आ रहे थे। दोनों के गले में पुष्पमालाएँ थीं और दोनों के मुख प्रसन्नता से देदीप्यमान हो रहे थे।

:: 5 ::

नन्दिनी ने पति को पंक्ति में खड़े देखा तो उसके सामने खड़ी हो गई। मातृगुप्त भी उसे खड़ा होता देख उसके साथ खड़ा हो गया। नन्दिनी ने अपने पति की ओर देख पूछा, ''तो आप भी आज आए हैं?''

सुधाकर तो अपनी पत्नी की शोभा देख मुग्ध हो रहा था। उसके मुख से एक भी शब्द नहीं निकल रहा था। वह नन्दिनी के पूर्ण शरीर में विशेष स्फूर्ति और आह्लाद की अलौकिकता देख रहा था। इस दिव्य दृश्य में वह अपने मन की ईर्ष्या ओर सन्देह भूल गया था। बात नन्दिनी ने ही आगे चलाई। उसने साथ खड़े कवि की ओर देखकर कहा, ''यह हैं आचार्य सुधाकरजी, मेरे जीवनसाथी।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''ओह!'' मातृगुप्त ने हाथ जोड़ प्रणाम किया। नन्दिनी ने अपने पति की ओर देखकर कहा, ''और आप जानते होंगे कि यह विख्यात कवि मातृगुप्त हैं। विख्यात 'रघुवंश के कहने वाले।''

विवश सुधाकर ने भी हाथ जोड़ दिए। अब मातृगुप्त ने हाथ जोड़ नन्दिनी को प्रणाम कहा और गोपुर से बाहर निकल गया।

नन्दिनी अपने पति के साथ घर को चल पड़ी। मार्ग में सुधाकर अपने मन के भावों का विश्लेषण करता हुआ जा रहा था।

गणिताचार्य का मकान क्षिप्रा के तट पर बना था। इस कारण नगर से निकल मकान तक पहुँचने में समय लगा। इस पर भी पति-पत्नी दोनों परस्पर बातचीत नहीं कर रहे थे। सुधाकर मन में विचार कर रहा था कि इसे वह अपनी पत्नी द्वारा किया जा रहा व्यभिचार समझे अथवा एक अति श्रेष्ठ सदाचार समझे। नन्दिनी भी मौन, वैसे ही गले में पुष्पमाला पहने, पति के साथ-साथ पग भरती हुई जा रही थी। वह कवि की इस घोषणा पर कि वह कुछ काल के लिए उज्जयिनी से बाहर जा रहा है, विचार कर रही थी। वह अनुमान लगा रही थी आने वाले कुछ नीरस दिनों का। परन्तु कवि तो एक स्वतंत्र व्यक्ति था। उसका तो देवता को भी प्रणाम करने का कुछ निश्चित नहीं था। जिस दिन मन में आया वह मंदिर को चल पड़ा। दर्शकगण तो उसकी वीणा और मधुर ध्वनि सुन एकत्रित होने लगते थे।

नन्दिनी भी तो टोह लेती रहती थी कि कवि कब मंदिर जाता है। उसने अपने एक सेवक को यह देखने के लिए नियुक्त किया हुआ था। वह सेवक नित्य पूजा के समय कवि महोदय के मकान के बाहर जा खड़ा होता था और जब कवि को अपनी वीणा लिए मंदिर की ओर जाते देखता तो भागकर नन्दिनी को सूचित करने चला आता था और वह अविलम्ब मंदिर को चल पड़ती थी।

पति-पत्नी दोनों बिना एक भी शब्द बोले घर पहुँचे। सेविका भोजन की व्यवस्था कर रही थी। पति-पत्नी घर के बैठक वाले आगार में जाकर बैठे तो नन्दिनी ने कहा, ''यह तो अति हर्ष का विषय है कि आप आज देव-दर्शन के लिए पहुँच गए थे। देव-दर्शन के साथ कवि के भी दर्शन हो गए।''

अब सुधाकर ने कहा, ''पर, मैं देव-दर्शन के लिए नहीं, वरंच तुम्हारे वास्तविक दर्शन करने गया था।''

''तो हुए दर्शन?''

''हाँ, देख रहा हूँ। यह पुष्पमाला जो है, इसके रहते तो देखने के अतिरक्त अन्य कुछ कर नहीं सका।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ओह!" नन्दिनी को स्मरण आ गया। उसने गले की पुष्पमाला उतारकर पति के चरणों में रख दी और कहा, "यह तो आपके इन चरणों के लिए ही चली आई है।"

"और जो मालाएँ पहले पूजनों में मिली थीं वे किनके चरणों पर गई हैं?"

"माला तो आज ही मिली है। मंदिर के पुजारी को जैसे पता चला कि कवि कुछ काल के लिए जा रहा है तो उसने देवता के समक्ष चढ़ी मालाओं में से एक उसके गले में पहना दी और मुझे समीप हाथ में करताल लिए बैठा देख कवि ने मुझे भी पहना दी। ये पुष्पमालाएँ देवता के चरणों में पड़ी थीं।"

"मुझे यह सूचना मिली थी कि तुम पत्नीधर्म से च्युत हो चुकी हो, यह मैं अपनी आँखों से देखने गया था।"

"और क्या देखा?"

"अग्नि से उठ रहा धुआँ ही देखा है। मन कहता है कि यह धुआँ नहीं वरंच प्रभात वेला का क्षिप्रा के ऊपर एकत्रित हुआ कोहरा है।"

"तो निश्चय नहीं कर पाए?"

"नहीं, अभी संशय में ही हूँ।"

"तो काल इस संशय का निराकरण कर देगा। इस प्रकार के अप्रामाणिक भ्रम तो वही दूर कर सकता है।"

"परंतु तुम तो काल की शरण में जाकर भ्रम में फँस गई हो। तुमने मंदिर में गाया था—मैं देख-देख भरमाई।"

"भगवन्, यह तो ठीक है, परंतु यह तो मेरे लिए है। वह भ्रम आपके प्रति नहीं। और मैं तो आपके मन में उपस्थित भ्रम की बात कह रही हूँ। आपके भी मर्यादा से दूर होने की बात कह रही हूँ।

"चलिए, भोजन तैयार है। भूखे भजन न होता भगवाना।"

सुधाकर उठ खड़ा हुआ और भोजन के समय के वस्त्र पहनने अपने शयनागार में चला गया। नन्दिनी भी साथ थी।

वस्त्र बदल दोनों ही भोजनालय में जा पहुँचे। दो चौकियों पर भोजन से लदे थाल रखे थे। उनके पीछे खाली चौकियाँ खानेवालों के बैठने के लिए रखी थीं दोनों ने हाथ धोये और भोजन करने बैठ गए।

सेविका के सामने खड़े होने के कारण पति-पत्नी ने अपने मन में उठ रहे विचारों की बात नहीं की। वे चुपचाप भोजन करते रहे। पति-पत्नी पहने भी शांत और अति अल्प शब्दों का प्रयोग करते थे। इस कारण सेविका को उस दिन दोनों के मन में किसी प्रकार का वैचित्र्य नहीं दिखाई दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन एक भी शब्द बोले बिना समाप्त हुआ। दोनों उठे और हाथ धो शयनागार में वस्त्र बदलने और भोजन के उपरांत किंचित् विश्राम करने चले गए।

वहाँ पहुँच सुधाकर ने पूछा, ''और अब?''

''जैसी आज्ञा हो। परंतु यह दिन का समय तो किसी उपकारी कार्य में भी प्रयोग हो सकता है।''

''और अनुपकारी कार्य कौन-सा है जिसमें प्रयोग नहीं होना चाहिए?''

''जो शयनागार में कभी-कभी किया जाता है। वह रात के समय ही ठीक रहता है।''

''ओह, तो उसकी अभी भी इच्छा है?''

''इच्छा तो रही है, रहती है और कदाचित् अभी चिरकाल तक रहेगी। परंतु उसका फल नहीं निकल रहा। वह निरर्थक प्रयास ही होता रहा है।''

''तो काल भगवान से पता करना था कि यह क्यों नहीं हो रहा?''

''अब करूँगी। अभी तक इस ओर ध्यान ही नहीं गया।''

उस दिन मध्याह्न का विश्राम करने वे एक ही पलँग पर लेट गए। मध्याह्नोत्तर वे शयनागार से निकले तो अपने-अपने कार्य में दोनों लीन हो गए।

वह सेवक जो मातृगुप्त की टोह लेने उसके घर के बाहर जाया करता था यह देखने कि कब वह मंदिर को जाता है, अगले दिन वहाँ से लौटा तो मालकिन के सम्मुख उपस्थित हो बोला, ''माताजी, कवि महोदय नगर छोड़ गए हैं।''

''कैसे जानते हो?' नन्दिनी पढ़ रही पुस्तक पर से सिर उठाकर सेवक की ओर देखते हुए पूछने लगी।

''माताजी, मैं सदा की भाँति उसके घर के बाहर खड़ा था। वहाँ महाराज का एक सुसज्जित रथ आया। महाराज के अपने रथ का सारथी सुमंत रथ चला रहा था। रथ कवि महोदय के द्वार पर खड़ा हुआ तो कवि मकान से निकला और नगर के उत्तरी द्वार की ओर चल पड़ा। मैंने कवि के सेवक से पूछा कि कवि महोदय किधर जा रहे हैं तो सेवक ने बताया कि वह कश्मीर भ्रमण के लिए जा रहे हैं। मैंने पूछा था कि वह किधर है? इस पर सेवक ने बताया, 'मैंने कविजी महाराज से पता किया है। उन्होंने बताया है कि यहाँ से तीन सौ योजन के अंतर पर उत्तर की ओर एक अति सुंदर देवताओं के दर्शन योग्य देश है'।''

नन्दिनी के मन में कश्मीर और उज्जयिनी में अंतर चक्कर काटने लगा। सेवक के समक्ष वह मौन रही।

समय व्यतीत होने लगा। कवि को गए अभी तक मास ही हुआ था कि नन्दिनी में गर्भ के लक्षण प्रकट होने लगे। जो बात पिछले छः वर्ष के विवाहित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन में नहीं हुई थी, वह इस मास हो गई। समय पर रजोदर्शन नहीं हुआ।

उसने एक दिन प्रातः स्नानादि से निवृत्त हो पति के अध्ययन कक्ष में पहुँचकर कहा, ''मैं आपको एक सूचना देने आई हूँ।''

''क्या?''

''मैं प्रति मास शुक्ल द्वितीया को रजस्वला हुआ करती थी। आज अष्टमी हो गई है। अभी तक इसके दर्शन नहीं हुए।''

''इसका क्या अभिप्राय हो सकता है?''

''काल भगवान की आप पर कृपा प्रतीत होती है। आपके प्रयास का फल निकल रहा है।''

''अभी यह विचार समय से पहले भी हो सकता है। चार-पाँच दिन ऊपर निकल जाना किसी अन्य कारण से भी हो सकता है।''

''मेरे लिए अब पृथक् शयनागार का प्रबंध करना होगा।''

''हो जाएगा।''

बात समाप्त हुई, परंतु सुधाकर के मन में बात का अंत नहीं हुआ। वह गणना कर रहा था कि यह घटना कवि महाराज के प्रयत्न का फल भी हो सकती है। इस विचार के मन में आते ही सुधाकर का मुख विवर्ण होने लगा।

नन्दिनी पति के मुख पर बदलते रंग को देख रही थी। वह समझ गई कि उसके पति के मन में पुनः संशय और ईर्ष्या उत्पन्न हो उठी है। इस पर भी वह यह कह वहाँ से उठ आई, ''ठीक है। कुछ दिन प्रतीक्षा के उपरांत ही इस विषय पर प्रसन्नता व्यक्त की जा सकती है।''

''हाँ, प्रसन्नता अथवा शोक?''

नन्दिनी पति के मुख पर विषाद के लक्षण देख रही थी और उसके 'शोक' शब्द का अर्थ समझ रही थी।

सुधाकर ने मन में स्मरण रखा शुक्ल द्वितीया। अगले मास शुक्ल द्वितीया को वह पत्नी के शयनागार में पहुँच गया। पत्नी कुछ सुस्ती अनुभव कर रही थी। वह दिन निकल आने पर भी पलँग पर से उठने का विचार नहीं रखती थी। पति ने नन्दिनी को पलँग पर लेटे और छत की कड़ियाँ गिनते देख पूछ लिया, ''क्या बात है नन्दिनी, आज पूजा-पाठ नहीं होगा?''

''पूजा-पाठ तो अब आप भी नहीं करते। इस कारण आपके लिए इस विषय पर चिंता करने का कारण नहीं। स्थिति यह है कि दो मास हो गए हैं और मैं राजस्वला नहीं हुई। अब इसका प्रभाव अनुभव होने लगा है। उठने को चित्त नहीं करता।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो तुम्हें अपनी माँ के घर भेज दूँ। यहाँ तो कोई स्त्री तुम्हारी देखभाल के लिए नहीं है।"

"सुधा जो है।" सुधा घर की सेविका का नाम था। "वह अपने को मेरी सास की स्थानापन्न समझती है।"

"देख लो।" सुधाकर ने कहा, "इस पर भी अपनी माताजी को सूचना भेज दो और उनसे सम्मति कर लो।"

सुधाकर के मन में एक मास के चिंतन से यह विश्वास हो चुका था कि जो बात वह छ: वर्ष के विवाहित जीवन में नहीं कर सका वह मातृगुप्त ने कुछ ही काल में सम्पन्न कर दी है। इस पर भी वह विचार करता था कि इसका दोष नन्दिनी को दे अथवा अपने को?

उसके मन में यह बात बैठ चुकी थी कि उसमें किसी प्रकार का दोष है जो वह संतान उत्पन्न नहीं कर सका। उसके मन में यह बात बैठती जाती थी कि यह उसके लिए लज्जा की बात है और उसे यह प्रकट नहीं करना चाहिए। एक संशय उसके मन में बार-बार उठ रहा था कि यदि वह बालक मातृगुप्त के रूप-रंग का हुआ तो फिर क्या होगा? परंतु इसे अभी दूर की बात समझ वह मौन था।

नन्दिनी ने अपनी माता को बुला भेजा। वह आई तो उसने अपनी अवस्था का परिचय माँ को दिया। माँ, शशिदेवी, इस समाचार से बहुत प्रसन्नता प्रकट करती हुई बोली, "महाकाल भगवान की कृपा ही माननी चाहिए। परंतु नन्दिनी, तुम्हें इसकी रक्षा के लिए प्रसव काल तक हमारे घर में चला आना चाहिए।"

"पर माँ, वह संदेह कर रहे हैं कि यह उनका नहीं होगा।"

"तो किसका होगा?"

"उनका संदेह है कि कवि मातृगुप्त से मेरा संबंध रहा है।"

"और तुम क्या समझती हो?"

"समझने की बात नहीं माँ। यह निश्चय की बात है कि यह गणिताचार्य की संतान है। अन्य किसी की हो ही नहीं सकती।"

"तब ठीक है। भ्रम तो समय पाकर निर्मूल हो जाता है। इससे काल भगवान की कृपा की याचना करनी चाहिए। वही इसमें सहायक होता है। अधीर होने की आवश्यकता नहीं। धैर्य से अनुकूल काल की प्रतीक्षा करनी चाहिए।"

"यह तो ठीक है। मैं यह पूछ रही हूँ कि इस अवस्था में मुझे तुम्हारे घर जाना चाहिए अथवा नहीं?"

"तो यह बात है। अच्छा सुनो। यदि वह कहे कि माँ के घर जाओ तो कह देना कि माँ तुम्हें अपने घर में नहीं ले जाएगी जब तक वह इसके लिए मुझे कहेंगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं। हमने तुम्हें अपने घर से विदा कर दिया हुआ है। इस कारण यदि इस समय उन्हें हमारी सहायता की आवश्यकता है तो वह मुझसे अथवा तुम्हारे पिता से कहे तो हम इन्कार नहीं करेंगे।

''इसके अतिरिक्त यदि तुम्हें इस घर में कोई कष्ट अनुभव हो तो संदेश भेज देना। तब उस कष्ट के निवारण का प्रबंध हम कर देंगे।''

नन्दिनी को माँ के कथन से सुख मिला। जब उसकी माँ उसका समाचार लेकर चल दी तो सुधाकर पत्नी से पूछने लगा, ''क्या कहा माँ ने?''

''किस विषय में पूछ रहे हैं?''

''तुम्हारे उनके घर जाने के विषय में।''

''मैंने पूछा था कि क्या मुझे इस अवस्था में उनके घर जाकर रहना चाहिए। उन्होंने कहा है कि अधिक अच्छा तो यह है कि मैं अपने पति के घर में ही रहूँ। यदि यहाँ किसी प्रकार की असुविधा हो तो उनको बताऊँ। वह मेरी टोह लेती रहेंगी।''

''देख लो, यहाँ तुमको कष्ट होगा।''

''ठीक है, जिनको मैंने जीवन का रस दिया है अथवा जहाँ से जीवन-रस प्राप्त किया है, कष्ट भी उन्हीं को देना चाहिए अथवा वहाँ रहते हुए ही भोगना चाहिए। यही माताजी का विचार है।''

सुधाकर ने कुछ उद्विग्न होकर कहा, ''और जो रस तुमने कवि मातृगुप्त को दिया है उसका क्या हुआ?''

''उसको मैंने कुछ नहीं दिया। हाँ, भगवान काल की कृपा अवश्य प्राप्त हुई है। उसके प्रति आभार है, परंतु उनको मैं क्या दे सकती हूँ। वह तो सब जगत को देते हैं।''

''यह तो देखना होगा कि भगवान महाकाल की कृपा हुई है अथवा कविवर की।''

''कैसे देखेंगे?''

''तुम्हारे बच्चे की रूप-राशि देखकर।''

''तब ठीक है। देख लीजिएगा। भगवान काल ही मूर्तिमान हो उठेंगे।''

इस प्रकार विवाद समाप्त हो गया परंतु संशय का निवारण नहीं हुआ। इसके विषय में निर्णय स्थगित हो गया।

ज्यों-ज्यों दिन व्यतीत होते गए, पति-पत्नी में तनाव बढ़ता गया। आखिर एक दिन नन्दिनी के लड़का हुआ। सुधाकर तो सर्वथा गौर वर्णीय था। वह कश्मीर के एक विद्वान ब्राह्मण की संतान था। नन्दिनी भी गौर वर्णीय थी, परंतु उसका पुत्र भूरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रंग का हुआ। वैसे मुख की रेखाएँ अति श्रेष्ठ थीं। लड़का देखने में अति प्रिय और हृष्ट-पुष्ट था। जब तक नन्दिनी प्रसूति गृह में रही, सुधाकर आता और बालक तथा नन्दिनी की ओर देख, बिना बोले चला जाता रहा। प्रसूति-गृह में घर की सेविका सुधा और नन्दिनी की माँ शशि नन्दिनी की सेवा करती रहीं।

तेरह दिन के पश्चात् जब नन्दिनी स्नान कर प्रसूति-ग्रह से बाहर आई और उसकी माँ अपने घर चली गई तो सुधाकर पत्नी के पास आया और पूछने लगा, "लड़के का रूप-रंग देखा है?"

"जी।" नन्दिनी का उत्तर था।

"किससे मिलता है?"

"आपसे। केवल वर्ण में भगवान महाकाल की आभा आ गई है।"

"और कवि की क्यों नहीं?"

"कवि से इसकी रूपरेखा नहीं मिलती।"

"और मेरे से रंग नहीं मिलता।"

"वह तो भगवान की कृपा का फल है।"

"तो तुम भगवान के घर में जाकर रहो। वहाँ और अधिक कृपा का प्रसाद प्राप्त होगा।"

"उसी के घर में ही तो रहती हूँ।"

"तो मैं किसी दूसरे के घर में रहता हूँ?"

"यह आप जानें कि आपके भगवान कुछ हैं अथवा नहीं। परंतु एक बात आपको विचार करनी पड़ेगी कि आप सात वर्ष तक मेरे साथ इस घर में रहे हैं। वह किस नाते रहे हैं और यदि अब छोड़कर कहीं अन्यत्र जाएँगे तो किस कारण जाएँगे?"

"इसके बताने की आवश्यकता नहीं रहेंगी। लोग स्वत: समझेंगे कि यह लड़का तुम किसी अन्य से ले आई हो।"

"श्रीमान यही तो पूछ रही हूँ कि पिछले छ: वर्ष में आप पुत्र उत्पन्न क्यों नहीं कर सके? आप अपने व्यवहार से अपने पुंसत्वहीन होने की घोषणा करने लगेंगे। मैं यहाँ रहती हुई तो इस बात का खंडन करती रहूँगी और आप इस किंवदन्ती का समर्थन करेंगे।"

सुधाकर ने घर त्यागने अथवा नन्दिनी को घर से निकालने के इस परिणाम पर विचार नहीं किया था। इससे वह गंभीर विचार में निमग्न हो गया।

गणित का विद्वान होते हुए भी वह धर्मविहीन व्यापारी की भाँति अपनी बही में लिखे हिसाब को तोड़-मरोड़कर लिखने पर विचार करने लगा। वह वहीं पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखी बात के जोड़ को मिटाकर कुछ काल्पनिक लिखने का यत्न करने लगा। वह लिख गया, परंतु उसमें और वास्तविक गणना में अंतर स्पष्ट दिखाई देने लगा।

अंत में वह उठकर नन्दिनी के आगार से निकल गया और अपने अध्ययन-कक्ष में ही सोने का प्रबंध करने लगा।

:: 6 ::

काल निर्बाध गति से चलता रहा। वह किसी के शुद्ध अथवा विकृत विचारों के ठीक होने की प्रतीक्षा नहीं करता। मनुष्य जो करता है, उसी का परिणाम कालांतर में भोगता है।

नन्दिनी तो अब भी महाकाल के दर्शन के लिए मंदिर में जाती थी। यद्यपि वह रंग नहीं जमता था जो कवि मातृगुप्त जमा पाता था, परंतु कभी-कभी वह देवता के सम्मुख कवि वाले गीत गाने लगती थी। उसका पिता उसे इस कार्य में प्रोत्साहन देता था।

पुरोहितजी तथा उनकी धर्मपत्नी जानते थे कि उनकी लड़की पति से त्यक्ता है। वह लड़की का मन संसार से विरक्त समझ ही भगवत्‌भजन में लग जाने की प्रेरणा दिया करते थे।

कवि को गए दो वर्ष से ऊपर हो गए थे। उसके उज्जयिनी से जाते समय तो यही समझ आया था कि एक वर्ष में वह लौट आएगा। वह नहीं आया। दो वर्ष के उपरांत महाराज का सारथी खाली रथ के साथ लौट आया तो सारथी के बताने पर यह बात विख्यात हो गई कि कवि तो कश्मीर देश का नरेश बन गया है और वह बहुत ही योग्यता से जन-जीवन को सुखी और समृद्ध कर रहा है।

महाराज विक्रम पाटलिपुत्र चले गए थे। पूर्ववत् ध्रुवदेवी उज्जयिनी में रहती थी ओर रानी कुबेर उसके साथ पाटलिपुत्र में। महाराज वर्ष में एक महीने के लिए उज्जयिनी आते रहते थे। इस बार वह गए तो दो वर्ष व्यतीत होने पर ही आए और मातृगुप्त के कश्मीरनरेश बन जाने का समाचार भी उनके साथ ही आया था। महाराज का रथ और सारथी भी आए थे और यह समाचार जनता में विख्यात हो गया था।

आज दो वर्ष के उपरांत पंडित सुधाकर नन्दिनी के आगार में आया और उसकी ओर देखकर बोला, ''देवी, तुम्हारे लिए एक शुभ समाचार लाया हूँ।''

''आज्ञा करिए।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"हाँ, पहले समाचार सुन लो और पीछे निवेदन भी करूँगा। कारण यह कि तुम आज्ञा तो मानती नहीं। इस कारण निवेदन करके देखना चाहता हूँ कि कदाचित् उसे मान जाओ।"

"बताइए।"

"कवि मातृगुप्त कश्मीरनरेश बन गया है और इस समय वह राजसी ठाठ-बाट से राजप्रासाद में रहता हुआ राजपद का भोग कर रहा है।"

"भगवान ने यह उचित ही किया है।"

"अब तुम निस्संकोच उसके पास जा सकती हो। उसने वहाँ भी कीर्तन-वीर्तन का प्रबंध कर लिया होगा।"

"मैं तो जिस दिन रुचि होती है, यहीं कीर्तन कर आती हूँ। हाँ, कवि के मधुर भाव-भरी नित्य नई कविताएँ सुनने को नहीं मिलतीं। परंतु श्री मान, इसे मैं कवि का दोष नहीं मानती, अपने भाग्य की हीनता ही समझती हूँ। कवि ने एक दिन गाया था—

रत्नोज्ज्वला: प्रविकिरंल्लहरी: समीरैरब्धि:
क्रियते यदि रुद्धतटाभिमुख्य: ।
दोषोर्थिन: स खलु भाग्यविपर्ययाणां।
दातुर्मनागपि न तस्य तु दातृताया: ॥[1]

"जब तक यह कृष्ण वर्ण का तुम्हारा पुत्र यहाँ है, मेरे चित्त को शांति प्राप्त नहीं होगी।"

"तो चित्त की शांति के लिए भगवान काल से याचना करिए। वही आपके चित्त को शांति प्रदान करेगा।"

जब तक विक्रमादित्य उज्जयिनी में रहता था, नगर में चहल-पहल रहती थी। महाराज के साथ सैकड़ों ही सेवक और कर्मचारी आते थे। उनके परिवार के लोग भी आते थे और नगर के बाजारों में क्रय-विक्रय तथा वहाँ विद्वानों से विचार-विनिमय होता था।

महाराज के यहाँ आने पर प्रजागण भी अपनी-अपनी बहुत सी माँगें लेकर इस उप राजधानी में आ जाते थे। महामंत्री वररुचि के कई निर्णयों पर भी दया-

---

1. जलधि तो तरल तरंगों से रत्नों को ऊपर ले आता है।
पर उनको तट से दूर बहुत ही पवन बहा ले जाता है।
तब सागर का है दोष कहाँ यह विधना ने है खेल रचा।
रे तट पर खड़े हुए राही यह कर्मों की ही है चर्चा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाव के लिए याचिकाएँ होती थीं। अतः जब तक महाराज वहाँ रहते, नगरी की जनसंख्या बढ़ जाती। नगर के सब पांथागार यात्रियों से भरे रहते और उनके अतिरिक्त भी लोग नगर में रिक्त स्थान भाड़े पर लेते और रहते थे।

इस बार महाराज दो वर्ष के उपरांत आए थे और मिलने वाले, याचना करने वाले तथा खेल-तमाशा देखने वाले सदा से अधिक संख्या में एकत्रित हो गए थे।

इस बार महाराज के पास महाकाल मंदिर के पुजारी चंद्रशरण की एक याचिका आई। याचिका में महाराज से भेंट के लिए प्रार्थना की गई थी।

सब याचिकाएँ वररुचि के द्वारा ही महाराज के समक्ष उपस्थित की जाती थीं। महाराज को आए सभी पाँच-छः दिन ही हुए थे कि वररुचि ने पंडित चन्द्रशरण की याचिका महाराज के सम्मुख उपस्थित कर दी।

विक्रमादित्य ने पूछा, "यह पंडितजी क्या चाहते हैं? इनको मंदिर का पुरोहित बने तीस वर्ष से अधिक हो चुके हैं। इन्होंने कभी भेंट के लिए इच्छा प्रकट नहीं की। अब क्या नवीन बात हो गई है?"

वररुचि ने कहा, "महाराज, मैं समझता हूँ कि इसको किसी प्रकार का आर्थिक, शारीरिक अथवा आध्यात्मिक कष्ट नहीं है। इसके मंदिर की आय इतनी है कि यह प्रति वर्ष नगर में एक नया मकान बना लेता है। इसके अपने रथ हैं और मंदिर की सहायता के लिए खेत भी राज्य की ओर से मिले हुए हैं।

"जहाँ तक मेरी सूचना है, इसे एक मानसिक कष्ट है। कदाचित् यह उसी विषय में महाराज से कुछ निवेदन करना चाहता है।"

"ओह! हम कुछ-कुछ तो समझ रहे हैं। इसकी छोटी लड़की के विषय में तो तुम्हारा संकेत नहीं?"

"मेरा विचार है कि वही इसके दुःख का विषय है।"

"क्या स्थिति है?"

"महाराज, मेरी सूचना तो मेरे गुप्तचरों के द्वारा प्राप्त सूचना पर ही आधारित है। इस कारण उसमें और यथार्थ बात में अंतर हो सकता है। महाराज स्वयं ही पुजारीजी की बात सुनकर अपना अनुमान लगाएँ।"

परिणाम यह हुआ कि एक दिन मध्याह्नोत्तर अल्पाहार के समय पंडितजी को भेंट करने का समय दे दिया गया। पंडितजी आए तो महाराज ने पंडितजी के सामने मिष्टान्न और दूध रखवाकर पूछा, "भगवन्, आज्ञा करिए। किस प्रयोजन से आपने आज इस प्रासाद को पवित्र करने का कष्ट किया है?"

महाराज और वररुचि भी अल्पाहार ले रहे थे। उनके सम्मुख भी मिठाई और दूध रखा हुआ था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंडितजी ने एक घूँट दूध से मिठाई गले से नीचे उतारते हुए कहा, "महाराज, मेरी आठ संतानें हैं। पाँच लड़के हैं और तीन लड़कियाँ हैं। महाराज की कृपा से सब विद्वान और विदुषी हैं। देववाणी और गहन से गहन शास्त्र विषय का ज्ञान रखते हैं। सब ईश्वर की कृपा से सुखी हैं। केवल एक मेरी छोटी लड़की नन्दिनी को कुछ कष्ट है। वह कष्ट राज्य नियम का विषय नहीं, पर जब श्रीमान जैसे देवता राजगद्दी को सुशोभित कर रहे हों तो आपकी सहायता के लिए याचना करने आया हूँ।"

"हाँ, तो उसको किस बात का कष्ट है?"

"महाराज, आपके बाल्यकाल के साथियों में कविवर मातृगुप्त अपने देवता के मंदिर में कभी-कभी पधारा करते थे और देवता के सम्मुख बैठ संकीर्तन किया करते थे। वह वीणा बजाते थे, नित्य नये काव्य गा-गाकर सुनाते थे और फिर सब दर्शकगणों को साथ ले देवता की स्तुति भी गाया करते थे। मेरी छोटी लड़की नन्दिनी भी बचपन से संगीत में रुचि रखती थी और वह कवि महोदय के गायन पर मुग्ध हो कवि के साथ उसके गायन में सम्मिलित हो जाया करती थी।

"यह सहयोग दो वर्ष से अधिक तक चलता रहा। जब कवि महाराज यहाँ से गए तब नन्दिनी ओर उसके पति पंडित सुधाकरजी में झगड़ा होना आंरभ हो गया। झगड़े का कारण यह है कि उससे पूर्व पाँच वर्ष के विवाहित जीवन में नन्दिनी के बच्चा नहीं हुआ और कवि के जाने पर वह गर्भवती थी और अब वह डेढ़ वर्ष के एक लड़के की माँ है।"

"लड़के की रूप-राशि किससे मिलती है?"

"महाराज, रूप तो गणिताचार्य से मिलता है, परंतु रंग उसका आचार्यजी से कुछ गहरा है।"

"रूप में कौन से अंग आचार्यजी से मिलते हैं?"

"बच्चे की नाक, मस्तक और आँखें।"

"और गणिताचार्य क्या कहते हैं?"

"वह चाहते हैं कि पत्नी को घर से निकाल दें। परंतु बलपूर्वक नहीं निकाल रहे। इस ५र भी नित्य उससे झगड़ा करते हैं। उसका बहिष्कार कर रखा है। दो वर्ष के लगभग होने जा रहे हैं, न तो आचार्यजी उसे अपने शयनागार में आने देतते हैं और न ही उससे बातचीत करते हैं। जब करते हैं तो उसे जली-कटी सुनाने के लिए ही करते हैं।"

"और आपकी लड़की क्या चाहती है।"

"उसकी माँ ने उससे पूछा कि वह क्या चाहती है तो उसने बताया कि वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रणय सुख की लालसा नहीं करती। वह केवल मान-प्रतिष्ठा और चित्त की शांति की इच्छा करती है। मान-प्रतिष्ठा तो पति से घर में ही रहने से मिलना संभव है ओर चित्त की शांति वह भगवान के भजन में चित्त लगाने में अनुभव करती है।

''उसने चित्त की शांति के लिए एक वीणा मोल ले ली थी और नित्य उस पर अभ्यास करती थी। उसके पति ने एक दिन उसकी वह वीणा फोड़ डाली।''

अल्पाहार समाप्त हो रहा था। पंडित की बात भी समाप्त हो गई थी। महाराज ने वररुचि की ओर देखकर पूछा, ''महामंत्री, क्या समझे हो ?''

''मैंने इस विषय पर कुछ जाँच कराई है।''

''सत्य!'' पंडित चन्द्रशरण के मुख से निकल गया।

''हाँ, पंडितजी। यह मेरा काम है। मैं राज्य के अधिक से अधिक लोगों के विषय में जानकारी रखता हूँ और आप उज्जयिनी की एक श्रेष्ठ विभूति हैं।

''मैंने नन्दिनी के विषय में कुछ बातें जानी हैं। वह आपकी लड़की के चरित्र और व्यवहार की प्रशंसा में हैं। जहाँ तक आचार्य के अपनी पत्नी से संबंध के विषय में सूचना है, वह बहुत कम है। नवीनतम समाचार यह है कि अपनी सेविका सुधा को भी आचार्य घर से निकाल देने की धमकी दे रहा है। कदाचित् वह आपकी लड़की की सेवा दिल लगाकर करती है।''

''महामंत्री महोदय,'' चंद्रशरण ने कहा, ''सुधा के विषय में मुझे कुछ ज्ञात नहीं है।''

इस पर वररुचि ने कहा, ''इस पर भी राज्य पति-पत्नी के झगड़े में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। जब तक कोई पक्ष सनातन धर्म का उल्लंघन नहीं करता, राज्य उनके व्यवहार में हस्तक्षेप नहीं कर सकता।''

''मंत्री महोदय, यह मैं जानता हूँ। इसीलिए मैंने अपने पत्र में किसी प्रकार की बात नहीं लिखी। जो कुछ मुझे निवेदन करना था, वह मौखिक ही किया है और इसमें मैं महाराज के व्यक्तित्त्व के प्रभाव की ही याचना करता हूँ। किसी प्रकार की राजकीय कार्रवाई की न तो कोई आशा है और न ही किसी प्रकार की याचना है।''

विक्रमादित्य ने कहा, ''महामंत्री, गणिताचार्य का निर्वाह किस प्रकार होता है ?''

''महाराज, उसे राजकोष में से तीन सौ स्वर्णमुद्रा प्रतिवर्ष सहायतार्थ मिलती हैं। पंडित सुधाकर गणिताचार्य नक्षत्रों की गति की गणना के विषय में शोध-कार्य कर रहे हैं।

''इसके अतिरिक्त पंडितजी जन्मकुंडलियाँ बनाते हैं और बनी हुई को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ते हैं। इससे भी इनको पर्याप्त आय होती है और पंडितजी एक धनी की भाँति नगर में नदी के तट पर एक सुन्दर मकान में रहते हैं।"

महाराज ने एक क्षण तक विचार किया और वररुचि से कहा, "महामंत्री, हम पंडितजी से अपने भूत और भविष्य के विषय में पूछेंगे। उनसे भेंट का प्रबंध कर दीजिए।"

विक्रमादित्य ने पुजारी से कहा, "आपकी लड़की के विषय में राज्य तब तक हस्तक्षेप नहीं कर सकता जब तक वह आपकी लड़की पर कोई हिंसात्मक कार्य न करे अथवा किसी सनातन धर्म का उल्लंघन न करे।"

"जहाँ तक प्रणय सुख की बात है, यदि आपकी लड़की इस विषय में याचिका करे तो उसे नवीन विवाह की स्वीकृति मिल सकती है। नवीन विवाह दो प्रकार से हो सकता है। एक तो पांडवों की माता कुंती और माद्री की भाँति। दूसरा, उसे विधवा घोषित कर दिया जाए और उसे विधवा के रूप में नवीन विवाह की स्वीकृति दी जाए।"

"महाराज," चंद्रशरण ने कहा, "यदि कोई ऐसा कार्य हुआ जिसमें राज्य हस्तक्षेप कर सके तो लड़की महामंत्री अथवा उचित न्यायाधीश के सम्मुख याचिका करेगी और उसमें आरोप लगाएगी। परंतु मैं तो महाराज के तेज के प्रभाव से लड़की के कल्याण की आशा करता हूँ।"

"इसके लिए यत्न किया जा सकता है।"

:: 7 ::

इसके अगले ही दिन वररुचि आचार्य सुधाकर को महाराज के पास मध्याह्न भोजन के समय लेकर आ गया। उस समय महाराज अपनी दोनों रानियों के साथ भोजन किया करते थे। सुधाकरजी को सूचना दी गई थी कि महाराज उनको अपने साथ भोजन करने का निमंत्रण दे रहे हैं। उस समय वह उनकी ज्योतिष विद्या के विषय में बातचीत भी करेंगे।

सुधाकर महाराज की रानियों और वररुचि को भी अपनी दोनों पत्नियों सहित भोजनागार में बैठे देख एक क्षण के लिए स्तब्ध खड़ा रह गया। परंतु तुरंत ही अपने को नियंत्रण में कर आगे बढ़ा और रानियों को हाथ जोड़ प्रणाम किया। स्त्रियों ने भी उठकर आचार्यजी का स्वागत किया और उनको उनके लिए नियत आसन पर बैठने का संकेत किया। महाराज अभी नहीं आए थे। इस कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वररुचि आचार्यजी को भोजनशाला में बिठा बाहर चला गया और महाराज की प्रतीक्षा करने लगा।

विक्रमादित्य आज महाकाल मंदिर देखने गए थे। उनके मंदिर में जाने का आशय यह था कि वहाँ की अवस्था देख उसको सुधारने के लिए सुझाव दें और आवश्यकता होने पर राजकीय कोष में से भी सहायता दें। वह राज्य में अन्य मंदिरों का भी निरीक्षण किया करते थे।

आचार्यजी बैठे तो महारानी ध्रुवदेवी ने कहा, ''आचार्यवर, हमने आपके ज्ञान की बहुत प्रशंसा सुनी है। इस कारण हम अपने भविष्य के विषय में कुछ पूछना चाहती हैं। महाराज भी अपनी जन्मकुंडली दिखाना चाहते हैं। इसीलिए आपको कष्ठ दिया है।''

इसमें कुछ उत्तर देने को नहीं था। इस कारण आचार्य मुस्कराकर चुप रहा। सुधाकरजी बहुत कम बोलने वाले व्यक्ति थे। जब उनकी अपनी पत्नी से सुलह थी तब भी वह दिनभर में दो-तीन वाक्य ही उससे कहते थे।

हाँ, अब जिस दिन वह नन्दिनी को डाँटने जाते थे तो फिर अपने वचनों की झड़ी लगा देते थे। यहाँ तो उत्तर देने के लिए कुछ था ही नहीं।

ध्रुवदेवी ने कहा, ''मैं अपने पूर्व जन्म के विषय में जानकारी प्राप्त करना चाहती हूँ।''

''परंतु उसका प्रमाण क्या होगा? कैसे आप समझेंगी कि जो कुछ मैंने कहा है, वह सत्य ही है?''

''आचार्यवर,'' ध्रुवदेवी ने कहा,

''अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधो धूमादिभिरिव वह्नेः।''[1]

''ओह! यही बात मेरे अपने एक मित्र ने मुझे कही थी और मैंने इस सिद्धांत का खंडन कर दिया था। मेरी पत्नी भी इस सिद्धांत को नहीं मानती।''

''तब तो वह भी बहुत ही विदुषी होगी। परंतु कैसे खंडन किया था?''

सुधाकर कुछ उत्तर देने वाला था कि महाराज वररुचि के साथ भीतर आ गए। उन्होंने आते ही कहा, ''आचार्यवर, क्षमा करें। एक पल की देर हो गई है। हम महाकाल मंदिर का निरीक्षण करने गए थे। वहाँ प्रजागण बहुत बड़ी संख्या में एकत्रित हो गए थे और उनमें से रथ को निकालकर लाने में समय का उल्लंघन हो गया है।''

---

1. जैसे धुएँ को देखकर अग्नि होने का ज्ञान हो जाता है वैसे ही दिखाई न देने वाले पदार्थों का ज्ञान अनुमान से किया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''कुछ हानि नहीं हुई। इस समय महारानीजी ने एक बहुत ही रुचिकर विषय पर वार्तालाप आरंभ कर दिया था।''

''तब तो ठीक है। क्या हम उस रुचिकर वार्तालाप का रसास्वादन कर सकते हैं?''

महारानीजी ने कहा, ''इस सिद्धांत की बात पर आपसे वार्तालाप हो चुका है। मैंने आपकी आपत्ति का निराकरण कर दिया था। अभी आचार्यजी ने भी उस सांख्य के सर्वमान्य सिद्धांत पर आपत्ति की है।

''सांख्याचार्य ने कहा है कि जब कोई वस्तु अथवा घटना प्रत्यक्ष न हो तो उसके विषय में अनुमान-प्रमाण से पता चल जाता है, जैसे धुआँ अथवा चिनगारियों को देखकर अग्नि का पता चल सकता है।''

अब पाचक खाने के लगे हुए थाल ला-लाकर सम्मुख रख रहा था। सुधाकर ने बातों का सूत्र अपने हाथ में लेते हुए कहा, ''महारानीजी चाहती हैं कि मैं इनको कुछ पूर्वजन्म की बात बताऊँ। इस पर मैंने पूछा था कि उनके सत्य होने का प्रमाण क्या होगा? आपने एक सांख्य सिद्धांत का वर्णन कर दिया।

''मैंने भी वही सिद्धांत एक बार अपनी पत्नी के सम्मुख कहा था और उसने ऐसे इसका खंडन किया कि मेरा मुख बंद हो गया।''

सब खाना खाने लगे थे। ध्रुवदेवी ने कहा, ''पंडितजी के इस कथन पर मैंने विस्मय प्रकट करते हुए कहा है कि तब तो इनकी पत्नी को महान विदुषी मानना चाहिए। मैं इनसे उस विदुषी के उत्तर को सुनने की इच्छा कर रही हूँ।

''सत्य ही यह बहुत रुचिकर विषय है,'' महाराज ने कहा, ''आज तक इस सिद्धांत का किसी ने भी विरोध नहीं किया। हाँ, तो आचार्यवर, किस प्रकार इस सिद्धांत का खंडन करते हैं?

सुधाकर ने कुछ विचार कर उस समय के वार्तालाप के मुख्य विषय को तो नहीं बताया, परंतु नन्दिनी की बात को कह दिया। उसने बताया, ''जब मैंने कहा कि धुआँ देखकर अग्नि का ज्ञान होता है तो उसने कहा था कि वह धुआँ तो कोहरा भी हो सकता है।''

विक्रमादित्य को तो यह समझ आया कि नन्दिनी ने कपिल मुनि के कथन का खंडन नहीं किया, वरंच उसने अपने पति को चुनौती दी थी कि वह प्रत्यक्ष की परीक्षा किए बिना उसके आधार पर अनुमान लगाने लगा है।

धुआँ और कोहरा दोनों प्रत्यक्ष हैं और उनकी परीक्षा हो सकती है। यदि कोहरा है तो जल की संभावना स्पष्ट है और यदि धुआँ है तो अग्नि की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संभावना सिद्ध है। अतः अनुमान-प्रमाण में दोष नहीं। दोष प्रत्यक्ष की परीक्षा करने में है।

परंतु किस संदर्भ में गणिताचार्य ने यह कहा है? इसका ज्ञान न होने के कारण सब चुप रहे।

अब ध्रुवदेवी ने पुनः अपनी बात की पुष्टि में कहा, "देखिए आचार्यवर, सृष्टि-रचना के समय कोई देखने वाला नहीं था, परंतु सृष्टि-रचना की पूर्ण कथा कपिल मुनि ने अपने इसी सिद्धांत के आधार पर पता कर ली थी। इसी प्रकार जब आप अपनी गणित विद्या से मेरे पूर्व जन्म की कोई बात बताएँगे तो मैं उसका इस जन्म के परिणामों से निरीक्षण करूँगी और जान जाऊँगी कि आपकी गणना ठीक है अथवा नहीं। जैसे धुआँ देखकर अग्नि का अनुमान होता है वैसे ही इस जन्म में जो कुछ मैं हूँ, उसे देखकर पूर्व जन्म के वृत्तान्त का अनुमान भी ठीक ही होगा।"

महारानी की युक्ति में दोष नहीं था और वह महारानी के विगत जीवन की पूर्ण कथा को जानते हुए पूर्व जन्म के वृत्तांत को जानने का निश्चय कर बोला, "मैं यत्न करूँगा। आप अपनी जन्मकुंडली दे दीजिएगा।"

"आचार्यवर, कुंडली तो नहीं है। हाँ, हस्तरेखाओं से जो कुछ आप जान सकें, बताइएगा।"

इस पर महारानी कुबेर ने भी कहा, "मेरे भी जन्मकुंडली नहीं है।"

वररुचि की एक पत्नी कालिन्दी की जन्मकुंडली थी। उसके माता-पिता उसके साथ रहते थे और उन्होंने अपनी लड़की की जन्मकुंडली बनवाई थी। कालिंदी उसे लेकर ही आई थी। उसने गणिताचार्य को बताया, "मैं अपनी जन्मकुंडली लाई हूँ।"

परंतु भाग्यवती, महामंत्री की दूसरी पत्नी ने कहा, "मेरा जन्मकुंडली बनी तो थी, परंतु वह मेरे पास नहीं है। न ही मुझे अपने जन्म की तिथि, काल का ज्ञान है।"

"तो महाराज यह होगा कि जिनकी जन्मकुंडलियाँ हैं, वे मैं साथ ले जाऊँगा और अन्यों के हाथों के चित्र पत्रों पर अंकित कर ले जाऊँगा। आशा करता हूँ कि दो-तीन दिन में उनका वृत्तांत लिखकर सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा।"

इस पर ध्रुवदेवी ने कहा, "परंतु आचार्यवर, हम आपको उस दिन मध्याह्नोत्तर के अल्पाहार के अवसर पर सपत्नीक निमंत्रण दे रहे हैं।"

"उससे भी आपको कुछ काम है?" गणिताचार्य ने सतर्क हो पूछ लिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर ध्रुवदेवी ने ही दिया। उसने कहा, ''आपने ही उसके विषय में कहा है कि उसने आपके तर्क का उत्तर युक्तियुक्त ढंग पर दिया है। हम समझती हैं कि वह भी एक विद्वान ब्राह्मण की अति विदुषी पत्नी है। इससे उसके दर्शन का भी लाभ उठाना चाहती हैं।''

गणिताचार्य इन्कार नहीं कर सका। वह न तो यह बताना चाहता था कि उसको अपनी पत्नी के चरित्रवान होने पर संदेह है और न ही वह यह कह सका कि वह इतनी लज्जाशील है कि किसी के सम्मुख आने में संकोच अनुभव करेगी। उसने कहा, ''मैं महारानीजी की इच्छा को उसके सम्मुख रख दूँगा। यदि वह आना चाहेगी तो ले आऊँगा।''

ध्रुवदेवी ने मुस्कराते हुए कहा, ''इसके लिए आपको कष्ट करने की आवश्यकता नहीं होगी। हम स्वयं उसे निमंत्रण देंगी और उसको यहाँ लाने के लिए रथ भेज देंगी। हाँ, यदि आप भी उस रथ में आ जाएँ तो अधिक अच्छा रहेगा।''

सुधाकर इस प्रस्ताव पर मन में परेशान तो था, परंतु वह इन्कार नहीं कर सका और चुप रहा।

एक बात वह विचार करने लगा था कि जिस बात को वह अपने अपराध की स्वीकारोक्ति मानता था उसे यह उसका खंडन कहती हैं और जिसे वह सिद्धांत का खंडन समझता था उसे ये सब लोग सिद्धांत की पुष्टि मान रहे हैं। इस पर भी वह घर जाकर विचार करने का निश्चय कर मौन रहा।

उसे कुंडलियाँ दी गईं। तीन कुंडलियाँ और शेष के हाथों की रेखाओं के चित्र पन्नों पर अंकित कर गणिताचार्य को दे दिए गए और आचार्य विदा हुआ। उसके जाते समय वररुचि बाहर आया और प्रतिहार को यह आज्ञा दे गया कि आचार्यजी को रथ पर उनके घर पहुँचा दिया जाए।

अभी महारानियाँ सुधाकर की मोटी बुद्धि पर हँस ही रही थीं कि वररुचि आचार्य को विदा कर लौट आया। उसके आते ही विक्रमादित्य ने पूछा, ''हाँ तो महामंत्री महोदय, क्या समझे हैं इसके विषय हैं ?''

''महाराज,'' वररुचि ने महाराज के समीप बैठते हुए कहा, ''एक बात निर्विवाद है। वह यह कि यह गणिताचार्य ज्ञान तो बहुत रखता है, परंतु यह बुद्धिमान नहीं है।''

''तो विद्वान बुद्धिमान नहीं होते ?''

''नहीं भी हो सकते। कारण यह कि ज्ञान संचय एक बात है, परंतु उस ज्ञान पर मनन दूसरी बात है। एक मन का गुण है और दूसरा बुद्धि का। ये दो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कलाएँ भिन्न-भिन्न हैं। यह ठीक है कि परस्पर पड़ोसी होने से ये एक-दूसरे की सहायता करती रहती हैं, इस पर भी कभी पति-पत्नी की भाँति झगड़ा कर सकती हैं। पंडितजी की अवस्था में यही हो रहा प्रतीत होता है।''

भाग्यवती ने कहा, ''हाँ महाराज, हमारा भी यही अनुभव है। महाराज के महामंत्री के विषय में बहन कालिन्दी के पिता यह समझते थे कि हम उनकी सह-पत्नियाँ उनका जीवन दूभर कर देंगी। एक दिन उन्होंने महामंत्री जी से यह कहा था, 'पुत्र! तुमने दो पत्नियाँ कर तो ली हैं, परन्तु यह कलह का कारण भी हो सकती हैं। अतः बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है।'

''महामंत्री महोदय ने इस पर यह कहा,'पिताजी, यत्न करूँगा कि मैं और ये दोनों सुखी रह सकें। इस पर भी इतना तो निश्चय जानिए कि मेरा जीवन इनके किसी भी कार्य अथवा कथन से कलह-रूपी भँवर में नहीं फँसेगा। मैं गंभीर से गंभीर भँवर को तैरकर पार करने की सामर्थ्य रखता हूँ।'

''परंतु ईश्वर की कृपा से महामंत्री महान ज्ञानवान थे और पत्नियाँ दोनों बुद्धि की स्वामिनी थीं। हमने इनका समन्वय किया है और अब बीस-बाईस वर्ष के विवाहित जीवन के उपरांत हम यह निस्संकोच भाव से कह सकती हैं कि हम जीवन में सफल हुई हैं।

''आचार्यजी के घर की समस्या यही समझ आई है कि पंडितजी न केवल विद्वान हैं, वरंच इनको अपनी विद्वत्ता का अभिमान भी है और इनकी पत्नी की बुद्धि अति प्रखर है। इसी कारण दोनों में नित्य झगड़ा रहता है। इनमें समन्वय कराने वाला कोई नहीं।

''एक बात तो ध्रुव ने ठीक ही की है कि आचार्यजी की पत्नी को भी आमंत्रित करने का प्रस्ताव कर दिया है।''

''हाँ,'' वररुचि ने कहा, ''महारानीजी की पूर्वजन्म के विषय में चर्चा भी मैं इसी दिशा में कार्य समझा था और फिर अंत में महारानीजी ने निमंत्रण दे ही दिया है।

''अब देखना यह है कि नन्दिनी देवी से पृथक् में महारानीजी कैसे मिलकर उसके मनोभावों का ज्ञान प्राप्त करती हैं।''

''यह हम सहज में ही कर सकेंगी। इस पर भी आशंका यह है कि हमारा पति-पत्नी के मामले में हस्तक्षेप लाभ के स्थान पर हानि भी उत्पन्न कर सकता है।''

''यह उन दोनों के भाग्याधीन है। हम तो दोनों में समन्वय उत्पन्न करने का यत्न कर रहे हैं,'' महाराज का कथन था। महाराज ने एक बात और बताई,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''मेरी नन्दिनी के पिता पंडित चन्द्रशरणजी से एक बात आज यह हुई है कि नन्दिनी प्रणय सुख की इतनी इच्छुक नहीं। वह एक संतान से ही सुखी है। वह यह चाहती है कि उसका पति उससे झगड़ा कर उसे घर से निकालने की बात न करे। इससे उसके चित्त की शांति भंग होती है। ऐसी मनःस्थिति में तो इस समन्वय की समस्या कुछ अधिक कठिन नहीं।''

''हाँ,'' वररुचि ने कहा, ''यदि इस झगड़े में किसी तीसरे व्यक्ति का हस्तक्षेप न हो तभी ये पति-पत्नी सुलह से रह सकते हैं।''

''तो इस विषय में तो इनकी सेविका से बातचीत करना अधिक लाभकारी होगा।''

''पहले स्वामिनी से मिल लें, पीछे सेविका से भी बातचीत कर लेंगे।'' ध्रुवदेवी ने सुझाव उपस्थित कर दिया।

महाराज के राजदरबार में जाने का समय हो गया था, अतः वह उठ खड़े हुए।

:: 8 ::

सुधाकर चिंता में निमग्न घर पहुँचा। उसे चिंता यह लग रही थी कि नन्दिनी भी यदि महारानियों द्वारा बुलाई गई तो उनके घर की विषमता का ज्ञान राज्याधिकारियों को हो जाएगा और उसे राज्य परिवार के भविष्य पढ़ने से होने वाले लाभ में बाधा दिखाई देने लगी थी। वह अपनी मूर्खता पर पश्चाताप करने लगा था कि उसने अपनी पत्नी की उस युक्ति का वर्णन क्यों कर दिया? वह अपनी भूल को सुधारने पर विचार करता हुआ घर पहुँचा तो उसने देखा कि पुजारीजी का रथ द्वार पर खड़ा है। वह समझा कि नन्दिनी की माँ अपनी लड़की से मिलने आई है। पहले भी ऐसा हुआ करता था कि शशि देवी अपने रथ में लड़की से मिलने आया करती थी। परंतु जब वह घर की बैठक में गया तो वहाँ उसकी पत्नी नन्दिनी घर से बाहर जाने योग्य वस्त्राभूषण पहले अपनी माँ के साथ कहीं बाहर जाने के लिए खड़ी थी। सेविका सुधा भी स्वच्छ वस्त्र पहने खड़ी अपनी स्वामिनी से बातें कर रही थी।

सुधाकर ने बैठक में प्रवेश करते ही सुधा से पूछा, ''कहाँ से आना हुआ है?''

''आना नहीं, बेटा, जाने की बात हो रही है।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''सत्य! कहाँ? यह समय तो मंदिर में पूजा का नहीं है।''

''हम वहाँ नहीं जा रहीं,'' नन्दिनी ने बताया।

''तो यह सवारी किधर जा रही है, पुजारीजी के रथ में?''

''हाँ, रथ तो बिटिया ने सेवक भेज मँगवा लिया है। हम महारानी ध्रुवदेवी से भेंट के लिए जा रही हैं।''

''क्यों? वहाँ से निमंत्रण आया है क्या?'' सुधाकर को संदेह होने लगा था कि उसकी पत्नी को निमंत्रण देने के उपरांत ही उसे सूचित किया गया है। उसे इसमें और कुंडलियों तथा राज्य परिवार के सदस्यों का भूत, भविष्य पढ़ने की योजना भी एक प्रकार का षड्यंत्र ही समझ आने लगा था।

उत्तर सुधा ने दिया। उसने कहा, ''हमारी यह सूचना है कि मध्याह्नोत्तर तीसरे प्रहर में दो घड़ी-भर बड़ी महारानीजी नगर की सामान्य स्त्रियाँ से बिना किसी बाधा के मिलती हैं। आज हम उनके दर्शन करने जा रही हैं।''

''दर्शन से क्या होगा?''

''वही जो किसी सुन्दर वस्तु अथवा स्थान को देखने से होता है। मैंने महारानीजी के दर्शन पहले किए हैं और मुझे वह अद्वितीय सुन्दरी लगी थीं। मैंने आज नन्दिनी बेटी से कहा तो यह भी उन्हें देखने की इच्छा करने लगी है। अतः पुरोहितजी का रथ मँगवा लिया है। माताजी भी साथ जा रही है।''

सुधाकर ने उनके राजप्रासाद में इस प्रकार जाने को रोकने के लिए कहा, ''मैं समझता हूँ कि नन्दिनी को इस प्रकार सार्वजनिक भेंट के समय जाने की आवश्यकता नहीं है। कारण यह है कि इसे महारानीजी स्वयं अपने निजी आगार में आमंत्रित करने वाली हैं। जहाँ तक मेरा ज्ञान है, वह निमंत्रण कल तक आ जाएगा। तब यह महारानीजी के सौंदर्य को अधिक भली प्रकार देख सकेगी।''

''और आपको यह सूचना किसने दी है?'' सुधा ने ही पूछा।

''मैं स्वयं राजप्रासाद से महाराज तथा महारानियों की जन्मकुंडलियों तथा हस्तचिन्ह लेकर आ रहा हूँ। वहाँ नन्दिनी के विषय में चर्चा हुई तो महारानी नन्दिनी से मिलने की इच्छा करने लगीं। उन्होंने स्वयं कहा है कि वह नन्दिनी के दर्शन करने के लिए इसे निमंत्रण भेज रही हैं।''

अब नन्दिनी ने पूछा, ''मेरे विषय में चर्चा किस कारण हुई थी? आपने मेरी वहाँ भी निन्दा की प्रतीत होती है।''

''नहीं नन्दिनी, मैं इतना मूर्ख नहीं हैं कि उस विषय पर राजदरबार में बातचीत करूँ, जिसमें राज्य को झाँकने का अधिकार नहीं है।''

''यही तो पूछ रही हूँ कि आपका मुझसे झगड़ा है तो क्या आपने मुझ पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहाँ भी वही आरोप लगाया है, जो यहाँ नित्य लगाते रहते हैं ?''

''नहीं देवी, मैं यह विषय अपने दोनों के भीतर का ही मानता हूँ और मैं वह राज्य के अधीन नहीं लाना चाहता।

''देखिए, देवीजी, जब हमारा विवाह हुआ था तो राज्य साक्षी नहीं था। हमारे परस्पर वचन हुए थे तो राज्य साक्षी नहीं था। इस कारण अब जब झगड़ा है तो भी राज्य साक्षी नहीं होगा।''

''परंतु यदि आपने मुझे घर से निकाला अथवा निकालने का यत्न किया तो यह राज्य का मामला हो जाएगा। तब मैं राज्य के पास याचिका करूँगी। केवल मौखिक झगड़े के लिए राजद्वार को खटखटाने की आवश्यकता नहीं समझती। मौखिक बातें मुख से ही निपटायी जा सकती हैं और आपका मुख है तो परमात्मा ने मुझे भी मुख दिया है।''

सुधाकर मुस्कराकर बोला, ''ठीक है। मैं समझता हूँ कि पति-पत्नी का झगड़ा राज्य-न्यायालय का विषय नहीं होना चाहिए।''

''हाँ, तब तक ही जब तक झगड़ा मौखिक रहेगा। यदि पुरुष का पशुपन उभरा और वाचालता के स्थान हाथों की सामर्थ्य झगड़े में कूद पड़ी तो फिर प्रजा की दिन-रात रक्षा करने वाला राजदंड कार्य करेगा ही।''

''ठीक है। अभी तक एक ब्राह्मण का हाथ नारीरत्न नन्दिनी पर नहीं उठा। इस कारण न्यायालय का द्वार खटखटाने की आवश्यकता नहीं है।

''अत: मैं समझता हूँ कि देवीजी को और न ही पुरोहितजी के रथ को राजप्रासाद की यात्रा का कष्ट करने की आवश्यकता है। मैं समझता हूँ कि ब्राह्मण की अनिष्ठावान पत्नी को महारानीजी का निमंत्रण और फिर उनके ले जाने के लिए राजकीय रथ शीघ्र ही आने वाला है।''

''तब तो मैं समझती हूँ कि इस समय वहाँ जाने की आवश्यकता नहीं। सार्वजनिक दर्शन से निजी आगार में समीप से दर्शन अधिक लाभकारी होंगे।''

''हाँ,'' सुधा ने कहा, ''और फिर यह भी पता चला जाएगा कि बिटिया के विषय में क्या-क्या अनर्गल बातें वहाँ कह आए हैं।''

''कुछ नहीं कह आया।''

इतना कह सुधाकर अपने अध्ययन कक्ष में चला गया। वह इस बात पर संतोष अनुभव कर रहा था कि अभी तो बात टालने का यत्न कर आया है निमंत्रण आने तक वह कुछ न कुछ उपाय नन्दिनी को शांत रहने का कर देगा।

सायंकाल उसको सुधा से पृथक् से मिलने का अवसर मिला। सुधा घर के उद्यान से साग-भाजी उखाड़कर रात को पकाने के लिए लाई थी। सुधाकर नदी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तट पर घूमकर आया था। दोनों घर के द्वार में इकट्ठे प्रवेश कर रहे थे तो सुधाकर ने पूछा, ''मौसी, नन्दिनी मेरे विरुद्ध आरोप लगाने जा रही थी क्या महारानी के पास?''

''नहीं बेटा, ऐसा कोई विचार नहीं था।''

''इस पर भी तुम स्त्रियों की जिह्वा तो तुम्हारे वश में होती नहीं और थोड़े से प्रोत्साहन पर वह चलने लगती है। साथ ही जब चलने लगती है तो फिर इतने वेग से चलती है कि परमात्मा भी चाहे तो इसे रोक नहीं सकता।''

''तब तो बेटा सुधाकर, तुम अपनी पत्नी से भी अधिक स्त्रीत्व रखते हो।''

''क्यों? मैं तो बहुत कम बोलता हूँ।''

''यही तो कह रही हूँ कि जब बोलते हो तो फिर तुम्हारी वाणी से असीम तीखापन आ जाता है। जितना कुछ तुम अपनी पत्नी के साथ बोलते हो वह तो स्त्रियों के लड़ने को भी पराजित करता है।''

''वह बात दूसरी है। वह और मैं तो एक दूसरे का अंग है। हम परस्पर सहयोग से भी रह सकते हैं और विग्रह से भी । परंतु स्त्रियाँ तो परपुरुषों के साथ भी लड़ती-झगड़ती हैं और फिर उनके संग गाती-बजाती भी हैं।''

''सुधाकर, तुम कहते हो कि तुम महाराज से मिलकर आए हो और मुझे संदेह हो रहा है कि तुम वहाँ कुछ अनर्गल बातें बता आए हो और उसकी सफाई में तुम नन्दिनी पर आरोप लगाकर यह बहाने बना रहे हो।

''देखो, मैं बताती हूँ। महाराज के विषय में तो मैं जानती नहीं, परंतु राज्य के महामंत्री के विषय में मैंने सुना है कि उसकी दृष्टि से कुछ भी छुपा नहीं है। वह राज्य के प्रत्येक व्यक्ति की गतिविधियों के विषय में जानता है।

''यदि तुमने कुछ भी मिथ्या बात उससे कही है तो वह तुम्हें क्षमा नहीं करेगा। वह तुम्हारे मिथ्यात्व को जान जाएगा और फिर इस सनातन धर्म के उल्लंघन का कठोर दंड देगा। सबसे पहले तुम्हें राज्य की ओर से मिल रही सहायता रोक दी जाएगी। अधर्मात्मा से शास्त्रीय खोजन नहीं हो सकती।''

इस पर तो सुधाकर को पाँव तले से मिट्टी खिसकती प्रतीत होने लगी। ''मौसी,'' उसने अपने चित्त को स्थिर करते हुए कहा, ''तुमने अपने कथन से यह सिद्ध कर दिया है कि तुम दोनों मेरे विरुद्ध किसी प्रकार का अभियोग चलाने जा रही थीं।''

''यह तो सिद्ध नहीं हुआ। हाँ, यह सिद्ध हो गया है कि तुमने अवश्य वहाँ नन्दिनी के विरुद्ध कुछ कहा है। तभी तो तुमको चिंता लग रही है कि हम वहाँ क्यों जा रहे हैं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"देखो बेटा सुधाकर, यह तुम्हारे अपने मन का पाप ही है जो तुम्हारे भयभीत मुख से निकल रहा है। मेरी सम्मति मानो। जाओ और नन्दिनी से सुलह कर लो और यत्न करो कि वह तुम्हें वहाँ झूठा सिद्ध करने का यत्न न करे और यदि तुमने कुछ कहा है तो वह कह देगी कि तुमने किसी भ्रम में कह दिया होगा। वास्तव में तुम कुछ बुरे व्यक्ति नहीं हो। अन्यथा यदि महारानी ने कुछ तुम्हारे मिथ्या आरोप की बात कही तो वह उसे मिथ्या सिद्ध कर देगी। असत्य भाषण महा पाप है, परंतु भ्रम में कही बात क्षमा योग्य होती है।"

इतना कह सुधा रसोईघर में खेत से लाई साग-भाजी धो-पोंछकर बनाने चली गई।

सुधाकर जानता था कि उसने नन्दिनी के विरुद्ध कुछ नहीं कहा। उसने तो उसकी बिना इच्छा के प्रशंसा ही की है। इस कारण यदि नन्दिनी अपने आप उसके विरुद्ध किसी प्रकार की बात नहीं कहेगी तो कुछ नहीं होगा। इस कारण वह समझता था कि नन्दिनी को किंचित् प्रसन्न करने से वह उसे कुछ भी कहने से मना कर सकेगा। अत: वह नन्दिनी से सुलह कर लेने का यत्न करने की योजना बनाने लगा।

रात के भोजनोपरांत वह नन्दिनी के शयनागार में जा पहुँचा और उससे महारानी से हुए वार्तालाप का वर्णन करने लगा। उसने बताया, "नन्दिनी, सुधा को सन्देह हो गया है कि मैं तुम्हारे विषय में महाराज अथवा महारानी से कुछ कह आया हूँ। यह ठीक है कि तुम्हारे विषय में बात हुई थी, परंतु जो कुछ मैंने कहा उससे तो तुम्हारी विद्वत्ता की चर्चा ही वहाँ होने लगी थी।

"मैंने वही धुएँ और कोहरे वाली बात कही थी। मैंने कहा था कि धुआँ कोहरा भी हो सकता है और उसके कारण अग्नि के स्थान पर क्षिप्रा नदी से उठ रहा कोहरा भी हो सकता है।

"तुम्हारे इस कथन को बड़ी महारानी और महामंत्री ने एक महान् विद्वत्ता की बात मानी और तुमसे भेंट करने की इच्छा प्रकट की। इस पर मैंने कहा कि मैं तुम्हें उनका संदेश कह दूँगा और यदि तुम चलने के लिए मान गई तो मैं तुम्हें अपने साथ वहाँ ले चलूँगा। इस पर बड़ी महारानीजी ने कहा कि मुझे कष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। वह स्वयं तुमको नियंत्रण भेजेंगी और तुम्हारे लिए रथ भेज देंगी। मैं यदि तुम चाहो तो तुम्हारे साथ उसी रथ में जा सकूँगा।"

नन्दिनी स्वभावानुसार चुपचाप सुनती रही और जब उसका पति अपनी बात समाप्त कर चुका तो उसने पूछा, "तो आप मुझसे किस बात की आशा करते हैं?"

"यही कि तुम्हारा-मेरा झगड़ा एक घरेलू बात है। इसमें राज्य न तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हस्तक्षेप कर सकता है और न ही करना चाहिए। इस कारण उस झगड़े का हम घर में ही निर्णय कर लें। उसे राजदरबार में ले जाने की आवश्यकता नहीं है।''

इस पर नन्दिनी ने अपनी बात अति संक्षेप में कह दी। उसने कहा, ''मैं स्वेच्छा से कुछ नहीं कहूँगी। यदि कोई कुछ पूछेगा तो झूठ नहीं बोलूँगी। हाँ, यदि उन्होंने पूछा कि मैं क्या चाहती हूँ तो कह दूँगी कि मैं आपकी पत्नी हूँ और पत्नी पद की मान-प्रतिष्ठा चाहती हूँ।''

''वह तो मैं तुम्हें दे रहा हूँ और उसमें यदि कुछ कमी रह गई हो तो सदैव उसकी पूर्ति करने के लिए तैयार हूँ।''

''अभी तक तो आप मुझ पर मिथ्या आरोप लगाते रहे हैं कि मैं असती हूँ। यह पत्नी पद का मान देते हैं क्या?''

''मैं अपने मन की सत्य बात ही कहता हूँ। इस पर भी मैंने अपने मुख से कभी किसी तीसरे व्यक्ति के सम्मुख कुछ नहीं कहा।''

''आपने अपने मित्र मधुकर के सम्मुख मेरी निन्दा की है और उसने उज्जयिनी के सब प्रतिष्ठित परिवारों में मेरी मिथ्या निन्दा फैला दी है। इसकी सूचना पिताजी को मिलती रहती है।''

''मधुकर ने जो कुछ भी कहा होगा वह मुझसे अथवा किसी से सुनी बात ही हो सकती है। सुनी बात को साक्षी के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। जो करता है वह मूर्ख है।''

नन्दिनी अपने पति से अधिक कुशलतापूर्वक युक्ति कर सकती थी। इस कारण उसने कहा, ''ठीक है। उसे सत्य मानने वाले मूर्ख हो सकते हैं, परंतु उसको असत्य भाषण करने वाला समझने वाले तो बुद्धिमान हो सकते हैं। और वे बुद्धिमान आपके मित्र पर असत्य भाषण का आरोप लगा सकते हैं। यह तो महान अधर्माचरण का आरोप है और इसके दंड से बचने के लिए आपके मित्र ने आपको साक्षी उपस्थित कर दिया तो आप भी असत्य भाषण के अपराधी माने जाएँगे।''

''मैं इसी को तो रोकना चाहता हूँ। मधुकर मूर्ख प्रतीत होता है। उसने पति-पत्नी के झगड़े में अपने को स्वतः एक पक्ष का समर्थक बना लिया है। परंतु एक तीसरे व्यक्ति को पति-पत्नी की गुह्य बातों में हस्तक्षेप करने वाला मान उस पर कोई बुद्धिमान विश्वास नहीं करेगा।''

''और यदि आपने मुझे मिथ्या गालियाँ दे-देकर निकाल दिया तो आप मूर्ख मधुकर का समर्थन करने वाले माने जाएँगे और आप मुख्य अपराधी बन जाएँगे।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''परंतु मैंने तुम्हें घर से निकाला तो नहीं है।''

''आप निकाल देने की धमकी तो देते रहते हैं।''

''हाँ। यह कुछ सीमा से बाहर बात हो जाती है। अच्छा, अब नहीं होगी।''

''तो मैं अपने आपके विरुद्ध कुछ नहीं कहूँगी और यह चाहूँगी कि पति-पत्नी के विवाद में राज्य हस्तक्षेप न करे।''

''बहुत धन्यवाद, नन्दिनी। मैं हृदय में तुमसे प्रेम करता हूँ। परंतु तुमने भी तो नित्य प्रातः मेरे पाँव दबाने छोड़ दिए हैं।''

''इसका आपने अवसर ही कब दिया है? प्रसूति-गृह से बाहर आते ही आपने झगड़ा करना आरंभ कर दिया था।''

''अच्छा, अब झगड़ा नहीं करूँगा।''

नन्दिनी ने समझा कि यह संभावना कि वह महारानी से मिल सकती है, कारगर सिद्ध हुई है। इससे उसने समझा कि यह हथियार जब वह चाहे, प्रयोग कर सकेगी। वह मौन रही।

अगले दिन वह पति के पाँव दबाने उसके जागने से पूर्व उसके शयनागार में जा पहुँची और फिर महारानी ध्रुवदेवी के नन्दिनी को निमंत्रण आने से पूर्व ही दोनों में पति-पत्नी संबंध बन गया।

जिस दिन सुधाकर महाराज से मिलकर आया था, उससे चार-पाँच दिन उपरांत नन्दिनी को महारानी ध्रुवदेवी का मध्याह्नोत्तर के अल्पाहार का निमंत्रण मिला। उस निमंत्रण में यह भी लिखा था कि आपके पतिदेव कुछ राजपरिवार के सदस्यों का काम करने के लिए ले गए थे। यदि उन्होंने वह काम कर लिया हो तो आचार्यजी को भी अपने साथ रथ में लेते आएँ।

यह निमंत्रण नन्दिनी को बहुत ही मानयुक्त व्यवहार समझ आया और वह अपने पति के प्रति सब विक्षोभ भूल गई। परिणाम यह हुआ कि जिस दिन वह महारानी से मिलने के लिए जाने वाली थी, उसने प्रातःकाल पति के पाँव दबाते हुए पूछा, ''आपने राजपरिवार का कार्य, जो आपको करने के लिए मिला था, किया है अथवा नहीं? मैं आज मध्याह्नोत्तर चार बजे का घड़ियाल बजते ही महारानीजी के दर्शन करने यहाँ से चल दूँगी।''

''मैंने कार्य समाप्त कर लिया है। सब कुछ लिखकर तैयार है। अतः मैं तुम्हारे साथ ही रथ पर चलूँगा।''

उस दिन जब राजकीय रथ नन्दिनी को लेने आया तो सुधाकर भी पत्नी के साथ राजप्रासाद को चल पड़ा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

:: 9 ::

पूर्ववत् महाराज विक्रमादित्य, वररुचि और दोनों राजपुरुषों की पत्नियाँ बैठक में उपस्थित थीं। प्रतिहार ने सूचना दी कि ज्योतिषीजी महाराज अपनी पत्नी के साथ आए हैं तो उनको तुरंत भीतर बुला लिया गया।

वररुचि ने आगार के द्वार तक पहुँचकर पंडित और नन्दिनी का स्वागत किया और उनको उनके लिए नियत आसनों पर बिठा दिया।

सुधाकर के लिए महाराज और वररुचि के साथ आसन था और नन्दिनी के लिए ध्रुवदेवी और कुबेर के बीच में आसान नियत था।

जब सब बैठ गए तो ध्रुवदेवी ने ताली बजाकर सेवक को अल्पाहार लगाने की आज्ञा दी। जब तक सेवक खाने-पीने का सामान लगाता रहा, सब मौन बैठे रहे। अल्पाहार की मिठाई के साथ पीने को कश्मीरी ढंग से बना पेय एक बड़े से समोवार में आ गया। समोवार में कोयले सुलग रहे थे और उसमें से निकलती भाप बता रही थी कि पेय गर्म है।

वररुचि ने मिठाई खाने का संकेत करते हुए कहा, ''यह हमारे मित्र मातृगुप्त ने कश्मीर की भेंट हमारे लिए भेजी है। हम समझते हैं कि आचार्यजी के लिए यह सर्वथा नवीन वस्तु होगी। इस पर भी यह बहुत स्वादिष्ट है और हम समझते हैं कि यह पसंद की जाएगी।''

इस पर महाराज ने वररुचि के कथन को पूर्ण कर दिया। उन्होंने कहा, ''मातृगुप्त इस समय कश्मीर नरेश का धर्म पालन कर रहा है। उसकी यह भेंट एक नरेश की दूसरे नरेश के प्रति मित्रता की सूचक है।''

इस समय सेवक पेय पीने के चीनी मिट्टी के पात्र ले आया और सबके सामने पात्र लगा गया।

वररुचि की पत्नी कालिन्दी ने सबके प्यालों में पेय डाला। आचार्यजी पीने लगे तो महाराज ने कहा, ''आचार्यवर, ध्यान से लीजिएगा। यह बहुत गर्म है। यह चुस्कियों में पीया जाता है।''

सुधाकर को वह कुछ कड़वी प्रतीत हुई। इस पर भी उसने स्वाद लेने का भाव प्रकट करते हुए कहा, ''यह स्वादिष्ट तो है।''

''इसका वास्तविक गुण तो आपको कुछ घंटे बाद अनुभव होगा।''

ध्रुवदेवी ने बात बदलकर कहा, ''तो पंडितजी, आप हमारा काम कर लाए हैं क्या?'' इस पर सुधाकर ने कागज के पत्रों पर कुछ लिखा हुआ अपने थैले में से निकाला और प्रत्येक पर नाम पढ़-पढ़कर उसे उसको दे दिया जिसका नाम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पत्र पर लिखा था। जिनकी कुंडली थी उनको कुंडलियों के नक्षत्रों की गिनती से निष्कर्ष लिखे गए थे और जिनकी कुंडलियाँ नहीं थीं, उनके विषय में भविष्यवाणी हस्तरेखाओं के अनुसार लिखी थीं।

सबने अपने-अपने कागज ले लिये और पढ़ने लगे। इसी समय ध्रुवदेवी ने एक प्रस्ताव कर दिया और समीप बैठी नन्दिनी से कुछ कान में पूछा और उसके मुस्करा देने पर आचार्यजी को संबोधित कर बोली, ''तो महाराज आपसे कुछ पूछेंगे और हम नन्दिनीजी से कुछ वार्तालाप पृथक् में बैठकर करेंगे।''

इतना कह बिना सुधाकर के उत्तर की प्रतीक्षा किए वह अपने साथ नन्दिनी और अन्य स्त्रियों को लेकर साथ वाले आगार में चली गई।

इस घटना पर सुधाकर के माथे पर चिंता की रेखाएँ दिखाई दीं। यद्यपि उसने उन रेखाओं को छुपाने का भरसक यत्न किया, परंतु वररुचि जैसे नीतिमान मंत्री से छुपी नहीं रह सकीं। वररुचि ने कहा, ''पंडितजी आप चिंता न करें। महारानीजी आपकी पत्नी को बरगलाएँगी नहीं।''

इस पर सुधाकर ने मुस्कराते हुए पूछा, ''परंतु महामंत्री, वह उसे बरगला कर क्या करेंगी ?''

''भगवन्, यह मैं क्या कह सकता हूँ। एक स्त्री दूसरी स्त्री को क्या कर सकती है, यह तो स्त्री स्त्री को ही बता सकती है।''

विक्रमादित्य ने बात बदल दी। वह अपने भविष्य के विषय में लिखे हुए पर पूछने लगे।

''आचार्यवर,'' महाराज ने पूछा, ''आपने मेरे विषय में कुछ न लिखते हुए इस साम्राज्य के विषय में ही लिखा है। मेरे निजी जीवन के विषय में कुछ नहीं लिखा!''

''महाराज, आपकी कुंडली पर नक्षत्रों का संयोग ऐसा है कि आपका साम्राज्य ही पूर्ण जीवन पर छाया हुआ है। आपका व्यक्तित्व राजकार्य के अतिरिक्त कुछ रहा प्रतीत नहीं होता। इस कारण नक्षत्र ऊँचे-ऊँचे स्वर में यही गर्जना कर रहे हैं।''

''तो यह साम्राज्य दो सौ वर्ष तक चलेगा ?''

''आपके प्रयास का फल दो सौ वर्ष तक रहेगा। आपके उत्तराधिकारियों में कोई अन्य तेजस्वी महाराज उत्पन्न हुआ तो यह साम्राज्य और भी अधिक चल सकता है, परंतु उनमें से किसी की भी जन्मकुंडली समक्ष न होने के कारण उनके कर्त्तव्य की व्याख्या नहीं हो सकी।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"आपने यह भी नहीं लिखा कि हम कब तक इस राज्य की सेवा कर सकेंगे?"

"यह हमने महारानीजी की जीवन-चर्चा में लिखा है कि उनका सुहाग कब तक रहेगा। यह उनके भाग्य में आपकी कुंडली से अधिक स्पष्ट था। मुझे ठीक तो स्मरण नहीं, परंतु इतना तो मस्तिष्क में है कि उनका सुहाग अभी सात-आठ वर्ष तक अक्षुण्ण बना रहेगा।"

"और हमारी दूसरी छोटी पत्नी के विषय में क्या लिखा है?"

"आप यह उनसे लेकर ही पढ़ लें।"

अब बातों का सूत्र वररुचि ने अपने हाथ में लेते हुए कहा, "तो मैं संन्यास लूँगा?"

"आप एक श्रेष्ठ ब्राह्मण की भाँति अपना जीवन किसी वन में समाप्त करेंगे। आपकी दोनों पत्नियाँ आपके साथ अंत तक रहेंगी। वे अरण्य में एक पृथक् कुटिया बना अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने का यत्न करेंगी।"

"परंतु आप तो आत्मा-परमात्मा के अस्तित्व को मानते नहीं?"

"जी नहीं। इस पर भी मैं पुनर्जन्म को मानता हूँ। मैं जीवात्मा को प्रकृति का एक सचेत और सतर्क रूप मानता हूँ। यह एक भँवर के समान है। किसी कारण से प्रकृति में भँवर पड़ रहे हैं और उनको प्राणी दृष्टिगोचर हो रहे हैं।"

इस पर विक्रमादित्य ने पूछा, "और यह सुख-दुःख का कारण क्या है और यह क्यों है?"

"यह भ्रम है। वास्तव में न सुख है और न दुःख है।"

"जब किसी पुरुष की पत्नी असत् व्यवहार वाली हो जाए तो उसे दुःख क्यों होता है। और फिर किसको होता है?"

"ये सुख-दुःख भँवर में विकृतियाँ हैं। भँवर में विकृतियाँ होती हैं तो भँवर की नियमित गति नहीं रहती और वह अनियमितपन ही सुख अथवा दुःख अनुभव होता है।"

"तब तो भँवर में विक्षोभ उत्पन्न करनेवाले कारण को दूर कर देना चाहिए न?"

"हाँ। वास्तव में विकृत भँवर ही प्राकृतिक नियमों के अधीन उस विकृति को दूर करने का यत्न करता है। कभी विकार उत्पन्न करने वाला कारण इतना प्रबल होता है कि भँवर उसे दूर करता-करता स्वयं कालरूपी सागर में विलीन हो जाता है।"

वररुचि समझ रहा था कि यह जैन जीवन मीमांसा और वैदिक जीवन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मीमांसा का मिश्रण है। वह इसी विषय में वार्तालाप आगे चलाना चाहता था कि विक्रमादित्य ने वररुचि ने कुछ भी कहने से पूर्व पूछ लिया, ''पंडितवर, सुधाकर नाम के भँवर में भी किसी प्रकार के प्रक्षेप से विकृति अनुभव हुई है अथवा नहीं ?''

सुधाकर इस प्रकार वार्तालाप का प्रवाह बदलने पर मौन हो विचार करने लगा।

महाराज और वररुचि उसके उत्तर की प्रतीक्षा में उसके मुख पर बदलते रंग देखने लगे। जब तीनों कुछ देर तक मिठाई खाते रहे और गंभीर विचार में निमग्न रहे तो मौन सुधाकर ने एक घूँट पेय से मिठाई गले से नीचे उतारते हुए कहा, ''महाराज, आप जीवन भँवर के परिणामों के वार्तालाप के विषय को बदलकर अध्यात्म विद्या पर ले आए हैं और यह पेय अब मुझे प्रेरणा देने लगा है कि मैं आपको अपने जीवन के विषय में कुछ निवेदन करूँ।

''मैं विवाह करना नहीं चाहता था। पंडित चन्द्रशरण रूपी भँवर मुझसे टकराया और परिणामस्वरूप नन्दिनीरूपी भँवर मेरे साथ छोड़ गया। कुछ देर तक तो दोनों भँवर शांति से अपने-अपने केंद्र पर चक्कर काटते रहे, परंतु इस समय एक अन्य मुझसे प्रबल भँवर नन्दिनी के भँवर से टकरा गया और उसका धक्का सुधाकर नाम के भँवर को भी लगा और मेरे भँवर तथा नन्दिनी के भँवर में भंयकर विक्षोभ मचा गया। अब कुछ दिन से वह विक्षोभ शांत होता प्रतीत हो रहा है। इस पर भी जब तक हम दोनों भँवर एक-दूसरे की परिधि में हस्तक्षेप करते रहेंगे, विकृति आती रहेगी। कभी सुख की कभी दुःख की।

''अभी यह विकृति सुखकारक हो गई प्रतीत होती है।''

''यह ठीक है,'' वररुचि ने इतनी स्पष्टवादिता के पश्चात् यह कह देना उचित समझा। उसने कहा, ''परंतु इस दिशा में एक महान भँवर चक्कर काट रहा है। वह महाराज विक्रमादित्य के नाम से विख्यात है। वह किसी भी भँवर को स्थानच्युत ही नहीं, वरंच उसे निःशेष भी कर सकता है। इस कारण आपको उस भँवर से सावधान रहना चाहिए। वह वर्णाश्रम धर्म का संरक्षक भँवर आपके गृहस्थ रूपी भँवर में विक्षोभ से प्रसन्न प्रतीत नहीं होता। यदि विकृत अवस्था कुछ अधिक काल तक प्रकट होती रही तो वह सुधाकर रूपी भँवर को विलीन भी कर सकता है।''

''तब तो महाराज की अत्यंत कृपा होगी। मैं तो संसार में अपने इस पृथक् अस्तित्व से सुखी अनुभव नहीं कर रहा। मैं संसार सागर में एकमय हो जाने की उत्कष्ट इच्छा रखता हूँ।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तब तो आपको सागर में भेज विलीन किया जा सकता है। वहाँ आप अपना अस्तित्व विनष्ट कर देंगे।"

"परन्तु प्रश्न यह होगा कि राज्य-नियम के विरुद्ध तो कोई भी भँवर स्थानच्युत नहीं किया जा सकता। तो महाराज क्या राज्य-नियम का विरोध करेंगे?"

"नहीं। महाराज ऐसा नहीं करेंगे। परंतु आपके लिए तो आपको निःशेष कर देना तो सुख की अनुभूति होगी।"

"इस पर भी महाराज अकारण किसी को न तो सुखी कर सकते हैं और न ही दुःखी।"

"यह तो तब ही है न जब संसार-सागर में पड़ रहे भँवर मुख फाड़-फाड़कर यह कहने लगें कि वे इस संसार में चलायमान नहीं रहना चाहते। तब जो भी इनको निश्चल करने की सामर्थ्य रखता है वह यह कल्याण का कार्य कर देगा।"

"परंतु महामंत्री यह शरीर शांत करने की बात मैं नहीं कह रहा। मैं तो इसमें चलायमान गति की बात कर रहा हूँ।"

"आचार्यवर, तो आप शरीर को चलायमान शक्ति से पृथक् मानते हैं! भँवर में चल रहा जल ही तो भँवर होता है। यदि जल को चलने से रोक दिया जाए तो यह शांत नहीं हो जाएगा क्या?"

सुधाकर इस युक्ति को न समझता हुआ मुख देखने लगा। वररुचि ने पूछ लिया, "तो नहीं समझे न? आचार्यवर, किसी कारण से सागर में भँवर पड़ जाने को ही आप प्राणी का जीवन मानते हैं। प्राणी के जीवन को तो खड्ग के एक झटके से समाप्त किया जा सकता है। भँवर समाप्त हो जाने पर शांति हो जाएगी। यही आप अपने लिए चाहते हैं न?

"वास्तविक वस्तु जल अर्थात् प्रकृति है। जीवन तो अस्वाभाविक स्थिति है, जैसे भँवर है। इस अस्वाभाविक स्थिति को कोई भी निरंकुश राजा समाप्त कर सकता है। कम से कम वह भँवरों की संख्या को कम कर सकता है। तो यदि आप स्वीकृति दें तो यह कल्याणकारी कार्य आपसे ही आरंभ किया जाए?"

सुधाकर ने बात बदल दी। उसने कहा, "मैं गणिताचार्य हूँ। मैं अध्यात्म ज्ञान का ज्ञाता नहीं हूँ।"

"तब ठीक है। आप यह बात गलत कहने लगे थे कि आप संसार में एक भँवर मात्र हैं और उस संसार में रहते हुए अपने को सुधार सकेंगे अथवा नहीं?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
यह तो आप तब ही कह सकते हैं जबकि आप शरीर के अतिरिक्त अपने को कुछ मानें।''

''मान लूँ तो क्या होगा?''

''होगा यह कि आप अपने भावी जीवन और वर्तमान जीवन में संबंध मानेंगे। संबंध बनाने वाली वस्तु जीवात्मा है। जीवात्मा कार्य करता है और कर्मफल भोगता है।''

''महामंत्री, यही तो मैं कर रहा हूँ।''

''तो क्या आप यह भी कह रहे हैं कि जो कुछ आप आज कह रहे हैं वह यदि अन्याय हुआ तो अगले जन्म में आपको उसका फल भोगना पड़ेगा?''

''हाँ, ऐसी किंवन्दती है।''

''तो आपने बड़ी महारानी के पूर्व जन्म के विषय में कुछ बताया है?''

''मैं उसको व्यर्थ का प्रयास समझता हूँ। इस कारण मैंने इस विषय पर परिश्रम करना असंभव मान कुछ नहीं किया।''

''परंतु सुना है कि इस विषय में भृगु संहिता कहने वाले ने कुछ यत्न किया है?''

''हाँ, परंतु मैं उसको भी व्यर्थ मानता हूँ। महरानीजी की कुंडली तो थी नहीं। हस्तरेखाओं पर ही अपनी गणना की है और वे रेखाएँ इस जन्म के शरीर से संबंध रखती हैं।''

बात महाराज विक्रमादित्य ने समाप्त कर दी। उन्होंने पूछा, ''आप सामान्य ग्राहकों से एक कुंडली देखने का क्या लेते हैं?''

''शून्य से एक सौ रजत तक जो कोई स्वेच्छा से दे दे। मैंने कभी माँगा नहीं।''

''तब तो ठीक है।''

इसके उपरांत सामान्य विषयों पर वार्तालाप होता रहा। वररुचि ने पूछा, ''आपकी पत्नी के पिता कैसे व्यक्ति हैं?''

सुधाकर ने पंडित चन्द्रशरण के विषय में बताने के बजाय एक सामान्य वक्तव्य कर दिया। उसने कहा, ''यह किंवन्दती है कि वैष्णव नेतागण शाक्तों से अधिक दुराचारी होते हैं।''

''और आप महाकाल के पुजारी को किस मत का अनुयायी मानते हैं? महाकाल को भैरव ही मानने हैं और भैरव का मदिरा-मांस इत्यादि भोज्य पदार्थ हैं। भैरव की पत्नी दुर्गा तो बकरे की बलि लेती है।''

''मैं ईश्वर-परमात्मा को मानता नहीं और सब मत-मतान्तर परमात्मा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर कल्पित किए गए हैं। अव्यक्त, सर्वव्यापक वस्तु से लेकर पत्थर के लिंगाकार टुकड़े तक को परमात्मा माना जाता है। इससे मैं मत-मतान्तरों के विवाद से बाहर हूँ। मैं परमात्मा को ही नहीं मानता। न होगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी।''

''आप तो बहुत ही गुणी व्यक्ति प्रतीत होते हैं। परंतु आप धर्म में किसको प्रमाण मानते हैं। आस्तिक तो यह मानते हैं कि भगवान परमात्मा ने एक विधि-विधान बनाया है और मनुष्य को उसके अधीन रहना चाहिए। आप अपने निजी जीवन को किस प्रकार, मेरा अभिप्राय है कि किस नियम से चलाते हैं?''

''जहाँ तक राज्य-नियम का संबंध है, वह तो महाराज की कृपा से बहुत अच्छा इस राज्य को मिल रहा है। जहाँ तक उस व्यवहार का संबंध है जिस पर राज्य का अधिकार नहीं, वह मैं अपने मन से निश्चय करता हूँ। आस्तिक लोग मन को ही अंतरात्मा का नाम देते हैं। परंतु मैं मन को ही प्राणी रूपी भँवर का केंद्र मानता हूँ और वही मेरे व्यवहार का मापदंड है।''

इस समय महारानी ध्रुवदेवी इत्यादि स्त्रियाँ बगल वाले आगार से निकल आईं और वररुचि, सुधाकर और उसकी पत्नी को साथ लेकर बाहर राजप्रासाद के द्वार पर खड़े रथ तक छोड़ने चला गया।

जब सुधाकर रथ पर बैठा तो प्रतिहार एक थैली, जिसमें कुछ धन था, पंडितजी के चरणों में रखकर बोला, ''महाराज की आज्ञा से कोषाध्यक्ष ने यह आपको देने के लिए दिया है।''

:: 10 ::

नन्दिनी से महारानी ध्रुवदेवी के वार्तालाप का वृत्तांत कालिन्दी ने अपने पति वररुचि को बताया। उसने उसी रात भोजन के समय बताया,''जिस दिन गणिताचार्य पहली बार महाराज से मिलने आए थे उसी दिन से एकाएक उनका व्यवहार अपनी पत्नी से बदल गया था। वह अब रात को पत्नी के शयनागार में सोता है और प्रत्येक प्रकार से अपनी पत्नी को यह विश्वास दिलाने का यत्न कर रहा है कि उसे अपने पूर्व के व्यवहार पर पश्चाताप लग रहा है।

''नन्दिनी समझ नहीं सकी कि यह एकाएक मन का विकार दूर कैसे हो गया है?''

''मैं समझाता हूँ कि यह पंडित अति धूर्त है। उसके अपनी पत्नी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बदले व्यवहार में कारण महारानी का उसकी पत्नी से मिलने की इच्छा प्रकट करना है। वह डर गया प्रतीत होता है कि कहीं उसने पति के व्यवहार की बात महारानी से कही तो महाराज प्रत्यक्ष न सही, किंतु अप्रत्यक्ष रूप में तो रुष्ट हो ही जाएँगे।''

''नन्दिनी एक अति प्रखर बुद्धि रखने वाली स्त्री प्रतीत हुई है। मैंने उससे पूछा था, 'नन्दिनी, क्या तुम समझती हो कि अब तुम्हें जीवन-भर पति-सुख प्राप्त होगा?'

''उसका कहना था, 'आप मेरी माता तुल्य हैं। आयु के विचार से भी तथा पद के विचार से भी। इस कारण आपके समक्ष असत्य भाषण नहीं करूँगी। मैं उनको एक नास्तिक के समान ही अविश्वसनीय मानती हूँ। वह अपने व्यवहार में अपने मन को ही मापदंड मानते हैं, और मैं जानती हूँ कि मन अति चंचल होता है, इसका विश्वास नहीं किया जा सकता।'

''आचार्यजी न तो परमात्मा को स्वीकार करते हैं और न ही जीवात्मा के अस्तित्व को। परिणाम यह है कि वह अपने मन की करते हैं और यही मन सुख-दुःख कर्ता, इनके व्यवहार में पथ प्रदर्शन करता है।''

वररुचि ने कहा, ''मैं भी इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ कि यह अति भयंकर जीव है। केवल एक आशा है कि यह अति भीरु भी है। यह मरने से और दुःख से अति भयभीत है। इस कारण इसको तो दंड का भय ही सन्मार्ग दिखा सकता है।

''कठिनाई यह है कि इसके शयनागार में राजदंड पहुँच नहीं सकता और यह किसी समय भी अपनी पत्नी का अनिष्ट कर सकता है।''

''महारानी ने तो नन्दिनी को यह सम्मति दी है कि वह इसका घर छोड़ अपने को विधवा मान अपने पिता के घर में रहने चली जाए। पति के घर में तो इसका जीवन एक छोटे-से दीपक की भाँति एक ही फूँक से बुझाया जा सकेगा।''

''तो उसने क्या कहा है?''

''उसने महारानी की सम्मति स्वीकार नहीं की। वह कहती थी कि उसका एक लड़का है। वह दो वर्ष की वयस का है और जिस सामर्थ्य से उसके पति ने पुनः उसे ग्रहण किया है तो वह एक अन्य बालक की आशा करती है। इस प्रकार वह अपने पाँव भूमि में गड़ रहे अनुभव करती है।

''उसका कहना था कि वह अब इन बच्चों के पालन-पोषण द्वारा पितृऋण से मुक्त होने का यत्न करेगी। साथ ही उसने सतर्क रहने का अपना संकल्प बताया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''इस पर महारानीजी ने उसे एक कटार दी है। महारानीजी ने कहा है कि वह कटार को सदैव अपने पास रखे और उससे अपने शरीर की रक्षा करे जिससे वह मानव जीवन के पाँचों ऋणों से मुक्त हो सके।''

ठीक इसी समय सुधाकर अपनी पत्नी से कह रहा था, ''मैं तो समझा था कि महाराज मुझे कुछ भी भेंट अथवा मेरे परिश्रम का मूल्य नहीं देंगे। परंतु उन्होंने पाँच सौ स्वर्ण दिए हैं।''

''तो आप प्रसन्न हैं?'' नन्दिनी ने पूछा।

''भेंट की राशि से तो प्रसन्न हूँ। परंतु उनके महामंत्री की धमकी को भी सुन आया हूँ। वह तो बहुत ही दुष्ट व्यक्ति प्रतीत होता है।''

''क्या धमकी दी है उसने? उसकी पत्नियाँ तो पति से बहुत प्रसन्न प्रतीत होती थीं।''

''पत्नियों को तो सब पति प्रसन्न रखते हैं। मैं उनकी पत्नी नहीं हूँ।''

''परंतु श्रीमान, आप मुझे भी अपनी पत्नी मानते हैं अथवा नहीं?''

''नहीं मानता होता तो यह कमल कैसे उत्पन्न हो जाता?''

''यह तो किसी भी स्त्री से संयोग का फल हो सकता है। पत्नी अथवा राजमार्ग पर चलती-फिरती से। मैं समझती हूँ कि आपने मेरे साथ पत्नी का-सा व्यवहार कभी नहीं किया।''

''ओह! तो संतानोत्पत्ति के अतिरिक्त और किस प्रकार के व्यवहार को तुम पति का व्यवहार समझती हो?''

''वह महामंत्री की पत्नी ने बताया है। वह कहती थी कि हमारे शास्त्र कहते हैं कि पति-पत्नी का संयोग पूर्व जन्म के कर्म के फल से होता है। यह जीवात्मा से संयोग होता है। अतः पति-पत्नी के परस्पर संबंध आत्मा-आत्मा के कर्मों में होने चाहिए। शरीर धर्मों को गौण मानना चाहिए।''

''पर मैं तो आत्मा के अस्तित्व को मानता नहीं। तो फिर आत्मा-आत्मा के संयोग को कैसे मान सकता हूँ?''

''आपके मानने-न मानने से तो संसार नहीं चल रहा। संसार तो चल ही रहा है। चाहे आप उसके अस्तित्व को मानें और चाहे न मानें।''

''तो तुम अपने में आत्मा की उपस्थिति अनुभव करती हो?''

''तभी तो कह रही हूँ। आत्मा तो आप में भी है और उसका भी अनुभव पिछले सात-आठ वर्ष से कर रही हूँ।''

''तब तो ठीक है। तुम ऐसा अनुभव किया करो और अपने आत्मा के सहयोगी का मान-सम्मान किया करो।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परंतु बहन कालिन्दी ने सहयोगी आत्मा की प्रवृत्ति जिसे स्वभाव कहते हैं, जानने का ढंग बताया है।"

"ओह! उससे तुमने मुझमें जीवात्मा के स्वभाव को जाना है?"

"जी। और ऐसा समझ आया है कि उस पर इतनी मिट्टी चढ़ी हुई है कि उसका वास्तविक स्वरूप भलीभाँति दिखाई नहीं दे रहा। उस मिट्टी का ही स्वरूप दिखाई दे रहा है और वह अत्यंत अशोभनीय है।"

"इस पर भी तुम मुझे अपनी शैया पर स्थान देती हो?"

"जी। यह शरीर का धर्म है। भाग्यवती, महामंत्री की दूसरी पत्नी कहती थी कि इस शरीर का यह विकृत स्वरूप इसकी त्रिगुणात्मक अवस्था के कारण है। जगत की प्रत्येक वस्तु में तीनों गुण असंतुलित अवस्था में होते हैं और किसी में एक गुण प्रधान हो जाता है और किसी में दूसरा गुण। आपमें भी गुण प्रधान है।"

"कौन-सा गुण प्रधान है?"

"जो लक्षण भाग्यवती ने बताए हैं उनसे कह सकती हूँ कि आपमें तमस् गुण उभर रहा है।"

"वह क्या होता है?"

"सात्त्विक और रजस् गुण के विपरीत तमस् होता है। यह आलस्य, प्रमाद, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार इत्यादि अनेकानेक दुर्गुणों का सूचक है।"

"ओह! और तुम्हारे शरीर में कौन-सा गुण प्रधान है?"

"मेरे शरीर में तो सात्त्विक गुण का प्राबल्य प्रतीत होता है, परंतु मेरा जीवात्मा उस गुण पर भी शासन करता है और उसे आपके तमस् गुण विलीन होने नहीं देता। वह आपसे सम्पर्क पर भी अपना अस्तित्व बनाए रखता है।"

"ओह! अर्थात् जब तुम और मैं समागम में होते हैं तो तुम अपने सात्त्विक गुण को लपेटकर छुपाए हुए होती हो कि कहीं मेरे तमस् गुण में निस्तेज न हो जाए?"

"जी। उस पर प्रभु-भक्ति का आवरण चढ़ा लेती हूँ और आपका सब प्रभाव कमल पत्र पर जल की भाँति बिना भिगोए बह जाता है। परिणामस्वरूप मैं स्वच्छ सात्त्विक स्वभाव से युक्त बनी रहती हूँ।"

"तो यह कमल कैसे हो गया है? तो क्या यह तुममें और मुझमें गुणों के सम्मिश्रण का परिणाम नहीं है? यही तो मुझमें सन्देह उत्पन्न करता है कि यह कहाँ से तुम्हारा कमल पुत्र आया है ?"

"श्रीमान, किसी दुर्बलता के समय कमल पत्र पर जल की बूँद टिकी रह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई है और यह पुत्ररत्न मिल गया है।''

''यह सब बकवास है। ऐसी कोई बात नहीं। मुझे भलीभाँति स्मरण है कि उस दिन तुम और मैं अति प्रेममय व्यवहार में थे। हमने स्वेच्छा से सहवास किया था। वैसा ही अनुभव मुझे तीन-चार दिन हुए, जब मैंने तुमसे सुलह की थी, हुआ है। मैं आशा कर रहा हूँ कि उस दिन भी मैंने किसी निर्माण मे योगदान दिया है।''

''बात वही है जो मैंने निवेदन की है कि किसी दुर्बलता के समय मैंने अपने सात्त्विक गुण को आपके तामसी गुण के अधीन कर दिया था और उसका ही परिणाम यह कमल हो गया है और वैसे ही अनुभव से किसी अन्य प्राणी के आने की मैं आशा कर रही हूँ।''

''तो ये दोनों संतान भी दुर्बल ही होंगी?''

''वह तो अपने पूर्व जन्म के कर्मों से होंगी। यह आप अपने ज्योतिष शास्त्र से पता करिए कि यह सन्तान किस स्वभाव की होगी?''

''परन्तु मैंने तो पूर्व जन्म में न झाँकने का प्रण किया हुआ है।''

''क्यों?''

''यह इस कारण कि मुझे उसकी सत्यता पर विश्वास नहीं होता।''

''तो किसी के पूर्व जन्म का वृत्तांत जाना है?''

''स्वयं का ही जानने का यत्न किया था?''

''तो क्या पता चला?''

''बताऊँगा नहीं। साथ ही मैं अब किसी के भी पूर्व जन्म का वृत्तांत जानने का यत्न नहीं करता।''

''तो आपने बड़ी महारानीजी के भी पूर्व जन्म के विषय में कुछ नहीं बताया?''

''नहीं। मैंने जानने का यत्न ही नहीं किया। देखो नन्दिनी, प्रायः मनुष्य यमलोक में अपने पाप-कर्मों को भोगकर निःशेष कर यहाँ आते हैं और यमलोक का दृश्य जो दिखाई दिया है, इतना भयंकर है कि उसे स्मरण कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।''

''अभिप्राय यह कि आप यमलोक से आचार्य बने हैं?''

''हाँ।''

''जहाँ तक शास्त्रों का कथन है, यमलोक तो कीट-पतंगों, पशु-पक्षी इत्यादि की योनि होती है।''

''हाँ। उस योनि में जीव अपना मार्ग बनाने में असमर्थ होता है। उससे पहले जन्म के कर्मों के अधीन वह वहाँ भोग मात्र करता है।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''अर्थात् आप पहले मानव जन्म के पाप-कर्मों का फल भोगकर इस जन्म में आए हैं? तब तो मैं समझती हूँ कि आपका यह श्रेय मानना चाहिए कि आप यमलोक से निकल आए हैं।''

सुधाकर परेशानी अनुभव करता हुआ पत्नी का मुख देख रहा था। वह कुछ उत्तर नहीं दे रहा था। इस पर नन्दिनी ने कहा, ''तब तो आपको वर्तमान जीवन में कुछ ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे पुनः यमलोक का द्वार देखना पड़े।''

''मैं बहुत सावधान हूँ कि कोई बुरा काम न करूँ।''

''परंतु आपने किया तो है। दो वर्ष से ऊपर तक आपने अपनी विवाहिता पत्नी का बहिष्कार किया हुआ था।''

''बात यह है कि मैं सत्य हृदय से तुम्हें बहिष्कार योग्य समझता था और सत्य विचार करना, बोलना, आचरण करना परम धर्म है। इस कारण मैं उस समय सत्य व्यवहार ही कर रहा था।''

''तो अब आपने व्यवहार बदलने से पूर्व विश्वास कर लिया है कि मैं बहिष्कार योग्य नहीं रही।''

''नन्दिनी, छोड़ो इस बात को। मुझे इस विषय पर बात करते हुए अपना पूर्व जन्म स्मरण आ जाता है ओर फिर कई-कई रात तक नींद नहीं आती।''

''परंतु पूर्व का स्मरण कर ही तो आगे के जीवन का सुधार किया जा सकता है।''

''इसी से मैं मन में विचार करने लगता हूँ कि पूर्व जन्म होता ही नहीं। उसको अर्थात् अपने गणित से जानने पर मैं विश्वास करने का यत्न करता हूँ। तब मुझे सुख और शांति मिलती है।''

''यही तो पशुवत् जीवन है। देखिए, एक गाय ने किसी के खेत में हरी-हरी घास देख मुख डाला तो खेत के मालिक ने दो लाठियाँ मार उसे खेत से निकाल दिया। कुछ समय उपरांत वह भूल जाती है और पुनः घास के लालच में खेत में घुसने का यत्न करती है।

''यह भूल जाना ही पशुपन है। आपकी इच्छा ऐसी प्रतीत हो रही है कि आप पुनः वही विस्मरण करने का स्वभाव बना लें अर्थात् आप पशु बनने का यत्न कर रहे हैं।''

सुधाकर काँप उठा और सोने की तैयारी करने लगा। नन्दिनी देख रही थी कि उसके शयनागार में जाने की वह इच्छा कर रहा है। पिछले चार दिन से वह निरन्तर उसके शयानागार का प्रयोग कर रहा था और वह अब कुछ अरुचि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभव करने लगी थी। इस कारण वह कह रही थी, ''श्रीमान्, आप अपने व्यवहार को भूलने लगे हैं।''

''क्या भूला हूँ?''

''आपका शयनागार उधर है।''

''अब चार दिन से इधर है।'' उसने नन्दिनी के शयनागार की ओर संकेत कर दिया।

''नहीं, अब दो वर्ष से हमारे सोने के आगार पृथक्-पृथक् हैं।''

''परन्तु पिछले चार दिन से तो एक ही था।''

''वह भूल थी। मैं समझती हूँ कि उस भूल को सुधार लेना चाहिए।''

''मैं समझता हूँ कि जब तक वसंत है तब तक मन को चहचहाने देना चाहिए। वसंत समाप्त होगा तो फिर शयनागार पृथक्-पृथक् कर लेंगे।''

''नहीं श्रीमान्, आपने आज पुनः अपने और मेरे में एक लकीर खींच दी है।''

''कहाँ खींच दी है और कैसे खींच दी है?''

''अपने में पुनः वही प्रवृत्ति प्रकट कर जो यमलोक के प्राणियों में होती है।''

सुधाकर गंभीर विचार में निमग्न हो गया और अन्यमस्क भाव से पत्नी का मुख देखने लगा। इसे सुअवसर देख नन्दिनी लपककर अपने शयनागार में घुस गई और भीतर से द्वार बंद कर सो गई।

सुधाकर कुछ देर तक उसके द्वार के बाहर खड़ा द्वार खटखटाता रहा, परंतु जब द्वार नहीं खुला तो अपने कमरे में जाकर सो रहा।

:: 11 ::

दिन पर दिन व्यतीत होने लगे और नन्दिनी ने पति को शयनागार में आने नहीं दिया। महाराज के यहाँ से भेंट में पाँच सौ स्वर्ण मुद्रा प्राप्त किए एक मास से ऊपर हो चुका था कि वहाँ से पुनः एक दिन सुधाकर को बुला लिया गया। इस बार महाराज अकेले थे। मध्याह्नोत्तर के अल्पाहार का समय था और दूध, मिठाई इत्यादि परसी हुई थी। महाराज ने आचार्य सुधाकर को अपने समीप बिठाकर दूध लेने को कहा तो आचार्य ने कह दिया, ''आज वह कश्मीरी पेय नहीं मिलेगा?''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो वह बहुत स्वादिष्ट प्रतीत हुआ था?"

"जी, और बहुत उत्तेजक भी।"

"तो अपनी पत्नी को बहुत कष्ट दिया होगा?"

'नहीं महाराज, उस दिन से आज तक तो नन्दिनी देवी ने मुझे अपने पास फटकने नहीं दिया।"

"ओह! तो यह उस पेय का प्रभाव है?"

"कह नहीं सकता कि उसके चित्त पर किस बात का प्रभाव हुआ है। हाँ, मेरे मन पर आपसे पिलाए पेय का प्रभाव कई दिन तक रहा है और मैं अपने शयनागार में वियोग की घड़ियाँ बहुत ही कठिनाई से व्यतीत करता रहा हूँ। अब कुछ दिन से उस पेय का प्रभाव कम हुआ है और चित्त को शांति मिलने लगी है।"

"परंतु पेय तो उसने भी पीया था।"

"उसके चित्त की बर्फ को वह पिघला नहीं सका।"

"इसका यह अर्थ हुआ कि आपका चित्त पहले ही वाष्प बन चुका था और पेय ने उस वाष्प को अति चंचल कर दिया था।"

"कुछ ऐसा ही प्रतीत होता है।"

"तो अभी वाष्प का रूप ही है अथवा जल और बर्फ बन गया है?"

"अभी जलीय अवस्था उत्पन्न हुई है, बर्फ की नौबत नहीं आई। महाराज, चित्त की बर्फ की स्थिति तो मैं वृद्धावस्था समझता हूँ। वह अवस्था मेरी नहीं है।"

"और नन्दिनी वृद्धावस्था को प्राप्त कर चुकी है?"

"जी, यही समझ में आया है।"

"तो फिर क्या विचार है?"

"मैं नवीन विवाह की आवश्यकता अनुभव कर रहा हूँ।"

"यह तो अति भयंकर स्थिति निर्माण कर देंगे। दो पत्नियाँ तो आचार्यवर को नरक धाम के दर्शन करा देंगी।"

"परंतु संसार में अनेक हैं जो एक से अधिक पत्नियाँ रखते हुए स्वर्गधाम में विचरते प्रतीत होते हैं।" सुधाकर महाराज पर व्यंग्य कसने लगा था।

"हाँ, परंतु जहाँ-जहाँ भी पति ने दो पत्नियाँ की हैं, वहाँ नरक की सृष्टि ही हुई है। कुछ हैं जिनको दो पत्नियों ने वरा है, वहाँ नरक के स्थान स्वर्ग की सृष्टि प्रतीत हो सकती है।"

"मैं दोनों में अंतर नहीं समझा, महाराज।"

"यह बातों का विषय नहीं है, यह ज्ञान एवं अनुभव से ही प्राप्त होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना जान लेना चाहिए कि कार्य की दिशा ही उसका लक्ष्य निर्धारित करती है। विवाह की इच्छा पत्नी से पति की ओर है अथवा पति से पत्नी की ओर? यही स्वर्ग और नरक के मार्ग का निर्देशन है।''

''परंतु दोनों में अंतर क्या है?''

''तो फिर करके देख लो।''

''महाराज, क्षमा करें। क्या मैं जान सकता हूँ कि आपकी अवस्था में दिशा किस ओर रही है? पति से पत्नी की ओर अथवा पत्नी से पति की ओर?''

''यदि आपने महारानियों के पूर्व जन्म की ओर झाँकने का यत्न किया होता तो आप यह जान चुके होते। काशी के एक विद्वान ने इस विषय में अन्वेषण किया था और मैं उसके ही अन्वेषण के परिणाम वर्णन कर रहा हूँ।

''हमारे महामंत्री के विषय में भी यही बात स्पष्ट हो रही है। उनके भी दो विवाहों की इच्छा और उसमें प्रयत्न पत्नियों की ओर से हुआ था और वह अभी तक चल रहा है।''

सुधाकर समस्या के इस रूप पर विचार करता हुआ गंभीर हो गया। उसके अपने विषय में तो यह इच्छा उसके मन में उत्पन्न हुई थी, उसकी पत्नी ने तो उसका तिरस्कार किया था।

एक समय था कि बहिष्कार उसने किया था, परंतु अब बहिष्कार पत्नी की ओर से हो रहा था। नवीन विवाह की इच्छा भी उसी के मन में उत्पन्न हुई थी। वह विचार कर रहा था कि क्या यह नरक-द्वार की यात्रा हो रही है?

अपने पूर्वजन्म की जानकारी पर विचार करते हुए वह काँप उठा। उसको कँपकँपी होते महाराज विक्रम ने देखा तो पूछा, ''क्यों पंडितजी, किस बात से भयभीत हो रहे हैं?''

''महाराज, आपके सुझाव पर कि दो विवाह करने से मैं नरक की ओर प्रस्थान कर दूँगा, यह समझ में नहीं आया। इस पर भी आपकी इस विषय पर विवेचना तो विचारणीय है ही। मैं अब इस दिशा में भी विचार करूँगा।''

महाराज ने वार्तालाप का विषय बदल दिया। उन्होंने कहा, ''हमने आपको इस प्रयोजन से बुलाया है कि आपके विरुद्ध एक प्रबल आरोप महामंत्री के पास उपस्थित हुआ है।''

''वह क्या महाराज?'' सुधाकर ने पीते-पीते दूध का गिलास सामने चौकी पर रख उत्सुकता से महाराज के मुख की ओर देखना आरंभ कर दिया।

''आपने किसी महिला की कुंडली पर से उसके भविष्य का निरीक्षण किया है और वह लिखकर उसे दिया है। उसका आरोप है कि आपको तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
कुंडली पढ़ने का भी ढंग नहीं आता और आप प्रजागणों को ठग रहे हैं।

''यह आरोप आपके विरुद्ध महामंत्री के पास लगाया गया है। महामंत्री ने इस आरोप पर जाँच करने के लिए वह कुंडली और उस पर आपकी विवेचना काशी के तीन विख्यात ज्योतिष शास्त्र के ज्ञाताओं के पास भेजी है।

''मैंने आज्ञा दी है कि आप पर निर्णय देने से पूर्व दो बातें की जाएँ। एक तो यह कि आपको सफाई देने तथा उन पंडितों की विवेचना पर विवाद करने का अवसर मिले और दूसरी बात यह कि काशी के उन ज्योतिषियों की भी परीक्षा होनी चाहिए। यदि वे आपको मिथ्यावादी कहें तो उनके विषय में भी जाँच-पड़ताल हो कि वह भी कहीं छलना न हो।''

''महाराज, धन्यवाद। मैं उन ज्योतिषियों से वाद-विवाद करूँगा। वह महिला कौन है जिसने मेरे विरुद्ध अभियोग चलाया है?''

''यह अभी नहीं बताया जा सकता। कारण यह कि अभियोग यह नहीं कि उसे आपने छला है और उससे दो-चार रजत ठगकर ले लिए हैं। उसका अभियोग यह है कि आप इस विद्या से अनभिज्ञ होते हुए अपने को ज्ञानवान प्रकट कर रहे हैं और साम्राज्य के प्रजागणों को ठग रहे हैं।''

''और महाराज, यदि यह आरोप सिद्ध हो गया तो दंड क्या होगा?''

''मेरे राज्य में इस प्रकार का यह दूसरा अभियोग है। एक ऐसी ही याचिका पाटलिपुत्र में लगभग दस वर्ष पूर्व मेरे पास आई थी। एक युवा संन्यासी नगर में आया था और अपने भक्तों के पर्दे के पीछे कई स्त्रियों से सहवास कर चुका था। एक स्त्री ने आरोप लगाया था कि वह उसके पास साधना सीखने के लोभ में गई थी और उसकी भुक्त बन यह याचिका कर रही है।

''उसने यह भी कहा था कि उससे बलात्कार नहीं किया गया। उसने स्वेच्छा से उसका भुक्त बनना स्वीकार किया था, परंतु यदि यह संन्यासी के आवरण में न होता तो वह और कदाचित् अन्य भी कई स्त्रियाँ उसके मोहजाल में न फँसती। उसका भी आरोप था कि उस संन्यासी ने प्रजागणों से छलना खेली है और छलना का दंड उसे मिलना चाहिए।

''लगभग वैसा ही अभियोग आपके विरुद्ध है। महामंत्री वररुचि तो यहाँ उज्जयिनी में थे। मैंने बनारस से धर्मशास्त्री बुलाकर उस संन्यासी के विषय में जाँच कराई थी। शास्त्रियों ने सर्वसम्मति से उसे प्राणदंड दिया था। मैंने उस पर दया कर देश-निष्कासन का दंड दे दिया था। उसे ब्रह्म नदी के पार ले जाकर जंगल में छोड़ दिया गया था।''

''बहुत कड़ा दंड दिया था आपने?''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो उसे फाँसी पर लटकाना ठीक था?"

"नहीं महाराज, मेरी तुच्छ बुद्धि में यह अपराध उतना मात्र ही है जितना एक व्यापारी घटिया माल को बढ़िया कहकर बेचता है।"

"उस संन्यासी के विरुद्ध अभियोग सुनने वाले शास्त्रियों के सम्मुख यह विचार उपस्थित किया गया था। उन्होंने दोनों में अंतर बताया था। यह उस व्यापारी के समान अपराध माना गया था जो बोरों में चीनी के स्थान पर रेत भरकर बेच दे। सामान्य दुकानदार तो अपना माल दिखाता है। उस माल को प्रत्यक्ष बढ़िया कहता है। ग्राहक अपनी अज्ञानता के कारण मूल्य बढ़िया का दे जाता है। यह अज्ञानी ग्राहक का माल खरीदने जाने के कारण हैं। यह तैरना न जानने वाले का गहरे जल में कूदने के समान है। इसमें ग्राहक दोषी है। यदि अधिक नहीं तो दुकानदार से कम भी नहीं। परंतु दूसरी ओर जब बोरों पर लिखा हो चीनी और बीच में रेत हो तो ग्राहक का दोष नहीं, पूर्ण दोष दुकानदार का है। यह झूठ बोलकर ठगना है।

"आचार्यजी, कुछ ऐसा ही अपराध करने का आरोप आप पर है। यदि नक्षत्रों का पढ़ना ठीक होता और उनका फल निकालने में भूल होती तो यह कुछ अधिक गंभीर अपराध न होता, परंतु आपके विपरीत तो आरोप यह है कि आप ज्योतिष विद्या की 'अ-आ' भी नहीं जानते और अपने को महाज्योतिषी घोषित करते हैं।"

"महाराज, यह आरोप असत्य है। मैं ज्योतिष पढ़ा हूँ। मैं इसका प्रमाण उपस्थित कर दूँगा।"

"तब तो ठीक है। मैंने आपको यहाँ बुलाकर बताया है जिससे कि आप अपना पक्ष रखने के लिए तैयार रहें। महामंत्री का तो यह कहना था कि आपको बंदी बनाकर रखना चाहिए, अन्यथा आप लापता भी हो सकते हैं। परंतु मैंने यह विचार किया है कि आप अपनी पत्नी और बच्चे को छोड़कर कैसे भाग सकते हैं। इस कारण आप वचन दें कि अपने विरुद्ध अभियोग सुनने और उसका उत्तर देने के लिए उज्जयिनी में ही रहेंगे। साथ ही बुलाने पर उपस्थित हो जाएँगे।"

सुधाकर ने सतर्क उत्तर दिया, "मैं अपने को दोषी नहीं मानता। मुझे विश्वास है कि यदि वे शास्त्री मूर्ख और अनपढ़ न हुए तो मुझे अपराधी नहीं मानेंगे। अतः मैं भागने के लिए कोई कारण नहीं समझता।"

"तब तो ठीक है। मैंने एक मास हुआ आपसे सेवा ली थी अतः मैंने यह अपना कर्त्तव्य पालन कर दिया है। और आपको आने वाली आँधी की सूचना दे दी है। यह इस कारण कि आप उस आँधी का विरोध करने के लिए तैयार हो सकें।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''महाराज, यह अभियोग मेरे श्वसुर पंडित चन्द्रशरण की सहायता से तो नहीं लाया गया?''

''यह तुम महामंत्री से मिलकर पता कर सकते हो। मैं समझता हूँ कि वह बताएँगे नहीं। यह राज्य-नियम के विरुद्ध है कि अपराधियों के विरुद्ध राज्य को सूचना देने वाले का नाम-धाम बताया जाए। परंतु तुमने महामंत्री और उसकी पत्नियों की भी तो सेवा की थी और मैं समझता हूँ कि वे सब तुम्हारी सेवा से प्रसन्न थे। इस कारण महामंत्री तुम्हारी सहायता कर सकते हैं।

''ठीक है, महाराज। मैं आपका धन्यवाद करता हूँ। आपने मुझे समय पर सचेत कर दिया है। मैं महामंत्रीजी से मिल लेता हूँ।''

''हाँ, यह ठीक रहेगा।''

इस प्रकार सुधाकर विस्मय करता हुआ राजप्रासाद से निकल अपने घर को पैदल ही चल पड़ा। आज उसे जाने को रथ नहीं मिला। इस परिवर्तन से वह समझ रहा था कि उसका मान राज्य में कम हो रहा है।

वररुचि रहता तो राजप्रासाद में ही था, परंतु वह उससे निवास-स्थान पर मिलना नहीं चाहता था। वह विचार कर रहा था कि वह महामंत्री से अगले दिन मंत्रालय में मिलेगा। साथ ही वह चाहता था कि अपने परिचितों से सहायता माँग पता करे कि कौन है जिसने उसके विरुद्ध याचिका की है?

वह घर पहुँचा तो बैठक में नन्दिनी और उसकी माँ शशिदेवी बातें कर रही थीं। सुधाकर पहुँचा तो नन्दिनी की माँ ने संबोधन कर पूछ लिया, ''सुधाकरजी, स्वास्थ्य कैसा है?''

''शारीरिक स्वास्थ्य तो ठीक ही प्रतीत होता है, परंतु चित्त स्वस्थ नहीं है।''

''क्या कष्ट है चित्त में?''

''यह आपकी लड़की जानती है। इसे आपको बता देना चाहिए।''

''यह तो कुछ अन्य बात बता रही है। इसका कहना है कि तुम्हारे कमल का कोई भाई अथवा बहन और आ रहा है।''

''तो यह चित्त की स्थिरता का लक्षण हो सकता है क्या?''

''हाँ, बेटा, यह इस बात का सूचक है कि तुम अपने पितृ ऋण से मुक्त हो रहे हो। यदि यह लड़की हुई तो तुम और नन्दिनी दोनों समाज के एक ऋण से मुक्त हो जाओगे।' अब तुम दोनों के लिए अपने भावी जीवन के लिए संचय करना रह जाएगा।''

इस पर नन्दिनी ने कहा, ''माताजी, यह भावी जीवन पर विश्वास नहीं रखते।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"सत्य!" शशिदेवी सुधाकर के मुख पर विस्मय देख कहने लगी, "और तुम तो ज्योतिषी हो। तब भला तुम ज्योतिष किस विषय में लगाते हो? तुम लोगों के प्रारब्ध को ही तो टटोल-टटोलकर बताते हो? पूर्व और भावी जन्म नहीं तो प्रारब्ध के क्या अर्थ हैं?"

सुधाकर इस सरल से प्रश्न को सुन स्तब्ध रह गया। इसका अभिप्राय यह समझा गया कि यदि पुनर्जन्म को वह नहीं मानता तो ज्योतिषी बनकर लोगों को ठग रहा है। यही बात तो वह महाराज के मुख से सुनकर आया था कि उस पर अभियोग उपस्थित किया जा चुका है।

इससे उसके चित्त में पुनः घबराहट उत्पन्न होने लगी। परंतु चित्त को कड़ाकर बोला, "मैं पूर्व जन्मों को तो मानता हूँ, परंतु जीवात्मा को नहीं मानता।"

"ओह! तो भूत, वर्तमान और भविष्य को जोड़ने वाली कड़ी क्या है?"

"माताजी, आप समझ नहीं सकेंगी। यह गणित का विषय है। गणितज्ञ ही इसका उत्तर समझ सकते हैं।"

"गणित तो नहीं, परंतु शास्त्र मैं भी पढ़ी हूँ। मैं उसी से तो कह रही हूँ कि ब्रह्म सूत्रों में कहा है कि जब जीवात्मा यह शरीर छोड़ता है तो वह सूक्ष्म शरीर में लिपटा हुआ ऐसे दूसरे शरीर में चला जाता है जैसे गंध वायु में लिपटी हुई एक आगार से दूसरे आगार में चली जाती है।"

"माताजी, यह सब निराधार कल्पना मात्र है। यह ऐसे है जैसे कि किसी बहती नदी के जल में भँवर पड़ने लगें और नदी के प्रवाह में कोई रुकावट आ जाए तो जल के साथ भँवर बाधा पार कर भी बना रहता है। कभी भँवर मिट भी जाता है और कभी नहीं भी मिटता। इससे निश्चय नहीं कि अगला जन्म मिलेगा ही अथवा नहीं।"

"और यह सुख-दुःख भँवर को ही होता है?"

"हाँ। इसी सुख-दुःख का हम गणितशास्त्र से पता करते रहते हैं। यह भँवर बनाता है गणित शास्त्रानुसार और यह टूटता अथवा जन्म-जन्मांतर तक चलता भी गणित शास्त्रानुसार ही है और उसी से हम इन, मेरा अभिप्राय है कि सुख-दुःख का ज्ञान प्राप्त करते रहते हैं।"

अब पुनः नन्दिनी ने माँ को संबोधन कर कहा, "माताजी, इसी कारण मैं इस पति रूपी भँवर से पृथक् रहती हूँ। कहीं मुझसे टकराकर इनका भँवर छूट गया तो मैं विधवा हो जाऊँगी। तब मेरा क्या बनेगा, कह नहीं सकती।"

"परंतु नन्दिनी, यह भँवर नहीं है। इनका शरीर भँवर हो सकता है परंतु इस गतिमान शरीर के भीतर कुछ है जो इस भँवर से कुछ उत्कृष्ट है। मुझे खेद है कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
तुम भ्रम में फँसे हुए व्यक्ति से विवाह दी गई हो। इस पर भी मैं प्रसन्न हूँ कि परिणाम ठीक ही हो रहा है। तुम अब माँ हो। अभी एक बालक है। शीघ्र ही दो बालकों की माँ हो जाओगी। तब तुम्हारा अपना संसार बन जाएगा। यह भँवर रूपी भ्रमित जीव तुम्हारे संसार में आकर सुख पाएगा। तुम भी इनको सुख पहुँचाकर सुखी अनुभव करोगी। यह तुम्हारे संसार के निर्माण में योगदान देने वाले हैं।''

''परंतु माताजी,'' सुधाकर ने कहा, ''भला शरीर रूपी भँवर में आत्मा का अस्तित्व कैसे पता चलता है?''

शशिदेवी मुस्कराकर बोली, ''सूर्य, चन्द्र, तारागण को देखते हो?''

'उनसे तो मैं नित्य खेलता रहता हूँ।''

''वह निश्चित स्थान और समय पर उदय होते हैं और निश्चित स्थान तथा समय पर अस्त होते हैं।''

''हाँ, यह तो है ही। यदि ऐसा न होता तो हमारी गणना का कार्य कैसे चलता? कभी किसी समय गणना में और उदय काल देखने में अंतर दिखाई देता है तो हम विद्वान लोग अपनी गणना में भूल समझने लगते हैं। सूर्यादि की गति में अंतर नहीं। वह तो अटल, स्थिर गति से चलते रहते हैं।''

''और तुम्हारा भँवर भी ऐसे ही चलता है क्या? मैं यह समझकर इस समय आई थी कि तुम घर पर होगे और तुमसे मिलकर ही आऊँगी। परंतु तुम्हारा भँवर तो अपने केंद्र को छोड़ किसी अन्य स्थान पर चला गया था।''

''माताजी, किसी प्रबल भँवर ने मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लिया था।''

''तो क्या तुम जाने पर विवश थे? आकर्षित पदार्थ तो विवश होकर ही खींचे जाते हैं।''

सुधाकर विचार करने लगा कि क्या वह राजप्रासाद में जाने के लिए विवश था? उसे आज्ञा नहीं थी। महाराज ने कहा था कि सुविधानुसार उनसे मिल लूँ तो ठीक होगा। मैंने आज ही जाना उचित समझा था। कम से कम आज जाने की विवशता नहीं थी।

वह एक अन्य बात पर विचार कर रहा था। महाराज से अभियोग की बात सुन वह उज्ययिनी से लापता होने की बात विचार कर रहा था। यद्यपि उसने निश्चय नहीं किया था, पर वह यह समझ रहा था कि महामंत्री का व्यवहार देखकर ही वह उज्जयिनी में रहने का अथवा यहाँ से लापता हो जाने का विचार करेगा। उसे समझ आया कि नन्दिनी की माँ यही कह रही है कि वह यदि भँवर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही है तो सूर्य,चन्द्र, तारागण इत्यादि से भिन्न प्रकार का भँवर है। उसमें उनसे कुछ भिन्न बात है।

उसके आचार्य ने बताया था कि यह चित्त है जो प्राणी में जड़ वस्तुओं से भिन्न होता है। परंतु यह चित्त क्या है? यह केवल, मात्र गति ही तो नहीं, इसमें इच्छा नाम की वस्तु भी है। यह किसी कार्य को करे अथवा न करे, इसका निश्चय करने की शक्ति भी है।

फिर वह यह भी विचार कर रहा था कि उसकी पत्नी नन्दिनी है। वह रात को द्वार भीतर से बंद करके सोती है। क्यों? उसके शरीर को पति की संगत माँगना चाहिए। चित्त भी इस संगत के लिए लालायित होना चाहिए। इस पर भी यह शरीर की माँग का विरोध कर शयनागार का द्वार बंद कर सोती है। तो क्या यह जीवात्मा है?''

''क्या विचार कर रहे हैं सुधाकरजी?'' शशिदेवी ने पूछा।

सुधाकर ने बात बदल दी। उसने कहा, ''माताजी, यदि मैं उज्जयिनी छोड़ किसी अज्ञात स्थान पर चला जाऊँ तो आप कैसा अनुभव करेंगी?''

''मेरे अनुभव में तो कुछ अंतर नहीं पड़ेगा। हाँ, नन्दिनी की बात है। अपने अनुभव की बात तो यही बता सकती है।''

''परंतु इसे तो अब कई मास के लिए मेरी आवश्यकता नहीं है। घर पर अन्न-अनाज, धन-धान्य और रहने को मकान है। इसका पृथक् संसार भी लगभग बन गया है। इस कारण इसे तो सुख ही अनुभव होना चाहिए।''

''हाँ, परंतु इस नये बालक के दो वर्ष के हो जाने पर मैं पुनः आपकी आवश्यकता अनुभव कर सकती हूँ।''

''तब तक तो लौट भी सकता हूँ।''

''फिर मेरे विचार करने की बात नहीं। आप अपने सुख-दुःख की बात विचार कर लें।''

सुधाकर गंभीर भाव में उठा और अपने अध्ययन-कक्ष में चला गया। माँ ने नन्दिनी से कहा,''यह तुमने क्या किया?''

''माँ, यह नहीं जाएँगे। मधुमक्खियाँ पुष्पों में मधु की गंध का त्याग नहीं कर सकतीं।

परंतु सुधाकर अपने अध्ययन-कक्ष के दूसरे द्वार से निकल उज्जयिनी से भाग गया।

नौ मास के उपरांत नन्दिनी के एक लड़की हुई। उसका नाम स्वर्णलता रखा गया। कमल और स्वर्ण बिना पिता के पलने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा परिच्छेद

कश्मीर के महाराज मेघवाहन अपने गुरु और महामंत्री गोविन्दानन्द की सौम्य सम्मति से चौबीस वर्ष तक राज्य कर अपने पुत्र प्रवर सेन के हाथ में राज्य सौंप स्वर्ग सिधार गए।

राज्य-संचालन में नीति के पाँच स्वरूप वर्णन किए गए हैं—शम,दम, दान, भेद, दंड। ये नीतियाँ परस्पर विरोध रखती हुई भी एक ही उद्देश्य रखती हैं। उद्देश्य है प्रजा का संरक्षण। इस संरक्षण में संसार के पाँच प्रवृत्तियों के लोगों से व्यवहार रखने की आवश्यकता पड़ती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और वर्णाश्रमविहीन व्यक्ति। वैसे इन पाँच गुण, कर्म और स्वभाव के ही लोग मानव समाज में मिलते हैं। इनके साथ इनके अपने-अपने स्वभावानुसार ही व्यवहार रखना पड़ता है। राजा और राज्य को अपने प्रजागण और अपने देश की प्रजा के अतिरिक्त मनुष्यों से भी व्यवहार रखना होता है और उनमें भी पूर्वोक्त पाँच प्रकार के लोगों से ही वास्ता पड़ता है। इस कारण ही राजा को अपने व्यवहार में पाँच स्वरूप देने पड़ते हैं। ब्राह्मण के गुण, कर्म और स्वभाव वालों से शम नीति सदा शुभ गुण उत्पन्न करती है। क्षत्रिय स्वभाव वाले के साथ दम नीति का अवलंबन ही ठीक रहता है। क्षत्रिय वर्ग समाज में तेज का प्रतीक होता है और तेज पर नियंत्रण न रहे तो यह उच्छृंखल होने लगता है। वैश्य प्रवृत्ति के लोगों को दान से अनुकूल रखा जाता है। वैश्य समाज मानव शरीर में पेट के समान माना जाता है। जैसे पूर्ण शरीर की उपलब्धि पेट के अर्पण की जाती है, इसी प्रकार समाज का पूर्ण अर्जन वैश्य समुदाय के ही अर्पण किया जाता है। शूद्र प्रवृत्ति के लोगों को समाज में अनुकूल रखने के लिए भेद नीति सबसे अधिक सफल होती है। वर्णाश्रम धर्म से अतिरिक्त अर्थात् सब प्रकार से उच्छृंखल और अपने को ही धर्म और नियम का प्रवक्ता मानने वालों के लिए ही दंड नीति उपयुक्त समझी गई है।

भूल यह हो जाती है कि प्रायः राजा अथवा राज्य मंत्रिमंडल के घटक ऊपर कहे पाँच व्यवहारों का विश्लेषण नहीं कर पाते। इसमें विषमता यह भी हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाती है कि मनुष्य में सदा एक ही वर्ण का शुद्ध स्वभाव नहीं रहता। एक मनुष्य ब्राह्मण का आचार-व्यवहार रखता हुआ क्षत्रिय अथवा वैश्य स्वभाव के लक्षण प्रकट करने लगता है। उस समय राज्य की ओर से उसके साथ व्यवहार में भूल हो जानी अधिक संभव है अथवा वर्ण-धर्म के अनुसार व्यवहार रखने वाला वर्णातीत व्यवहार स्वीकार कर लेता है। उस समय राजा अथवा राज्य उसके साथ पूर्ववत् व्यवहार रखता हुआ ठीक नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार की विषमता वैश्य वर्ण वाले व्यक्ति में सहज ही आ जाती है। पेट की भाँति पूर्ण शरीर की अर्जित सम्पत्ति शरीर से ओझल हो जाती है। उदर में वह सम्पत्ति शरीर के अंग-प्रत्यंग में वितरित होती है। कभी पेट उसे लोभ तथा मोहवश धर्मानुसार वितरण करने से इन्कार कर देता है। वह सब कुछ अपने पास ही रखना चाहता है। तब पेट को अजीर्ण हो जाता है और विशुचिका के भयंकर रोग से ग्रसित हो जाता है। ऐसे वैश्य से पूर्ण मानव समाज रुग्ध हो असामयिक मृत्यु की ओर चल पड़ता है।

कुछ ऐसी ही बात प्रवरसेन के राज्य में उत्पन्न होने लगी थी। प्रवरसेन के पिता मेघवाहन व अपने गुरु गोविन्दानन्द के मंत्रित्व काल में तो शम, दम, दान, भेद और दंड नीति में संतुलन रख सका था। जो जिसके योग्य था वैसा ही उसके साथ व्यवहार होता रहा था, परंतु गोविंदानन्द की मृत्यु के उपरांत विषमता प्रकट होने लगी।

मेघवाहन के कई संतानें थीं। उनमें एक जन्म से ब्राह्मण, परंतु व्यवसाय से वैश्य और व्यवहार से वर्णाश्रम विहीन व्यक्ति की लड़की से संतान प्रवरसेन था। माँ इन्द्रादेवी के वंशानुगत ब्राह्मण स्वभाव का स्वामी प्रवरसेन राज्योचित्त नीति के पाँचों स्वरूपों का संचालन नहीं कर सका।

प्रवरसेन की माता ने उसे राज्य-कार्य के लिए शिक्षा-दीक्षा भी नहीं दी थी। वह उसे ब्राह्मण बनाने में अपनी पूर्ण योग्यता प्रयोग करती रही। परंतु बालक प्रवरसेन में पिता के राजसी एवं क्षत्रिय स्वभाव के लक्षण प्रकट होने लगे थे और विधना के विधान से वह पिता मेघवाहन के देहांत के समय राजगद्दी पा गया।

एक वैष्णव राजा के राज्य में ब्राह्मण स्वभाव के राजपुत्र को उचित राजा माना गया। इस पर भी गोविन्दानन्द द्वारा निर्मित राज्यविधान से कार्य चलता रहा। प्रवरसेन का राज्य तीस वर्ष तक निष्कंटक चला।

इस काल में कश्मीर की सीमाओं पर पड़ोसी राजाओं ने उत्क्रमण किया, परंतु ब्राह्मण प्रवृत्ति ने इन उत्क्रमण करने वालों के साथ शम की नीति से ही व्यवहार किया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ तो अपने पिता की पुण्य स्मृति, कुछ आचार्य गोविन्दानन्द का बुद्धियुक्त विधि-विधान भँवर में फँसे कश्मीर राज्य की नौका को खेता रहा। सौभाग्य से भारत देश में गुप्त परिवार का साम्राज्य होने के कारण भारत के राज्य परस्पर न्यूनातिन्यून ही अपने-अपने राज्य और अधिकार का सीमोल्लंघन करते रहे और प्रवरसेन का शम नीतियुक्त राज्य तीस वर्ष तक ज्यों-त्यों चलता रहा। इस पर भी इन तीस वर्षों में राज्य नीति के शेष चार स्वरूपों से वंचित हो जाने के कारण निस्तेज हो चुका था।

परिणामस्वरूप प्रवरसेन की मृत्यु के उपरांत इसके दोनों पुत्र हिरण्य और तोरमाण राज्यकार्य को हलुवे के समान सहज ग्रहण करने योग्य समझकर दोनों ही आपस में राज्यकार्य बाँटकर चलाने लगे। हिरण्य शासन कार्य में रुचि लेने लगा और तोरमाण राज्य को समृद्ध करने में लीन हो गया।

महाराज मेघवाहन और उसके पुत्र प्रवरसेन के सुख-शांति के राज्य में कश्मीर का व्यापार भारत के प्राय: सब देशों से होने लगा था। तोरमाण देश की आभ्यांतरिक और विदेशी व्यापार की रूपरेखा देखने लगा। राज्य में और राज्य के बाहर से व्यापार को साम्यावस्था में रखने के लिए उसे अपनी मुद्रा को दूसरे राज्यों की मुद्राओं से निश्चित तुलना का बनाने के लिए मुद्रा नीति में परिवर्तन करना पड़ा। उसने व्यापार में एक स्थिर तोल एवं स्वर्ण की निश्चित श्रेष्ठता वाली मुद्रा का प्रचलन किया। मुद्रा का नाम दीनार रखा। यह पूर्वप्रचलित मुद्रा से कुछ बड़ी और अधिक शुद्ध स्वर्ण धातु से बनाई जाने लगी। इस मुद्रा पर उसने भूल से अथवा जानबूझकर अपना नाम अंकित करवाया।

बस दोनों भाइयों में वैमनस्य का बीजारोपण हो गया। तोरमाण छोटा भाई था और वह युवराज के नाम से विख्यात था। हिरण्य बड़ा भाई था और वह शासक का कार्य करता हुआ राजा माना जाता था। जब प्रचलित बालाहत मुद्रा के स्थान पर दीनार प्रचलित किया गया तो बड़े भाई की पत्नी शूलधारा ने वह मुद्रा अपने पति को दिखाकर कहा, ''आप तो कहते थे कि राजा आप हैं, परंतु मुद्रा तो आपके भाई के नाम से चलती है।''

''कहाँ चलती है?''

''यह देखिए। आज सेविका राजमार्ग पर कुछ क्रय करने गई थी तो बालाहत की दो मुद्राओं के बदले में एक यह ले आई है।''

हिरण्य ने मुद्रा देखी और अपने भाई का नाम उस पर मुद्रा चलाने वाले के रूप में पढ़कर बोला, ''यह ठीक ही हुआ है। वह अर्थव्यवस्था देखता है और उसका नाम चलना ही चाहिए।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"और मैं कब कहती हूँ कि ठीक नहीं हुआ। जो जिसके योग्य होता है वैसा ही व्यवहार उसके साथ होता है। आप नाम मात्र के राजा हैं और वह वास्तविक राजा। मैं नाम मात्र की रानी और आपकी भाभी अंजना वास्तविक रानी। यही कह रहे हैं न आप?"

"तो इसमें हुआ क्या?" हिरण्य ने पूछा।

"कुछ नहीं। मुझे आपकी वास्तविक स्थिति का ज्ञान हो गया है। मैं समझती हूँ कि आप जो शासन पर प्रातःकाल से मध्य रात्रि तक परिश्रम कर रहे हैं, वह भाई की दासता के कारण है और मैं भी अब अपने को एक दास की पत्नी ही मानती हूँ।"

इन तीक्ष्ण बाणों से हिरण्य को चोट लगी। उसकी पत्नी शूलधरा उसकी भाभी अंजना से अधिक सुंदर और सुशिक्षित थी। इस पर भी वह समझता था कि नाम से तथा काम से राजा तो वह है ही। सब उसे ही कश्मीर का शासक मानते हैं। तो फिर इस मुद्रा पर नाम से उसकी कुछ प्रतिष्ठा में हानि हुई है क्या? उसने अपनी पत्नी से कहा, "मुझे इसमें कुछ अनुचित प्रतीत नहीं हुआ। वह मेरा भाई है। इस कारण उसका नाम मुद्रा पर होना अनुचित कैसे हो गया?"

"देखिए," शूलधारा ने कहा, "मैं आपकी वास्तविक स्थिति को जान गई हूँ और मैं आज से अपना महारानियों का ठाठ-बाठ छोड़ एक सामान्य स्त्री का-सा वेश बना रही हूँ। मुझे यह अपने साथ छलना प्रतीत हो रही है।

"मेरा मन कहता है कि भाई-भाई का स्नेह समाप्त हो गया है और अब राजा राजा होगा और सेवक सेवक। शीघ्र ही आपके भाई साहब शासक होंगे और यदि आपने कुछ ऐसा संकेत दिया जिस पर आपके भाई ने संदेह किया तो आप बंदीगृह में होंगे।"

"परंतु इसमें मैं क्या कर सकता हूँ?"

"शासन आपके अधीन है। आप भाई को इस धृष्टता के लिए बंदीगृह में डालकर ही सुख-चैन का जीवन व्यतीत कर सकेंगे।"

"उन्होंने क्या धृष्टता की है?"

"देश के शासक की अनुमति के बिना नवीन मुद्रा चला दी है।"

"तो यह बहुत बड़ा अपराध है?"

"अपराध तो मृत्युदंड के योग्य है, परंतु मैं समझती हूँ कि वह आपके भाई होने के नाते बंदीगृह में तो डाले ही जा सकते हैं।"

हिरण्य गंभीर भाव से विचार करने लगा। अपने पति को गंभीर हो विचार में निमग्न देख शूलधारा ने कहा, "यह राज्यकार्य है और इसे करने के लिए राजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अतिरिक्त कोई नहीं हो सकता। एक ही खोल में दो तलवारें नहीं समा सकतीं। मेरा विचार है कि या तो आप पूर्ण रूप से राजा बन जाइए अथवा इसे छोड़ किसी वन में रहने चले चलिए। यहाँ रहते हुए दो में से एक बात होगी। या तो आप अपने भाई साहब को बंदीगृह में बंद कर दें, अन्यथा वह आपको बंदीगृह में डाल देंगे। कदाचित् वह तो आपको इस लोक से ही छुट्टी दे देंगे।''

इस भविष्यवाणी से हिरण्य बहुत परेशानी अनुभव करने लगा। अगले दिन उसने अपने एक सहायक मंत्री से पूछा, ''सुदर्शनजी, आपने अपने राज्य की नवीन मुद्रा देखी है?''

Central Library 167962 Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

''जी, देखी है।''

''उस पर भैया का नाम है?''

''जी।''

''यह ठीक है क्या? मुद्रा पर शासक का नाम होना चाहिए अथवा अर्थ मंत्री का?''

''होना तो शासक का चाहिए, परंतु वह आपके छोटे भाई हैं। इस नाते जो भी वह करें ठीक ही कहा जा सकता है।''

''इससे क्या मेरे शासन में दुर्बलता नहीं आ जाएगी?''

''आएगी तो सही। शासक वह ही हो सकता है जिसके नाम की मुद्रा चलती है और कभी भी वह अपने धन के बल पर किसी भी शासक को बंदीगृह में डाल सकता है।''

''तो मुझे क्या करना चाहिए? क्या मुझे शासन-कार्य छोड़ देना चाहिए?''

''प्रजा आपके शासन से सर्वथा संतुष्ट है। इससे भी मुद्रा के चलने से अपने देश के व्यापारी वर्ग में विक्षोभ हो रहा है। इस कारण वह तोरमाण के इस कार्य को पसंद नहीं करते। वस्तु के दाम में गिनती में मुद्रा की संख्या स्थिर रहेगी और देने वाले को स्वर्ण अधिक देना पड़ेगा। इससे प्रजा में असंतोष फैल रहा है।''

''तो मुझे भैया से कहना चाहिए कि यह मुद्रा वापस ले ले?''

''यह तब तक नहीं हो सकेगा जब तक वह राज्य में है।''

हिरण्य ने नगर के एक मुख्य व्यापारी को भी बुलवा लिया। यह व्यापारी देश से केसर, कस्तूरी, कम्बल, दुशाले इत्यादि विदेशों को भेजता था और वहाँ से अन्न-अनाज तथा वस्त्र इत्यादि मँगवाता था। उससे हिरण्य ने पूछा, ''इस नई मुद्रा का व्यापार पर क्या प्रभाव होगा?''

''महाराज, प्रभाव तो होने लगा है। कृषक नई और पुरानी मुद्रा में अंतर नहीं मानता। इस कारण वह अपनी वस्तु का दाम उतनी ही मुद्राएँ माँगता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितनी वह पहली मुद्राओं में लेता था। परंतु विदेश का व्यापारी तो मूल्य अधिक देता नहीं। इस कारण हमारा व्यापार ठप्प होने लगा है।''

इस स्थिति के ज्ञान से हिरण्य को वास्तविक चिंता लगने लगी। उसने सेनाध्यक्ष वीरसेन को बुलाकर उसके सम्मुख समस्या रखी तो सेनाध्यक्ष ने कहा, ''सब सैनिक अपना वेतन स्वर्ण में पाते हैं ओर मुद्रा के बड़े हो जाने पर भी वह उतनी ही मुद्रा माँगते हैं जितनी कि पहले लेते थे।

''उदाहरण के रूप में एक सैनिक जो एक स्वर्ण प्रतिमास वेतन के रूप में पाता था, वह आज भी एक ही स्वर्ण पाता है। परंतु युवराज की आज्ञा है कि स्वर्ण में पंद्रह रजत के स्थान दीनार में अट्ठारह रजत मूल्य का स्वर्ण है। इस कारण अब सैनिकों को वेतन रजत के हिसाब से दिया जाए। इससे सब सैनिकों में असंतोष फैल रहा है।''

हिरण्य को अपनी पत्नी शूलधरा की बात स्मरण आ गई। उसने उसी समय यह आज्ञा दे दी, ''हम समझते हैं कि युवराज तोरमाण को बंदीगृह में डाल दिया जाए और इन स्वर्ण-मुद्राओं को वापस कर इनके स्थान पर पुरानी स्वर्ण-मुद्रा बालाहत ही चलाई जाए। जो भी नई बालाहत मुद्रा ढाली जाए उस पर मेरा नाम शासक के रूप में होना चाहिए।''

''महाराज, यह आज्ञा लिखकर दीजिए। बिना लिखित आज्ञा के यह दुस्तर कार्य नहीं किया जा सकेगा।''

अत: आज्ञा लिखकर दे दी गई। सेनाध्यक्ष वीरसेन ने तुरंत ही पचास विश्वस्त सैनिक साथ लेकर तोरमाण के प्रासाद को घेर लिया और उसे हिरण्य की आज्ञा दिखाकर बंदी बना लिया।

तोरमाण ने हिरण्य की आज्ञा पढ़ी और नीचे हिरण्य के हस्ताक्षर तथा उसका पद 'शासक' लिखा पढ़ा तो नतमस्तक हो आज्ञा मानने को तैयार हो गया। जब वह बंदीगृह को जाने लगा तो उसकी नवविवाहिता पत्नी अंजना ने स्वेच्छा से पति के साथ बंदीगृह में जाकर रहना स्वीकार कर लिया।

इन्द्रा देवी ने अपने पुत्र प्रवरसेन को ब्राह्मणोचित शिक्षा-दीक्षा दी थी, परंतु भाग्याधीन वह राजा बन गया । प्रवरसेन साधुस्वभाव व्यक्ति नीति के केवल शम स्वरूप को समझता था ओर राज्य करता रहा। उसके काल की शांति की प्रवृत्ति ही कारण थी कि तोरमाण चुपचाप बंदीगृह में जाकर रहने लगा।

राज्यकार्य चलता रहा। हिरण्य का विचार था कि उसके भाई के मन में स्वयं राजा बनने की लालसा है और वह बंदी बनाने के समय विरोध करेगा, परंतु तोरमाण को जब बड़े भाई की आज्ञा मिली तो चुपचाप उठा और सेनाध्यक्ष के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ चलने के लिए तैयार हो गया। जब उसकी पत्नी ने भी उसके साथ चलने की इच्छा प्रकट की तो सेनाध्यक्ष ने स्वीकृति दे दी।

तोरमाण का विचार था कि उसका भाई उसे इस आज्ञा का कारण बताने आएगा, परंतु वह नहीं आया और जब बंदीगृह में रहते हुए कई मास व्यतीत हो गए तो उसे शोक होने लगा।

इसी समय अंजना के गर्भ ठहर गया और उसे पति के साथ होने वाले बालक की भी चिंता होने लगी। बहुत विचारोपरांत यह निश्चय हुआ कि उसकी पत्नी प्रसव के लिए बंदीगृह से बाहर चली जाए। वह स्वेच्छा से बंदीगृह में आई थी ओर अब उसने बंदीगृह से बाहर जाने की इच्छा प्रकट की तो उसके पति ने इसमें कारण पूछा, ''यह क्यों?''

''मैं समझती हूँ कि बंदीगृह में बालक को जन्म नहीं देना चाहिए और न ही यहाँ उसकी शिक्षा-दीक्षा भलीभाँति हो सकेगी।''

तोरमाण माना तो अंजना बंदीगृह से बाहर चली गई। परंतु बाहर पूरे देश में ऐसा वातावरण बन गया था। कि प्रजा की सहानुभूति तोरमाण से नहीं रही थी। इस कारण अंजना को राजधानी में रहने के लिए कहीं स्थान नहीं मिला।

वह नगर से दूर एक कुम्हार के घर में स्थान पा सकी। वहाँ रहते हुए अंजना ने एक पुत्र को जन्म दिया। अंजना ने पुत्र का नाम उसके बाबा के नाम पर प्रवरसेन रख दिया।

:: 2 ::

अंजना अपने पुत्र का बंदीगृह में पालन-पोषण उचित नहीं समझती थी।

उसने बंदीगृह से कुम्हार की झोंपड़ी को पुत्र के कल्याण के लिए श्रेष्ठ स्थान समझा। इस पर भी वह यह समझने लगी थी कि जब बड़े भाई ने छोटे भाई को बंदी बना रखा है तो वह उसके पुत्र को भी स्वतंत्रतापूर्वक रहने की स्वीकृति नहीं देगा। यही कारण था कि वह गुमनाम रह एक छोटी जाति के व्यक्ति झोंपड़े में बालक को जन्म देने तथा वहाँ ही अपने बालक के पालन-पोषण में लीन हो गई।

तोरमाण को पत्नी के चले जाने और फिर उसका कोई समाचार न मिलने से शोक बढ़ने लगा और वह रुग्ण रहने लगा। परिणाम यह हुआ कि वह अंजना के बंदीगृह से जाने के एक वर्ष के भीतर ही स्वर्ग सिधार गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरी ओर हिरण्य का विचार था कि उसका भाई बंदी बनाये जाने की आज्ञा पर क्रुद्ध हो लड़ने-मरने पर तैयार हो जाएगा। परंतु ऐसा कुछ नहीं हुआ। इस पर उसे अपनी करनी पर पश्चाताप होने लगा।

वह अपने व्यवहार को पलटने की इच्छा करता था, परंतु उसकी पत्नी शूलधारा उसे इस कार्य से मना करती रहती थी। उसका कहना था, "सर्प भयंकर जीव है, परंतु घायल सर्प तो उससे भी अधिक भयंकर हो जाता है। उसे तो जीवित नहीं रहने देना चाहिए।"

उसके नीतिमान मंत्री भी यही सम्मति देते थे। सबका यही कहना था कि घायल बाघ अधिक भय का कारण हो जाता है।

हिरण्य, जो प्रजागण के साथ अति सौम्य व्यवहार रखता था, वह अपने भाई की किंचित् मात्र धृष्टता को भी क्षमा नहीं कर सका। साधुस्वभाव राजाओं का यही व्यवहार होता है। ये परायों के साथ मृदुलता का व्यवहार रखते हैं, परंतु अपने निरापद संबंधियों के साथ कठोरतम व्यवहार रखते देखे जाते हैं। इस प्रकार वे निर्दोष और भले लोगों को कष्ट देकर दूसरों पर यह प्रभाव उत्पन्न करना चाहते हैं कि वे अपने शत्रुओं से बहुत ही कड़ा व्यवहार कर सकते हैं।

यह सब वह दिखावे के लिए करता था। अपनी पत्नी को प्रसन्न करने के लिए, अपने मंत्रियों को निर्भय करने के लिए। वे समझते थे कि तोरमाण यदि बंदीगृह से बाहर आ गया तो उनको क्षमा नहीं करेगा अत: वे हिरण्य को उसके विरुद्ध भड़काते रहते थे।

परन्तु भीतर ही भीतर वह पश्चाताप में जलता रहता था। उसका मन समझता था कि उसने कुछ अनुचित और अति हीन व्यवहार अपने नेक भाई से किया है।

यह शासक पद की महिमा है कि प्रजागण किंचितमात्र सुख-सुविधा के लिए न्याय-अन्याय और सत्य-असत्य में भेद भूल जाते हैं। शासन विचारशील लोगों को बड़े-बड़े प्रलोभनों में डाल अपने अन्यायपूर्ण व्यवहार को भी न्यायसंगत प्रकट कर सकता है।

इस दुःखद घटना में मंत्रीगण सबसे अधिक दोषी थे। परंतु वे समझते थे कि अनधिकारी के अधिकार का समर्थन करने से वह अनधिकारी उनके अँगूठे के नीचे दबा रहेगा। समय पाकर वे ही सबसे पहले अपने समर्थन का मूल्य लेने लगे। उन्होंने अपना-अपना प्रभाव और पृथक् कोष संचय करना आरंभ कर दिया।

यह व्यवहार हिरण्य से छुपा नहीं रह सका। परंतु वह भी अपने मन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अपने को दोषी मानता था। इस कारण वह मंत्रिगण के दोषपूर्ण व्यवहार को सहन करने पर विवश अनुभव करने लगा। इससे वह और भी अधिक दुःखी रहने लगा।

अपने कृत्य पर पश्चाताप में जलता हुआ हिरण्य भी रुग्ण रहने लगा और बंदीगृह में अपने भाई की मृत्यु के कुछ ही उपरांत स्वर्गवासी हो गया। वह अपने पीछे कोई संतान नहीं छोड़ गया।

पति के मरने के उपरांत शूलधरा ने पति के स्थान पर शासन अपने हाथ में लेने का यत्न किया, परंतु मंत्रिगण ने उसे सदा नियंत्रण में रखा और वह मूर्ख स्त्री पद की शोभा और पद के कर्त्तव्य में भेद नहीं समझ सकी। शासन की चमक-दमक में वह यह समझने लगी कि वही वास्तविक शासक है। मंत्रिगण राज्य में और भी अधिक लूट खसोट करने लगे।

शूलधरा ने केवल एक बार मंत्रियों का विरोध किया और उस विरोध के कुछ दिन उपरांत ही उसका एकएक देहांत हो गया।

इस पर शासन बिना किसी शासक के मंत्रिगणों के अधीन चलने लगा। मंत्रिगण ने अब अपना शासन स्थायी और प्रजागणों से मान्य कराने के लिए कुछ ऐसी सुविधाएँ प्रजा को प्रदान कीं जो महाराज हिरण्य तथा उसकी पत्नी शूलधरा के काल में नहीं थीं। परिणामस्वरूप प्रजागण मेघवाहन जैसे धर्मात्मा राजा के दिनों से सुखी जीवन व्यक्ति करते हुए मंत्रियों के राज्य को सहन करने लगे।

समय व्यतीत होता गया। तोरमाण की मृत्यु को दस वर्ष हो चुके थे और उसका लड़का प्रवरसेन एक कुम्हार की झोंपड़ी और राजधानी से दूर पलता हुआ कौमार्यावस्था पार कर अपने पैतृक गुणों का प्रदर्शन करने लगा था।

वह अभी ग्यारह-बारह वर्ष का ही था कि वंशानुगत राजसी प्रवृत्ति प्राप्त कर चुका था। साथ ही अपनी माँ से शिक्षित और दीक्षित हो एक योग्य बालक के लक्षणों को प्रकट करने लगा था। दूर लोधर घाटी में वह अपने नेता बनने के लक्षणों को प्रकट करने लगा तो अपनी वयस के गाँव के कुम्हारों तदनन्तर पूर्ण घाटी के कुम्हारों के संगठन बनाने में वह सफल होने लगा था।

इससे कुछ ही पूर्व मंत्रिगण के पेट में पाप का धन विकार उत्पन्न करने लगा था। परिणामस्वरूप उनमें परस्पर विरोध उत्पन्न होने लगा। महामंत्री चित्रगुप्त ही शासन का उत्तरदायी समझा जाता और वह अपने साथी मंत्रिगण को नियंत्रण में रखने का यत्न करना रहता था। दूर लोधर घाटी में निर्माण हो रहे संगठन को देखकर तथा पूर्ण राज्य की जनता को उत्तरोत्तर निर्धन होते देख वह चिंता व्यक्त करने लगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्र गुप्त ने मंत्रिगण के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा कि उन्हें अपने में से किसी को राजा का पद ग्रहण कर लेना चाहिए जो मंत्रियों में मतभेद के समय अपना संतुलित मत स्थिर कर सके तथा वह मंत्रिगण को बदल सके।

सिद्धांत से तो सब इसकी आवश्यकता समझते थे, परंतु कोई भी दूसरे को राजसी तेज से युक्त नहीं पाता था। इस कारण सब अपने-अपने को राजा बनने के योग्य मान मंत्रिगण में गुट बनाने लगे।

मंत्रिगण परस्पर स्पर्धा से प्रभावित समझौता कर उज्जयिनी के महाराज विक्रमादित्य से सहायता माँग बैठे। उनका विचार था कि भारतसम्राट विक्रमादित्य द्वारा जो व्यक्ति राजा बनाया जाएगा वह भारतसम्राट के तेज को कश्मीर में प्रतिबिम्बित कर सकेगा और देश में शांति और समृद्धि ला सकेगा। मंत्रिमंडल ने महाराज विक्रमादित्य से एक राजदूत द्वारा प्रार्थना की कि वह कश्मीर को कोई शासक दें जिससे कश्मीर पुनः अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त कर सके।

महाराज विक्रमादित्य को इस याचिका को मानने में कवि मातृगुप्त के लिए कोई उपकारी कार्य निश्चय करने में सहायता मिल गई। इस पर भी वह जानते थे कि यदि मातृगुप्त से यह कहा गया कि वह कश्मीर में राजगद्दी का उत्तरदायित्व सँभालने के लिए भेजा जा रहा है तो वह कभी स्वीकार नहीं करेगा और कदाचित् कश्मीर जाने के स्थान पर दक्षिण की ओर भाग जाएगा। इस कारण महाराज ने मातृगुप्त को यह कहा कि यदि वह सुन्दर और प्राकृतिक शुभ गुणों से युक्त कश्मीर जैसे देश में एक वर्ष तक भ्रमण कर आएगा तो निस्संदेह उसकी कविता उज्ज्वल हो उठेंगी। इस लोभ में वह जाने के लिए तैयार हो गया और जाते समय महाराज विक्रमादित्य ने उसे एक मुहरबंद पत्र वहाँ के महामंत्री के नाम दे दिया। महाराज ने कहा, ''मित्र, इस पत्र में तुम्हारे सद्गुणों का वर्णन है और तुम जैसे गुणी व्यक्ति को उचित आदर-सत्कार और सुख-सुविधा देने के विषय में लिखा है।''

मातृगुप्त बहुत प्रसन्न राजसी रथ पर सवार हो उत्तर की ओर चल पड़ा।

:: 3 ::

उज्जयिनी से सौराष्ट्र और वहाँ से सिंधु घाटी में से होते हुए पंचनद देश को पारकर मातृगुप्त उत्तर की ओर बढ़ने लगा। वह किसी नियत उद्देश्य से तो जा नहीं रहा था। इस कारण छोटी-छोटी मंजिलें तय करता हुआ ओर भरपूर विश्राम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता हुआ वह चला जा रहा था। इस कारण दो मास का मार्ग उसने चार मास में समाप्त किया। ज्योंही उसने कश्मीर घाटी में प्रवेश किया वह उसका भव्य सौन्दर्य देख स्तब्ध रह गया।

ज्योंही उसने कश्मीर राज्य में पदार्पण किया वह अपने विषय में शुभ शकुनों को देख-देख चकित हो रहा था कि उसके साथ इस देश में क्या होने वाला है। वह तो एक प्रतिष्ठित पथिक के रूप में ही वहाँ आया था और वह पथिक के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का संकल्प-विकल्प मन में नहीं रखता था। इस कारण वह इस देश के सुंदर दृश्यों को ही अपने भाग्योदय की सीमा मान इनको देखने में पूर्ण रस लेने लगा।

एक दिन उसने स्वप्न में सर्प के फन पर खंजरीट पक्षी को बैठे देखा तथा किसी सागर को जहाज से पार करते देख इन्हें शुभ शकुन मान प्रसन्नतापूर्वक यात्रा पर बढ़ता गया।

महामंत्री ने मार्ग में अपने गुप्तचर भेजे हुए थे। राजदूत जो उज्जयिनी से आया था, वहाँ से महाराज का संदेश लाया कि जिस व्यक्ति को वह शासक के रूप में श्रीनगर भेज रहे हैं, वह नहीं जानता कि किस प्रयोजन से उसे वहाँ भेजा जा रहा है। इस कारण राजधानी में पहुँचने से पहले उसको यह पता नहीं चलना चाहिए कि वह किस प्रयोजन से वहाँ जा रहा है। साथ ही उसके हाथ हम एक पत्र देंगे। उस पत्र को पढ़कर उसकी ऐसे रक्षा की जाए जैसे देश के राजा की होती है। उसे राजगद्दी पर बिठा अभिषेक करते समय ही उसे यह पता चलना चाहिए कि वह कश्मीर जैसे देश का राजा बन रहा है।

इस प्रकार की योजना के अनुसार महामंत्री के गुप्तचर कश्मीर सीमा से ही मातृगुप्त के साथ अनजाने में उसकी रक्षा और सुख-सुविधा का प्रबंध करने लगे थे। वह उसे राजसी रथ पर देख सम्राट का भेजा व्यक्ति समझ गए थे।

मातृगुप्त को ऐसा अनुभव हुआ कि इस देश के लोग अतिथि सेवा में दक्ष हैं जो बिना जाने कि वह महाराज विक्रमादित्य का भेजा व्यक्ति है, उसकी सेवा-सुश्रूषा करने लगे हैं। इसने उसके मन में देशवासियों के विषय में बहुत ही शुभ विचार उत्पन्न कर दिए।

कश्मीर देशवासियों की अतिथि-सेवा से अति प्रसन्न वह धीरे-धीरे कश्मीर की क्रमावर्त नाम की मुख्य घाटी में पहुँच गया। वहाँ से हिमाच्छादित पर्वतों के शिखर दिखाई देने लगे थे। वह उनको देख मंत्रमुग्ध की भाँति खड़ा रह गया। उसे ऐसे दिखाई दिया कि श्वेत दही के बड़े-बड़े तोदे खड़े हैं। दही के तोदों को गगन में विचरते बादल चाटते हुए रसास्वादन करते हुए घोर गर्जना कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपनी प्रसन्नता का नाद कर रहे हैं। वह इस घाटी के द्वार काम्बुज नगर में जा पहुँचा। वह वहाँ अभी अपने ठहरने के लिए खेमा लगवा ही रहा था कि उसे उसके सेवक ने यह सूचना दी कि राज्य का पूर्ण मंत्रिमंडल इस नगर में आया हुआ है। इस कारण मातृगुप्त खेमा लगवा वस्त्र बदल महाराज विक्रमादित्य का पत्र मंत्रिमंडल के नाम लेकर मिलने चल पड़ा। उनके शिविर में पहुँच जब उसने शिविर के द्वार पर अपने को उज्जयिनी के भारतसम्राट महाराज विक्रमादित्य का मित्र कहकर मंत्रिमंडल के पास सूचना भेजी तो पूर्ण मंत्रिमंडल द्वार पर उसके स्वागत के लिए आ पहुँचा और मातृगुप्त को बहुत आदर-सत्कार के साथ भीतर ले गया। उसे वहाँ बिठाया, उसको खिलाया-पिलाया और जब सामान्य सत्कार हो चुका तो महामंत्री चित्रगुप्त ने पूछा, "भगवन्, कहाँ ठहरे हैं?"

"वितस्ता नदी के तट पर खेमा लगवा आया हूँ।"

"तो उसे हम यहीं मँगवा लेते हैं आज से आप हमारे अतिथि हैं।"

"परंतु मैं कौन हूँ, यह तो आप जानते नहीं।"

"आपके विषय में महाराज विक्रमादित्य का एक पत्र हमें मिल चुका है। आप कवि मातृगुप्त, महाराज के परम मित्र तथा महान धर्मात्मा व्यक्ति हैं।

"मंत्रिमंडल यहाँ किसी राजकीय कार्य से आया हुआ था। जब आपने अपने नाम की सूचना शिविर के द्वार पर दी तो हम समझ गए कि महाराज के मित्र आए हैं। इस कारण हम आपके स्वागत के लिए शिविर द्वार पर पहुँचे थे। अब आप हमारे मेहमान हैं और इसी शिविर में रहेंगे।

"हमने आपका खेमा, रथ और सेवक को यहाँ लाने के लिए प्रतिहार भेज दिए हैं।"

"तो महामंत्री महोदय को भारतसम्राट के पत्र प्राप्त होने का कौन-सा अवसर था? मेरे उज्जयिनी से चलते समय तो मुझे यह नहीं बताया गया कि मेरे विषय में यहाँ किसी प्रकार की पूर्व सूचना दी जा चुकी है।"

"भगवन्, हमारा एक राजदूत वहाँ गया हुआ था। वह जब अपना कार्य कर चुका तो महाराज ने उसे एक संक्षिप्त-सा पत्र दिया था कि उनका एक अति योग्य बुद्धिमान धर्मात्मा मित्र कश्मीर भ्रमण के लिए आ रहा है। उस पत्र के अनुसार ही हम आपकी कई मास से प्रतीक्षा कर रहे थे।"

"तो यह बात है! परंतु महाराज ने बाल्यकाल के मित्र होने के कारण मेरे विषय में उस समय के अनुभव का ही वर्णन किया है। वह कदाचित् यह नहीं जानते कि अब मैं इक्यावन वर्ष का व्यक्ति कुंठित बुद्धि केवल भगवत् भजन के योग्य ही हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह तो श्रीमान् बहुत बड़ी बात है। इसे हम मनुष्य की महान उपलब्धि मानते हैं। कुछ भी हो, आपकी अनुभवयुक्त रसमयी कवितारूपी वाणी को सुनने का सौभाग्य हमें मिलेगा।"

मातृगुप्त समझ गया कि यह महाराज की प्रशंसा का ही फल है कि पूर्ण मंत्रिमंडल उसके स्वागत के लिए शिविर द्वार पर चला आया था।

वह अपने खेमे में पहुँचा तो उसका स्वरूप ही बदला हुआ था। खेमे में कालीन, दरी, जाजम, प्रश्रय बिछे हुए थे। पलँग पर मखमली बिस्तर और तकिया था। ऊपर ओढ़ने के लिए बहुत बढ़िया पशमीने की चादर थी। उसका अपना सेवक खेमे के बाहर खड़ा स्वामी की प्रतीक्षा कर रहा था।

जब मातृगुप्त वहाँ पहुँचा तो उसने सेवक से पूछा, "यहाँ खड़े क्या कर रहे हो? अश्व कहाँ बाँधे हैं और रथ कहाँ खड़ा है?"

"महाराज," आनन्द ने कहा, "यहाँ के राजसेवक वहाँ आए और यह कहकर कि आपने उनको भेजा है, हमारा खेमा उखाड़कर तथा वहाँ का सब लोटा, डोरी, अँगीठी, तवा, चकला, बेलन इत्यादि उठा उस रथ में लाद यहाँ ले आए हैं। यहाँ यह खेमा तो पहले ही लगा था। मुझे यहाँ खड़ा कर आपकी सुख-सुविधा का प्रबंध कर रहे हैं।"

मातृगुप्त खेमे के भीतर गया तो उसने वहाँ सब कुछ नवीन देखा। केवल उसकी वीणा और उसके अध्ययन के ग्रंथ एक कोने में ढंग से रखे होने से ही वह समझ सका कि यह उसका अपना स्थान है। वह विस्मय कर रहा था कि यह सब कुछ इतनी जल्दी कैसे हो गया? इसे वह यहाँ के राज्य कर्मचारियों की कार्य-कुशलता ही समझा।

इस पर भी सब कुछ सुखप्रद तथा संतोषजनक था। वह अभी बिछे जाजम पर प्रश्रय का आश्रय ले बैठा ही था कि एक राजसेवक भीतर आ हाथ जोड़ बोला, "श्रीमान्, भोजन आ रहा है। हस्त-प्रक्षालन कर लें।"

मातृगुप्त को भूख तो लगी ही थी। इस पर भी उसने पूछा, "हमारा सेवक तथा सारथी आनन्द कहाँ हैं?"

"वह भोजन करने के लिए ले जाया गया है।"

"परंतु हम तो उसकी सेवा चाहते थे। वह भलीभाँति जानता है कि हमारी क्या-क्या आवश्यकताएँ हैं।"

"कविवर, वह बहुत थका हुआ था। वह नदी तट पर लगे आपके खेमे के बाहर भोजन बना रहा था। हमने उसे भोजन बनाने से मना किया तो वह कहने लगा कि दिन भर की यात्रा से वह बहुत थका हुआ एवं भूखा है। इस कारण हमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उसे शीघ्रतिशीघ्र निवृत्त होने के लिए भेज दिया है जिससे वह विश्राम कर बहुत ही प्रात:काल यात्रा के लिए तैयार हो जाए। इस बीच में हम आपकी यथासंभव सेवा-सुश्रूषा करेंगे। आज्ञा करिए। हम यत्न करेंगे कि आपके सेवक आनन्द के समान ही आपकी सेवा कर सकें।''

वह समझ गया कि आनन्द यात्रा का अंत अनुभव करते हुए थकावट अनुभव करने लगा होगा और कदाचित् इन राजसी सेवकों के उसे किसी प्रकार का काम न करने देने से वह रुष्ट भी हो गया है।

मातृगुप्त को एक संतोष था कि राजसेवक उसके सेवक को भूले नहीं। इस कारण प्रबंध से संतोष अनुभव करते हुए वह उठा और खेमे के बाहर हस्त-प्रक्षालन कर भोजन के लिए भीतर आया तो स्वर्ण थाल में कटोरों में बत्तीस प्रकार के व्यंजन लगे देख वह भी भूख अनुभव करने लगा, अत: भोजन करने बैठ गया।

अभी दीपक नहीं जले थे कि वह भोजन से निवृत्त हो सुखपूर्वक बैठ अपनी वीणा पकड़ अभी तारों को स्वर कर ही रहा था कि आनंद आया और क्षमा भाव से बोला, ''पंडितजी, मुझे कहा गया था कि आपको भोजन करा दिया गया है। इस कारण मुझे भी कर लेना चाहिए।''

''यहाँ, मैंने भोजन कर लिया है। तुम बताओ, पेट भरा है अथवा नहीं?''

''महाराज, इतना खा गया हूँ कि अब सोने को चित्त करता है।''

''तो सो जाओ।''

''परंतु ये लोग कहते हैं कि मेरे लिए पृथक् स्थान है। अभी तक तो यात्रा में आपके चरणों में ही मैं सोता रहा हूँ।''

''परंतु अब हम इन लोगों के अतिथि हैं। इस कारण इनके प्रबंध में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।''

अत: आनन्द जब खेमे के बाहर गया तो वीणा बजने लगी। यह पूर्ण मार्ग भर प्रति सायंकाल आधा प्रहर से अधिक बजती रही थी। कवि अपने प्रिय गीत भी साथ ही गाता रहा था।

आज तो वह बहुत ही संतुष्ट था। इस कारण अनायास ही उसके मुख से भगवान के प्रति धन्यवादसूचक शब्द निकलने लगे—

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगत: पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥

जग में सबके सुख-सुविधा की चिंता भगवन् तुम करते हो।
वाणी मेरी में भी तो तुम रस-अर्थ-प्रभा सब भरते हो॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उमा सदा रहती है जैसे अंग-संग में वह तुम्हारे।
वीणा मेरी में वैसे ही रस-वीर्य सदा होवें उभरे॥

तस्य संवृतमन्त्रस्य गूढाकारेङ्गितस्य च।
फलानुमेयाः प्रारंभाः संस्काराः प्राक्तना इव॥

गूढ़ भाव तुम्हारे मन के तथा कार्य का अर्थ रहा जो।
नहीं जान सकता है कोई उसका है अभिप्राय जो भी हो॥
कर्मफल से कर्म का होता ज्ञान जगत् में ही है सबको।
प्रभु तुम्हारी कृपादृष्टि का सुख अनुभव होता है जब जो॥
जग में सबकी सुख-सुविधा की चिंता भगवन् तुम करते हो।
वीणा मेरी में भी तो तुम रस अर्थ प्रभा सब भरते हो॥

इस प्रकार जब कविता और संगीत की सरिता प्रवाहित होने लगी तो पूर्ण शिविर में निस्तब्धता छा गई। सबको ज्ञान हो गया कि शिविर में कोई नया प्राणी आया है जिसकी वाणी में रस, अर्थ और प्रभा तथा साथ ही ईश्वर आश्रय की बात है।

महामंत्री प्रसन्न था, साथ ही चिंतित भी था। वह विचार करने लगा था कि इस प्रकार के विरक्त जीव को राजसिंहासन से बाँध रखना संभव हो सकेगा क्या?

जब संगीत आरंभ हुआ, मंत्रिमंडल बैठा भावी कार्यक्रम पर विचार कर रहा था। परंतु सबके मस्तिष्क विचार करना छोड़ कवि की मधुर स्थिर रसमयी वाणी का रसास्वादन करने लगे।

कुछ समय तक वे मंत्रमुग्ध हो कविता सुनते रहे। तदनन्तर महामंत्री चित्रगुप्त ने कहा, "शेष कल श्रीनगर में चलकर विचार करेंगे।"

रात देर तक पूर्ण शिविर कवि की वाणी से झंकृत होता रहा। जिस मीठी नींद में शिविर के प्राणी उस रात साए और जैसे मीठे स्वप्न उन सबको उस रात आते रहे वैसे किसी ने पहले अनुभव नहीं किए थे।

अगले दिन शंखनाद से सब शिविर के प्राणी जागे और नित्य कर्मों से निवृत्त हो सूर्योदय तक चलने को तैयार हो गए। मध्याह्न तक शिविर के लोग रथों में सवार हो देश की राजधानी श्रीनगर में जा पहुँचे। शिविर के खेमे तथा अन्य सामान पीछे आया।

प्रातः चलने के समय आनन्द मातृगुप्त के सम्मुख उपस्थित हो पूछने लगा, "श्रीमान्, मैं कहाँ जाऊँ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अपने रथ का क्या हुआ?" मातृगुप्त का प्रश्न था।

"उस पर राजकर्मचारियों ने अधिकार कर लिया है और मुझे कहा है कि मेरे लिए अन्य सेवकों के साथ स्थान मिल जाएगा।"

कवि महाराज के लिए एक अन्य सुसज्जित रथ प्रस्तुत था। कवि ने एक क्षण विचार किया और कहा, "तुम इस रथ के सारथी के पास बैठ जाओ और हमारे साथ ही चलो।"

"और हमारा लोटा-डोरी इत्यादि?"

"वह सब मिल जाएगा।"

कवि की वीणा और पुस्तकें कवि के रथ में ही थीं। आनंद जब रथ के सारथी के साथ बैठा तो रथ के सारथी ने कवि के मुख की ओर देखा। कवि ने कह दिया, "बैठने दो। हमारी यात्रा का साथी है और यात्रा के अंत तक साथ ही रहेगा।"

विवश उसे रथ के सारथी ने अपने समीप बैठने को स्थान दे दिया।

:: 4 ::

जब से उज्जयिनी से राजदूत लौटा था और यह समाचार मिला कि महाराज विक्रमादित्य का एक परम मित्र कश्मीर का नरेश बनने आ रहा है तबसे प्रवरसेन का राजप्रासाद जो महाराज हिरण्य की मृत्यु के उपरांत से खाली पड़ा था, पुनः मरम्मत इत्यादि किया जाने लगा था। कवि के श्रीनगर पहुँचने में देर लगी। वह छोटे-छोटे पड़ाव में यात्रा करता हुआ आया था और उसे मार्ग में अनुमानित समय से दो मास अधिक लग गया था। परंतु जब से मातृगुप्त ने कश्मीर सीमा में प्रवेश किया था तब से राज्य के गुप्तचर उसकी दैनिक प्रगति की सूचना राजधानी में पहुँचा रहे थे। जिस दिन कवि क्रमावर्त घाटी में पहुँचा उसी दिन मंत्रिमंडल भावी शासक के दर्शन करने वहाँ आ पहुँचा। मातृगुप्त के पहुँचने से पूर्व ही यह नीति महाराज विक्रमादित्य की इच्छानुसार चल रही थी कि मातृगुप्त के राज्यारोहण की योजना गुप्त रखी जाए।

कवि अपने आदर-सत्कार पर चकित था। वह अपने जैसे सामान्य व्यक्ति का इतने ठाठ-बाट से सत्कार होता देख यही समझा था कि यह महाराज विक्रमादित्य का सत्कार उसके एक बाल्यकाल के मित्र के द्वारा किया जा रहा है। वह यह सब अटपटा अनुभव करता था। उसे इस प्रकार के ठाठ-बाट में रहने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अभ्यास नहीं था। परंतु महाराज के मित्र के प्रति सामान्य जनों के व्यवहार को अस्वीकार करना महाराज का अपमान विचार कर वह सब कुछ सहन करता चला आ रहा था।

मातृगुप्त के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा जब उसे एक अति सुंदर विशाल एवं सब प्रकार से सुसज्जित और सुख-सुविधाओं से युक्त भवन में ठहराया गया। दो दर्जन सेवक उसकी सेवा के लिए नियुक्त थे और उसकी आँख उठाने पर सेवक भागे आते और पूछने लगते, ''श्रीमान् की क्या इच्छा है ?''

मातृगुप्त अभी अपने विस्मय को पार नहीं कर सका था कि सेवक आनन्द आया और हाथ जोड़ निवेदन करने लगा, ''भगवन्, मेरे योग्य तो अब कोई कार्य नहीं रहा। मुझसे अधिक बढ़िया वस्त्रधारी सेवक आपकी सेवा में सदा उपस्थित रहते हैं।''

''आनन्द भैया, मैं यह सब देख रहा हूँ। परंतु यह आवभगत सदा नहीं रहेगी। और मैं तो राज्य के अनेकानेक स्थानों में भ्रमण के लिए आया हूँ। मैं इस प्रासाद में बैठा नहीं रहूँगा। हमें इन लोगों को इस अनधिकृत आदर-सत्कार से अपना चित्त प्रसन्न करने देना चाहिए। तुम सदा हमारे साथ ही रहोगे।''

आनन्द को इससे सान्त्वना मिली।

सायंकाल महामंत्री आया। उसने अपना परिचय दिया, ''भगवन्, मैं चित्रगुप्त यहाँ का महामंत्री हूँ। इस देश में राजा कोई नहीं, मंत्रिमंडल ही राज्य करता है। इस कारण पूर्ण मंत्रिमंडल राजा का स्थानापन्न है।

''हमने यह निश्चय किया है कि आपका कश्मीर नागरिकों की ओर से सार्वजनिक अभिनन्दन किया जाए। तो भगवन्, आप बताएँ कि आप इस अभिनन्दन के लिए कब तक सुविधा अनुभव करेंगे ?

''हम चाहते हैं कि आपकी लंबी यात्रा की थकान मिट जाने के उपरांत ही हम यह सौभाग्य प्राप्त करें।''

''मातृगुप्त ने कुछ विचारकर कहा, ''मैं तो देश-भ्रमण के लिए आया हूँ और चाहूँगा कि शीघ्रातिशीघ्र आपके इस आडम्बरयुक्त आदर-सत्कार से छुट्टी पा स्वच्छंद विचर सकूँ।''

''वह भी हो जाएगा, परंतु हमें भारतसम्राट के आदेश का पालन करना है। उनकी आज्ञा है कि आपका श्रेष्ठतम आदर-सत्कार किया जाए। वह हम करके ही चित्त में शांति अनुभव करेंगे।''

''तो उस अभिनन्दन समारोह में क्या होगा ?''

''हम देशभर के प्रतिष्ठित जनों की एक सभा बुलाएँगे। उसमें आपको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मानित स्थान पर बिठाकर आपके परम मित्र महाराज विक्रमादित्यजी महाराज का वह पत्र सुनाएँगे जो आप अपने साथ लाए हैं। उसमें आपके प्रति महाराज का आदर भाव और कीर्ति तथा आपके प्रति हमारे कर्तव्य की ओर भी संवे.त है।

"तदनन्तर आप भी यहाँ वैसा ही व्यवहार और अपना कार्यक्रम बनाएँगे जो उस पत्र में लिखा है। इस प्रकार आपकी यात्रा आपके लिए और हमारे लिए सुखकारक होगी।"

"हम महाराज विक्रम की इच्छाओं की अवहेलना नहीं कर सकते। अत: जैसा आपको आदेश है वैसा ही करिए। इस पर भी मेरा यह आग्रह है कि इस प्रकार की व्यावहारिक बातों को आप शीघ्रातिशीघ्र समाप्त कर दें, जिससे हम अपना जीवन अपने विचारानुसार चला सकें।"

"वह तो भगवन्, आप अब भी कर सकेंगे। केवल इतना निवेदन है कि जब तक आपका परिचय कश्मीर जनता को नहीं दिया जाता आप इस भवन में ही रहेंगे। इसके भीतर ही पूर्ण देश के सुंदरतम दृश्यों का संग्रह है। साथ ही इसमें आपके भ्रमण के लिए पर्याप्त स्थान है।

"मैं अब आपकी इच्छानुसार इस समारोह का शीघ्रातिशीघ्र प्रबंध कर रहा हूँ। आशा है कि पूर्ण प्रबंध एक सप्ताह में संपन्न हो सकेगा।"

मातृगुप्त इस अल्प काल को भी एक लंबा काल समझता था। इस पर भी वह मौन रहा और इन राजसी जीवों को अपने मन की करने की अनुमति दे अपनी वीणा तथा संगीत का रसास्वादन करने लगा।

यात्रा की थकावट तो एक ही दिन में दूर हो गई थी और मातृगुप्त अपने पूजा-पाठ तथा भजन-कीर्तन में लीन हो गया।

इस राजप्रासाद में शिवमंदिर भी था। उसमें राजप्रासाद के स्त्री-पुरुष पूजा-पाठ करते थे। मातृगुप्त ने उस मंदिर की भव्यता देखी तो प्रसन्न हो नित्य ब्राह्म मुहूर्त से पूर्व उसमें जा अपनी वीणा पर अभ्यास करने लगा। पहले ही दिन जब मातृगुप्त अपना कीर्तन कर मंदिर से बाहर निकला तो राजप्रासाद के सब सेवकगण तथा अधिकारी मंदिर के बाहर कीर्तन सुनने एकत्रित हो चुके थे।

मातृगुप्त ने देखा कि एक सौ के लगभग लोग श्रद्धा-भक्ति के भाव में हाथ जोड़े देवमूर्ति की ओर मुख किए खड़े थे। कुछ मंदिर की सीढ़ियों पर और कुछ मंदिर के बाहर प्रांगण में खड़े थे।

मातृगुप्त अपनी वीणा लिए हुए मंदिर से निकला और उस भीड़ को वहाँ भवन में भी एकत्रित देख अपने राज्य की ओर से नियुक्त निजी सेवक से पूछने लगा, "ये लोग यहाँ क्या कर रहे हैं ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''भगवन्, रस के लोभी भँवरे आपके कीर्तन से आकर्षित हो यहाँ आ गए हैं।''

''परंतु क्या इस मंदिर में भवन के बाहर से भी लोग आते हैं?''

''नहीं श्रीमान्, यहाँ कोई बाहर का व्यक्ति इस भवन के स्वामी की आज्ञा बिना नहीं आ सकता।''

''और वह कौन है?''

''अभी तक तो राज्य के महामंत्री हैं।''

अब नित्य प्रात:काल कीर्तन होने लगा और दिनभर राज्य के प्रमुख व्यक्ति उससे मिलने आने लगे। मातृगुप्त को यह सब सुखप्रद अनुभव हो रहा था और दो-तीन दिन में ही यह सब स्वभाव बन गया।

जिस दिन महामंत्री सार्वजनिक अभिनन्दन समारोह की स्वीकृति लेकर गया था, उसी दिन से भवन के बाहरी प्रांगण में सभा की तैयारी होने लगी थी। राज्य के लगभग प्रत्येक वर्ग के लोग दो सहस्र की संख्या में आमंत्रित थे। उनके बैठने का प्रबंध होने लगा था। साथ ही एक ऊँचा मंच तैयार किया जा रहा था।

नियत दिन राजपुरोहित आया और मातृगुप्त से बोला, ''श्रीमान्, आज आपका प्रजा द्वारा अभिनन्दन होगा। इस कारण यहाँ की प्रथानुसार आपको स्नान कर नवीन वस्त्र पहनने हैं और फिर दिन के दूसरे प्रहर आपको सभा में उपस्थित होना है। आप समारोह के समाप्त होने तक व्रती रहेंगे। मैं यहाँ आपके आगार के बाहर पूजा करने के लिए आया हूँ।''

मातृगुप्त अपने को इस सब कार्यक्रम में ऐसे बह रहा अनुभव कर रहा था जैसे वह किसी अति वेगवान नदी में गिर पड़ा हो और उसके बहाव के साथ विवश बहता चला जा रहा हो।

उसने अपने आपको काल के बहाव में छोड़ दिया था। वह समझ रहा था कि बहाव के वेग का विरोध संभव नहीं। विवशता तो वह अनुभव करता था, परंतु यह विवशता अत्यंत सुखप्रद और मधुर थी। वह अपने को कालाधीन छोड़ बैठा था।

नियत समय पर पूर्ण मंत्रिमंडल मातृगुप्त के आगार में आया। मातृगुप्त को जरीदार अँगरखा अधोवस्त्र पहना दिए गए थे। इस पर भी सिर पर सामान्य पगड़ी थी। उसने चित्रगुप्त महामंत्री से कहा भी, ''ऐसे वस्त्र पहनने का मुझे अभ्यास नहीं और मुझे यह बोझा प्रतीत हो रहे हैं।''

महामंत्री ने कहा, ''स्वभाव बन जाने पर यह सुखकर अनुभव होने लगेंगे।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातृगुप्त इस प्रकार के स्वागत का अभ्यस्त नहीं था, परंतु भारतसम्राट के मान का विचारकर वह यह सब आडम्बर सहन कर रहा था। जब वह सभा में पहुँचा तो सब उपस्थित गण आदरयुक्त मुद्रा में उठकर खड़े हो गए। मातृगुप्त महामंत्री के साथ-साथ पूर्ण मंत्रिमंडल के आगे-आगे था। ज्योंही मातृगुप्त और मंत्रिगण मंच पर चढ़े, एक सौ एक नारियों के कंठ-स्वर में मंगल गीत होने लगे। ये स्त्रियाँ मंच के एक ओर नीचे खड़ी थीं।

जब तक यह मंगल गान होता रहा, सभासद कवि और मंत्रिगण खड़े रहे। तदनन्तर मातृगुप्त सिंहासन जैसे उच्चासन पर बिठाया गया। मातृगुप्त ने कहा भी, ''यह आसन तो कश्मीर नरेश का प्रतीत होता है।''

''हाँ, भगवन्, परंतु यह रिक्त पड़ा है। इसका सदुपयोग ही किया जा रहा है।''

जब मातृगुप्त सिंहासन पर बैठ गया तो महामंत्री ने सभा में उपस्थित लोगों को संबोधित कर कहा, ''श्रीमान् मातृगुप्त भारतसम्राट महाराज विक्रमादित्य शक-विजयी देश-धर्म-उद्धारक के अभिन्न मित्र और विश्वस्त व्यक्ति हैं। महाराज ने इनको यहाँ भेजा है और इनके हाथ ही एक पत्र कश्मीर के मंत्रिमंडल के नाम भेजा है।

''मैं आज के समारोह के आरंभ होने से पूर्व वह पत्र सभा में पढ़कर सुना देना चाहता हूँ।''

महामंत्री ने एक स्वर्ण थाल में रखे पत्र को उठाया और उसको खोलकर पढ़ना आरंभ कर दिया। महाराज विक्रमादित्य ने लिखा था—

''आदरणीय मंत्रिगण, कश्मीर राज्य!

''भारतसम्राट के नाम आपके पत्र के उत्तर में यह सूचना है कि भारतसम्राट आपकी इस अभिलाषा को उचित ही समझते हैं कि कोई निष्पक्ष व्यक्ति, जो प्रजा के साथ अपनी संतान-समान व्यवहार करे ओर जो इतना प्रतिभाशाली और विद्वान भी हो कि सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय और धर्म-अधर्म में भेद-भाव कर सके और इस भेद-भाव में अपने और पराये में समान व्यवहार रख सके, राज्य का शासक होना चाहिए। वह शासक अपनी सहायता के लिए विद्वानजनों का मंत्रिमंडल नियुक्त करे और उनकी सम्मति से शासनकार्य चलाए।

''मंत्रिमंडल का कार्य राज्य के हित में सम्मति देना है और मंत्रिमंडल की सम्मति पर शासन का संचालन करना चाहिए। शासन करने वाला एक व्यक्ति होना चाहिए। यद्यपि शासक मंत्रिमंडल की सामूहिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मति से राज्यकार्य चलाता है, परंतु शासन एक ही व्यक्ति कर सकता है, बहुत लोग मिलकर नहीं कर सकते।

"कश्मीर देश में कई वर्ष से शासक के बिना राज्य चल रहा है, परंतु एक ओजस्वी प्रत्युत्पन्न बुद्धि और कर्मशील धार्मिक भावना वाला व्यक्ति शासक के रूप में न होने से देश में अव्यवस्था उत्पन्न हो रही है, यह आपका मत है। इस धारणा के अनुसार आपकी इच्छा थी कि हम भारतसम्राट के नाते कश्मीर का एक शासक नियुक्त करें जो न केवल प्रजा में, वरंच मंत्रिगणों में भी पक्षपात रहित हो शासन-कार्य चलाने की सामर्थ्य रखे।

"अतएव हम अपने एक परिचित मित्र को इस कार्य के लिए कश्मीर भेजते हैं। कविवर मातृगुप्त एक प्रतिभाशाली राजनीति के गूढ़ तत्त्वों को जानने वाले महाविद्वान व्यक्ति हैं और हम समझते हैं कि कश्मीर देश में जो अभाव उत्पन्न हो रहा है, वह पूर्ण होगा।

"अपने देश की सर्वोत्कृष्ट विभूति कविवर मातृगुप्त हम कश्मीर को भेंट करते हैं।"

—पत्र प्रेषक
महाराज विक्रमादित्य
उज्जयिनी

पत्र पढ़कर जब सुना दिया गया तो पूर्ण उपस्थित गणों ने महाराज मातृगुप्त की जय-जयकार का घोर नाद किया।

इस नाद के साथ ही चारों ओर से पुष्पवर्षा होने लगी और वही पुरोहित जो प्रात:काल से राजप्रासाद में पूजा कर रहा था, राजा और राज्य की शुभ कामना के वेदमंत्र गान करने लगा।

मातृगुप्त देख रहा था कि उसके मित्र भारतसम्राट ने उसके साथ हँसी की है। यदि उसने उज्जयिनी में यह बताया होता तो वह वहाँ से एक इंच-भर भी कश्मीर की ओर न चलता। वह महाराज को इस पद के अस्वीकार करने की बात कहकर उज्जयिनी से कहीं किसी अरण्य में जाकर एक पर्णकुटी बनाकर रहने लगता।

वह समझ रहा था कि उसका कल्याण राज्यसिंहासन नहीं, वरंच तप और स्वाध्याय है। परंतु इस सब समारोह और हर्षोल्लास पर वह तुषारपात कर क्या वहाँ से अभी वन को चला जाए? इससे यह सिद्ध हो जाता कि वह महाराज विक्रमादित्य की इस नियुक्ति का अनादर करता है।

साथ ही महाराज के पत्र में इस बात का किंचित् मात्र भी संकेत नहीं था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि कवि इस सब योजना से अनभिज्ञ है। अतः अब यहाँ से भाग जाना तो यह सिद्ध करेगा कि महाराज ने कश्मीर राज्य से हँसी की है और अपने मित्र को धोखे से यहाँ भेजा है। महाराज के प्रति वह ऐसा भाव जनता में उत्पन्न करना नहीं चाहता था।

मातृगुप्त अभी मन में यह सब ऊहापोह कर ही रहा था कि महामंत्री ने मंत्रिमंडल का निर्णय पढ़कर सुना दिया। उसमें लिखा था—

"हम कश्मीर देश के मंत्रिमंडल के सातों सदस्य सर्वसम्मति से इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि श्रीमान् मातृगुप्त कश्मीर नरेश के पद पर आसीन किए जाएँ। हम इस नियुक्ति से कश्मीर देश का महान कल्याण और प्रजा का हित मानते हैं। इसी कारण हम प्रजागण को यह सम्मति देते हैं कि वे मंत्रिमंडल के इस निर्णय का समर्थन करें।

"गुप्त रूप में तो हमने प्रजा के प्रमुख व्यक्तियों की सम्मति इस विषय में ली है और हमें प्रजागण से इस नियुक्ति से सहमति प्राप्त हुई है।

"हम मंत्रिमंडल के सब सदस्य कविवर मातृगुप्तजी से यह आग्रह करते हैं कि वह परम पितामह ब्रह्मा द्वारा नियत कार्य का उत्तरदायित्व लेकर लोक-कल्याण के निमित्त इसे स्वीकार करें। इससे न केवल कश्मीर जनता कृतकृत्य होगी, वरंच हम अनुभव करते हैं कि महाराज मातृगुप्त के लिए भी स्वर्ग का द्वार खुल गया है।"

इस वक्तव्य के पढ़े जाने के उपरांत पुनः उपस्थित गणों में हर्षध्वनि हुई।

तदनन्तर मातृगुप्त को कुछ कहने का अवसर दिए बिना पुरोहित ने सप्त सिंधु के जल से मातृगुप्त का अभिषेक किया और केसर का तिलक लगाकर ऊपर चावल लगा दिए।

पुनः पुष्पवर्षा हुई और उपस्थित गणों ने हर्षध्वनि की।

अब पुरोहित ने सुरक्षित रखा महाराज मेघवाहन का राजमुकुट कविवर मातृगुप्त के सिर पर रखकर भगवान शिव की, भगवान महाकाल की ओर प्रजापति ब्रह्मा की जय-जयकार कर दी।

:: 5 ::

मातृगुप्त स्वयं इस समारोह का प्रयोजन और महाराज विक्रम द्वारा उसकी कश्मीर नरेश के पद पर नियुक्ति का उद्देश्य समझ प्रजा को संबोधन करने के लिए उठा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
महामंत्री ने कहा भी, "महाराज, सिंहासन को छोड़िए नहीं। बैठे-बैठे ही आदेश दीजिए।"

मातृगुप्त ने इस पर भी सिंहासन के समीप मंच पर खड़े होकर कहा, "मंत्रिमंडल और प्रजागण, अपने हितू महाराज विक्रम की इस योजना का मैं विरोध नहीं कर सकता। उनका स्नेह मुझ पर मेरे बचपन के काल से ही रहा है।

"मैं पाटलिपुत्र के राजपथ के तट पर खड़ा अपनी रचित कविताएँ गान करता हुआ अपने निर्वाह के लिए ताम्र एकत्रित करता रहता था। राजकुमार के मित्र विशाखदत्त मुझे पकड़कर राजकुमार के सम्मुख ले गए। तब से मैं उनकी कृपा का भाजन रहा हूँ।

"यह कार्यभार मैं ग्रहण करता हूँ और आप सबको वचन देता हूँ कि न्याय-बुद्धि से इस देश और यहाँ की प्रजा की सेवा करूँगा।

"अभी वर्तमान मंत्रिमंडल ही कार्य करेगा और मैं अपने ढंग से राज्यकार्य करने के लिए नया मंत्रिमंडल शीघ्र ही संगठित करूँगा।

"मैं भगवान् महाकाल को साक्षी मानकर यह कार्यभार ग्रहण करता हूँ और भगवान से विनती करता हूँ कि वह मुझे सद्बुद्धि और साहस दे जिससे मैं निर्भय होकर न्याय पथ पर चलता हुआ देश की प्रजा का हित सम्पन्न कर सकूँ।"

इस संक्षिप्त प्रवचन के उपरांत महाराज और कश्मीर देश की प्रजा के जय-जयकार के सिंहनाद के साथ सभा विसर्जित हुई।

वहाँ से ही चलकर राजप्रासाद में प्रथम मंत्रिमंडल की बैठक महाराज मातृगुप्त के सभापतित्व में हुई। उसमें महाराज मातृगुप्त ने अपना दिनभर का कार्यक्रम मंत्रिमंडल को बता दिया।

मातृगुप्त ने कहा, "मैं चाहता हूँ कि प्रात: ढाई घंटे तक मुझे राज्यकार्य से छुट्टी रहे। उस समय मैं अपने भगवान महाप्रभु महाकाल की सेवा में रहूँगा। तदनन्तर मैं रात को सोने के काल तक अपने राज्य की सेवा में रहा करूँगा।

"पूजा-पाठ के उपरांत प्रात: का अल्पाहार लेकर मैं दो घंटे भर प्रजागण की याचिकाएँ सुना करूँगा। उस समय राज्य महासचिव मेरे समीप रहा करेगा। वहाँ प्रजागण के संबंध में मेरी आज्ञाएँ उस महासचिव द्वारा राज्य के विभिन्न विभागों के मंत्रिगणों को मिला करेंगी। तदनन्तर मैं अपने गुप्तचर विभाग से दो घंटा विचार-विमर्श किया करूँगा।

"मध्याह्न के भोजन के उपरांत दो घड़ी भर विश्राम के उपरांत मैं मंत्रिगणों से मिलने के लिए अपने भवन की बैठक में रहा करूँगा। मंत्रिगण स्वेच्छा से अथवा मेरे बुलाने पर मुझसे मिलने आया करेंगे। तदनन्तर मैं राज्य के निरीक्षण के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए यत्र-तत्र आया-जाया करूँगा।

''जब कभी मैं राजधानी से बाहर रहूँगा तब भी यही कार्यक्रम होगा। अंतर यह होगा कि मध्याह्नोत्तर दो घंटा भर मंत्रियों के सचिव उनके अपने विभाग की जानकारी तथा कठिनाइयों का वर्णन कर उन पर मेरी सम्मति लिया करेंगे।

''मंत्रिमंडल की बैठक नियमित रूप से सप्ताह में एक दिन हुआ करेगी। इस कार्यक्रम पर कल से ही कार्य आरंभ हो जाएगा और जब तक इसमें परिवर्तन नहीं होता तब तक यह निरंतर चलता रहेगा। विशेष परिस्थिति में कार्यक्रम में परिवर्तन मेरी अनुमति से हो सकेगा।''

राजप्रासाद के मंदिर में कीर्तन यथावत् चलता रहा। राजप्रासाद के सेवक यह समझ रहे थे कि राजपद पर आसीन हो जाने के उपरांत महाराज अब यह कार्य नहीं करेंगे। उनकी कल्पना यह थी कि अब कीर्तन करने के लिए मंदिर में कोई पुजारी नियुक्त होगा, परंतु ऐसा नहीं हुआ।

अगले ही दिन नियमित रूप से सूर्योदय से ढाई घड़ी पूर्व वीणा की झंकार सुन सबकी नींद खुली और फिर पिछले एक सप्ताह की भाँति वीणा तथा संगीत की ध्वनि से आकर्षित लोग मंदिर की सीढ़ियों तथा प्रागंण में एकत्रित हो गए। पूर्ण प्रजा के बीच कवि बार-बार यह गा रहा था—

प्रभु साहस बुद्धि और निष्ठा ऐसी मोहे नित-नित दीजे।
जो तेरे इस कार-भार को मैं अब सकल सफलकर पाऊँ॥
प्रभु मैं तेरे ही गुण गाऊँ।

अल्पाहार के उपरांत ज्योंही राज्य का महासचिव नागेन्द्रदेव आया, राजप्रासाद की डयौढ़ी में बैठ महाराज मातृदेव ने प्रजागण से भेंट करनी आरंभ कर दी। इससे मंत्रिमंडल के राज्य की दुर्बलताओं का ज्ञान होने लगा।

स्वाभाविक रूप में महाराज के निमंत्रण पर वे लोग ही भेंट के लिए आए जो किसी न किसी कारण अपने को पीड़ित समझते थे।

नागेन्द्रदेव ने सब मिलने के लिए आए प्रजागण के नाम-धाम पहले ही एकत्रित कर रखे थे और वे एक-एक कर बुलाए जाने लगे।

सबसे पहले एक बुढ़िया आई। वह लाठी का आश्रय ले भीतर आई। महाराज ने उस स्त्री को सामने भूमि पर बैठ जाने का आदेश देते हुए कहा, ''माताजी, बैठकर बात करिए।''

जब वह भूमि पर माथा लगा नमस्कार कर चुकी तो मातृगुप्त ने पूछा, ''बताइए माताजी, क्या कष्ट है?''

''मैं इस समय अस्सी वर्ष की हूँ। मेरा एक ही लड़का था जो महाराज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
प्रवरसेन के साथ सिंध देश की लड़ाई पर गया था और वहाँ से नहीं लौटा। उसकी मृत्यु की भी सूचना नहीं थी क्योंकि राजकर्मचारियों को उसका शव प्राप्त नहीं हुआ।

"इस पर महाराज प्रवरसेन ने मुझे राज्यकोष में से निर्वाह के लिए प्रतिमास सहायता दी थी। पाँच रजत प्रतिमास मिलते थे। महाराज के निधन के उपरांत वह सहायता राशि मिलनी बंद हो गई थी। क्यों? मैं नहीं जानती, परंतु उस समय मैं पैंसठ वर्ष की थी। मैं स्वयं कार्य कर सकती थी और मैंने एक दुकान अपने गाँव में कर ली थी और निर्वाह चलाती रही। महाराज हिरण्य के देहावसान के उपरांत मेरी दुकान एक व्यक्ति ने बलपूर्वक मुझसे छीन ली। तब से मैं भीख माँगकर खाती हूँ। अब कुछ वर्ष से अपने क्षेत्र में दुर्भिक्ष के प्रकोप के कारण गाँव छोड़ राजधानी में रह रही हूँ।

"कल महाराज की इस घोषणा पर कि आप प्रजा के कष्ट सुनने के लिए नित्य प्रात:काल बैठकघर में बैठा करेंगे, मैं आज इस वृद्धावस्था में निर्वाह के लिए सहायता की याचना करने आई हूँ। अब भीख माँगने की भी सामर्थ्य नहीं रही।"

"माताजी, लड़के का क्या नाम था?"

"महाराज, भूल गई हूँ। बचपन में उसे बेटा ही कहती थी। अब तो चालीस वर्ष से उसका नाम मुख पर न लाने से नाम विस्मरण हो गया है।"

इस समय महासचिव ने महाराज को बताया, "महाराज, यह स्त्री भीख माँगने का स्वभाव रखती है और एक-एक कर सब मंत्रियों से भीख पा चुकी है। किसी को भी इसकी कहानी पर विश्वास नहीं आया और इसे सामान्य भिक्षुणी समझ इसको अपने पास से सहायता दी है, परंतु राज्यकोष से इसकी सहायता नहीं की।"

मातृगुप्त ने एक क्षण तक विचार किया और उसका नाम एक पत्र पर लिखकर अपने पास रख लिया। उस वृद्ध स्त्री का नाम मंदाकिनी था।

महाराज ने अपनी जेब से दो रजत उस स्त्री को देते हुए कहा, "माताजी, एक सप्ताह के उपरांत पुन: इसी समय यहाँ मिलिएगा। तब स्थायी सहायता के विषय में राजाज्ञा सुना दी जाएगी।"

उस स्त्री ने पुन: भूमि पर माथा टेककर आशीर्वाद दिया और चल दी। उसके चले जाने के उपरांत महाराज मातृगुप्त ने महासचिव से पूछा, "राज्य-भोग कोष किसी मंत्री के अधीन है?"

"इस कोष को विघटित कर दिया गया था। महाराज मेघवाहन और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
प्रवरसेन के काल में कोष चलता था। महाराज हिरण्य के काल में यह कोष समाप्त कर दिया गया था और तब से राज्य-सहायता अपने-अपने विभाग के मंत्री देते हैं और उनका वितरण उनके विभाग का खर्चा समझा जाता है।''

''परंतु यह स्त्री किस विभाग से सहायता पाने की अधिकारिणी है?''

''रक्षा विभाग से। वह भी तब जब इसकी कथा पर विश्वास किया जाए। परंतु इसकी बात में कोई विश्वास नहीं करता।''

''अच्छी बात है। भेंट के लिए आए अगले व्यक्ति को बुलाइए।''

एक प्रौढ़ावस्था का व्यक्ति ब्राह्मण के वेश में आ उपस्थित हुआ। नाम था महेश्वर पंडित।

''हाँ, क्या चाहते हैं पंडितवर?'' महाराज ने पूछा।

''महाराज, मैं कवि हूँ। इस कारण एक कवि नरेश से सहायता माँगने आया हूँ जिससे मैं अपनी कविता का कार्य चालू रख सकूँ।''

''कुछ धनोपार्जन का कार्य नहीं करते?''

''महाराज, मैं कविता कार्य से ही धनोपार्जन करना चाहता हूँ।''

''परंतु यह कोई व्यवसाय तो नहीं है।''

''प्रत्येक कार्य व्यवसाय के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।''

''कवि महोदय, यह ब्राह्मण का कार्य है और ब्राह्मण किसी की भी सेवा करना नहीं चाहता। विशेष रूप में राज्य-सेवा तो उसे ब्राह्मणत्व से पतित कर देगी।''

''यह सब वैश्य और क्षत्रिय वर्ग का ब्राह्मणों को मूर्ख बनाने के लिए मिथ्या कथन है।''

''ठीक है। तुम्हें तुम्हारी याचिका का उत्तर एक सप्ताह के भीतर मिल जाएगा।''

उसका नाम-धाम अपने पत्र पर लिखकर नाम के नीचे कुछ चिह्न बनाकर अगले व्यक्ति को बुलाया।

इस प्रकार दो घंटा यह कार्य चलता रहा। इस कार्य के लिए नियुक्त समय व्यतीत होने से पूर्व ही सब याचक समाप्त हो गए। कुछ को एक सप्ताह के उपरांत आने के लिए कहा गया। कुछ के विषय में महासचिव को उचित मंत्री को उचित कार्रवाई करने का आदेश दे दिया गया और एक-दो को यह भी कहा गया कि वे स्वयं अमुक मंत्री के पास अपनी बात कहें।

तदनन्तर भोजन का समय हो गया। मातृगुप्त अभी तक कभी महामंत्री और कभी किसी अन्य मंत्री के साथ भोजन करने आया करता था। आज वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
भोजनालय की ओर जा रहा था तो मार्ग में ही उसे सेवकों के साथ सेविकाओं का आना-जाना भी दिखाई देने लगा। एक सेविका को भोजनालय के द्वार पर खड़ा देख वह टुकुर-टुकुर उसका मुख देखता रह गया। वह खड़ा हो उससे पूछने लगा, ''तुम कौन हो और यहाँ क्या कर रही हो?''

उस स्त्री ने झुककर प्रणाम किया और फिर आदरयुक्त भाव में खड़े होकर कहा, ''महाराज, महामंत्रीजी ने आपकी सेवा के लिए नियुक्त किया है।''

मातृगुप्त ने मुस्कराते हुए पूछा, ''किस सेवा के लिए नियुक्त किया है।''

''जो महाराज बताएँगे।''

''तो महामंत्री ने कुछ नहीं बताया?''

''यही बताया है कि महाराज को दस सेविकाओं की आवश्यकता है और हम दस को यहाँ भेज दिया है। अभी तक तो हम राजप्रासाद के दारोगा से अपने रहने के विषय में पूछताछ कर रही थीं। दारोगा ने कहा है कि अभी महाराज भोजन के लिए आ रहे हैं। उनको नमस्कार करो। उनके भोजन के उपरांत रहने का स्थान बता दूँगा।''

''ओह! तो तुम सब नमस्कार करने आई हो?''

''हाँ, महाराज।''

मातृगुप्त भोजनालय में पहुँचा। वहाँ भी रसोई परोसने के लिए सेविकाएँ खड़ी थीं। वह जो द्वार पर मिली थी, वह भोजनालय से बाहर ही रह गई थी।

इन दोनों ने भी झुककर प्रणाम किया तो मातृगुप्त ने पूछा, ''तुम्हारी भी नियुक्ति आज ही हुई है?''

''हाँ महाराज,'' एक ने उत्तर दिया।

''तुम्हें भी आज्ञा हुई है कि मुझे प्रणाम कर लो तो पीछे काम बताया जाएगा?''

''काम तो महाराज, हमें ज्ञात है,'' उसी ने कहा, ''हम तो दारोगा से निवास के लिए स्थान माँग रही थीं। उसने स्थान दिया था, परंतु हमें एक-दूसरे से दूर-दूर किसी को प्रासाद के एक कोने में और किसी को प्रासाद के दूसरे कोने में। हमने इस प्रकार रहना स्वीकार नहीं किया। हम सब एक ही कक्ष में और समीप-समीप रहना चाहती हैं। इस पर उसने कहा है कि महाराज भोजन के लिए आ रहे हैं। पहले उनको नमस्कार कर आओ तो पीछे निवास के लिए स्थान निश्चय कर दूँगा।''

इस समय तक मातृगुप्त का विस्मय निवारण हो चुका था। उसने हाथ धोये और भोजन के लिए चौकी पर बैठ गया। आज चौकी भी सोने और चाँदी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनी थी। उस पर मखमली गद्दी रखी थी।

एक कुमारी भोजन का थाल उठाए हुए आई। यह तो अभी षोडशी ही प्रतीत होती थी और देखने में अति सुन्दर थी। वैसे भी बहुत ही दुबली-पतली थी और स्वर्ण थाल में बत्तीस व्यंजनों से भरे कटोरों के भार से उसकी कमर झुक रही थी।

अभी मातृगुप्त खड़ा सोने-चाँदी की चौकी की ओर ही देख रहा था कि इस खाना परसने के लिए झुकी कमर से आती कुमारी को देखने लगा। उसने उस कुमारी से ही पूछ लिया, ''यह क्या है?''

उस लड़की ने खाना चौकी के सम्मुख ऊँची चौकी पर रखते हुए कहा, ''महाराज के लिए भोजन लाई हूँ।''

''पहला सेवक कहाँ है?''

''इस काम के लिए मेरी नियुक्ति हुई है।''

''ओह! बुलाओ पहले सेवक को।''

भोजन लाने वाली कुमारी ने एक अन्य की ओर देखा। उन दो में से जो भोजनालय में पहले खड़ी मिली थी, एक रसोईघर में गई और सेवक को बुला लाई जो पहले भोजन कराया करता था। मातृगुप्त ने उससे पूछा, ''तुम भोजन क्यों नहीं लाए?''

''महाराज, आज से इस काम के लिए कुमारी मृणालिनी नियुक्त हुई है।''

''परंतु थाल इतना भारी था कि इस बेचारी की कमर दोहरी होती जा रही थी।''

''महाराज, यह भोजन के थाल का दोष नहीं। वह तो महाराज के भोजन के लिए नियत ही है। यह दोष अथवा गुण कुमारी की कटि का है।''

''अच्छा, भविष्य में ऐसा करो कि दो छोटे-छोटे थालों में दो बार करके भोजन आया करो जिससे इस बेचारी की कटि को कष्ट न हो।''

मातृगुप्त समझ रहा था कि आज से वह इस राजप्रासाद में एक नरेश के रूप में मान पा रहा है। आज से पहले वह एक मेहमान मात्र था। इस कारण वह चौकी पर बैठ गया। अब वही कुमारी एक चौकी महाराज की चौकी के सम्मुख और लगाकर उस पर एक सामान्य रजत के थाल में भोजन ले आई। उसे उसने सामने वाली चौकी पर रखा तो मातृगुप्त ने पूछा, ''तो क्या महामंत्री आ रहे हैं?''

''नहीं महाराज।'' मृणालिनी ने कहा, ''मुझे आज्ञा है कि मैं आपके भोजन में आपका साथ दिया करूँ।''

मातृगुप्त के मन में संशय उत्पन्न हो गया। वह समझ गया कि इन छोकरियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
के मोहजाल में फँसाकर उसे यहाँ बाँध रखने का प्रबंध किया जा रहा है। इस पर वह मुस्कराया और उस लड़की की ओर देखा जो अपने लिए लगे थाल के समीप खड़ी महाराज की आज्ञा की प्रतीक्षा कर रही थी।

मातृगुप्त ने कहा, ''बैठो मृणालिनी देवी। अपना कार्य पूर्ण करो अन्यथा महामंत्री वेतन नहीं देंगे।''

मृणालिनी भी मुस्कराई और सामने बैठ गई और महाराज के साथ भोजन करने लगी।

मातृगुप्त समझ रहा था कि उसकी अग्निपरीक्षा हो रही है। भोजन तो पहले ही इतना लाया गया था कि और लाने की आवश्यकता नहीं थी। वरंच लाए हुए में से भी बहुत बच जाने वाला था। इस समय दो अन्य खड़ी स्त्रियों में से एक चँवर झुलाने लगी।

मातृगुप्त ने इस पर हँसते हुए कहा, ''यह तुम क्या कर रही हो?''

''महाराज पर चँवर झुला रही हूँ।''

''किसलिए?''

''यह राजाओं पर झुलायां जाता है।''

''तो यह बात है!''

मृणलिनी बहुत छोटे-छोटे ग्रास ले चबा-चबाकर धीरे-धीरे खा रही थी। मातृगुप्त अपने स्वभाविक ग्रास मुख में डालकर कुछ तेजी से खा रहा था। भोजन करते हुए मातृगुप्त महामंत्री से देश-विदेश की बातें किया करता था। मातृगुप्त स्वयं भी पूर्ण भारत देश में तथा उससे बाहर भी सीमावर्ती देशों में घूम चुका था। इस पर महामंत्री चित्रगुप्त मातृगुप्त को कश्मीर के शोभनीय स्थानों का वर्णन सुनाया करता था। आज एक अति अल्प वयस की कुमारी को सामने बैठा देख वह नहीं समझ सका कि इससे किस विषय पर बात करे।

लगभग आधा भोजन तो बिना बोले ही हो गया। इस मौन को मृणालिनी ने भंग किया। उसने पूछ लिया, ''महाराज, आज भोजन में रस नहीं आ रहा प्रतीत होता?''

''नहीं देवी, यह बता नहीं। मैं तो भोजन में नित्य से अधिक रस अनुभव कर रहा हूँ।''

''आपको मौन देख मैं समझी थी कि महाराज एक कुरूप लड़की को सम्मुख बैठे देख भोजन में रुचि नहीं ले रहे।''

''नहीं, यह बात नहीं है देवी। तुम महामंत्री से तो अधिक लुभायमान हो ही।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर मृणालिनी हँस पड़ी। हँसते समय उसके श्वेत मुक्ता समान दाँत दिखाई दिए जो कवि को बहुत सुंदर प्रतीत हुए। मातृगुप्त ने पूछा, ''देवी हँसी क्यों ?''

''आपको एक स्त्री जाति के प्राणी की पुरुष जाति के प्राणी से तुलना करते देखकर। यह तो एक मयूर की एक कुक्कड़ से तुलना करने के समान है।''

''तुम तो कुछ बुद्धि भी रखती प्रतीत होती हो। तो क्या मयूर की कुक्कड़ से तुलना नहीं हो सकती ?''

''महाराज, दोनों अपने-अपने स्थान पर सुंदर हैं। दोनों में तुलना का प्रश्न ही नहीं। दोनों की जातियाँ भिन्न-भिन्न हैं।''

''तो क्या स्त्री जाति पुरुष जाति से भिन्न है ?''

''जब एक को दूसरे में बदल न सकें और यह भेद जन्म से ही हो तो जाति कहलाती है।''

''तुम तो बुद्धिशील होने के साथ ज्ञानवान भी हो।''

''परंतु महाराज, सुना है कि आप एक ख्याति प्राप्त कवि हैं। मैं तो सामान्य भाषा में ही बात कर रही हूँ।''

''तो कवियों की भाषा सामान्य नहीं होती ?''

''वह अलंकृत होती है।''

मातृगुप्त को लड़की से वार्तालाप में रस आने लगा था। वह पूछने लगा, ''देवी की वयस कितनी है ?''

''महाराज किसलिए पूछ रहे हैं ?''

''तुम्हारी बातों में युक्ति और प्रमाण का समावेश होने से ऐसा प्रतीत होता है कि तुम पचास वर्ष का अनुभव और ज्ञान रखती हो।''

''महाराज, मैं अपनी आयु नहीं जानती। यह तो मेरी माँ को ही विदित होगी। परंतु मुझे अपना बाल्यकाल इतना दूर दिखाई नहीं दिया। मुझे स्मरण है कि चार-पाँच वर्ष पूर्व मैं पाणिनी का महाभाष्य स्मरण कर रही थी। तब मुझमें वे लक्षण नहीं थे जो एक कुमारी में दिखाई देते हैं।''

''और वे क्या लक्षण हैं ?'' मातृगुप्त समझ रहा था कि उसके मनोरंजन के लिए किसी बहुत ही समझदार लड़की का निर्वाचन किया गया है।

''महाराज,'' लड़की ने कहा, ''जो लक्षण एक स्त्री के माता बनने के लिए नियत किए गए थे। मुझमें उन लक्षणों का समावेश हुए दो-तीन वर्ष ही हुए हैं।''

''तब तो तुम्हारी आयु तुम्हारी माता से पूछनी पड़ेगी। वह देवी कौन हैं और कहाँ हैं ?''

''महाराज, एक हैं। नगर में रहती हैं। मातंगी उनका नाम है। पतिविहीन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधवा हैं। लड़कियों को पढ़ाती हैं और जीवन निर्वाह करती हैं।''

''तभी।''

''तभी क्या?''

''मातंगी देवी ने अपनी लड़की को भलीभाँति सुशिक्षित किया प्रतीत होता है।''

''आप अब मेरी माँ की प्रशंसा करने लगे हैं।''

''हाँ। स्वादिष्ट रसाल उस भूमि से ही जाने जाते हैं जिस पर वह उत्पन्न हुए हों।''

''मैं भी यही समझती हूँ। मैंने अपने पिताजी को नहीं देखा। मैं नहीं जानती कि वह कैसे थे। मैंने तो अपनी माताजी को ही देखा है और उन्हीं की कृपा का फल हूँ।''

भोजन समाप्त होने तक वार्तालाप चलता रहा। जब मातृगुप्त ने भोजन समाप्त किया तो मृणालिनी ने पहले ही भोजन करना छोड़ दिया था। दोनों उठे तो मातृगुप्त हाथ धो अपने शयनागार को चल पड़ा। मृणालिनी और दोनों अन्य स्त्रियाँ उसके साथ-साथ थीं।

शयनागार के बाहर मातृगुप्त खड़ा हो गया। वह चाहता था कि मृणालिनी इत्यादि अब लौट जाएँ। मृणालिनी ने महाराज के खड़े हो जाने का अभिप्राय समझकर कहा, ''महाराज, चलिए। मैं आपके विश्राम का प्रबंध देखने के लिए नियुक्त हूँ।''

मातृगुप्त इस सबका संभावित परिणाम समझ रहा था। वह उस परिणाम का विरोध करने का संकल्प मन में बना चुका था। वह समझ रहा था कि इससे इस कुमारी को बहुत निराशा होगी। यह एक अविवाहित नरेश की पत्नी बनने के स्वप्न देख रही होगी और वह अपने लिए विचार करता था कि वह अनेकों कुमारियों को विवाह के लिए अस्वीकार कर चुका है और क्या इस बड़ी आयु में इस छोकरी के जाल में फँस जाएगा? उसने अपने संकल्प पर विचारकर कहा, ''ठीक है। मैं तुम्हारे नियत कार्य में बाधा नहीं बन सकता। यह अपराध है।''

मातृगुप्त शयनागार में गया तो वह लड़की उसके पीछे-पीछे चलती हुई पूछने लगी, ''महाराज, क्या अपराध है?''

''राज्य कर्मचारी के कार्य में बाधा बनना अपराध है। और इसका दंड दो मास के कठोर कारावास से लेकर मृत्युदंड तक है।''

''ओह!'' लड़की के मुख से अकस्मात् निकल गया। उसने विस्मय से पूछा, ''तो महाराज, आप भी दंड के पात्र हो सकते हैं क्या?''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"अपराध करूँगा तो दंड क्यों नहीं पाऊँगा? यह संभव है कि मैं अपने पद के अधिकारों का प्रयोग कर इस राज्य में दंड पाने से बच जाऊँ, परंतु मृणालिनी, एक अन्य राज्य है जो कश्मीर और भूमंडल के सब राज्यों से भी ऊपर है। उससे तो मैं बच नहीं सकूँगा।"

लड़की ने महाराज के पलँग पर बैठते ही उनका जूता पाँव से निकाल आगार के एक कोने में ले जाकर रख दिया। मातृगुप्त पलंग पर लेटने लगा तो मृणालिनी ने खिड़कियों पर पर्दे चढ़ा दिए। आगार में प्रकाश कम हो गया। वह पलँग पर लेट गया तो मृणालिनी महाराज से यह पूछ कि क्या अब वह जा सकती है, शयनागार से निकल गई।

मातृगुप्त नरेश बनते ही मार्ग में प्रलोभनों के बिछाए जाने की बात पर विचार करता हुआ सो गया। प्रातः सूर्योदय से आधा प्रहर पहले का जागा हुआ अब मध्याह्न से ऊपर हो चुका था और उसे तीसरे प्रहर के आरंभ होते ही महामंत्री से मिलने के लिए तैयार होना था। इस कारण वह एक-डेढ़ घड़ी सोने का यत्न करने लगा।

ठीक समय पर आगार के बाहर अति मधुर, परंतु धीमी आवाज में घंटी बजती सुनाई दी। मातृगुप्त उठा तो उसने देखा, मृणालिनी पहनने योग्य धुले वस्त्र एक थाल में लिए पलँग के समीप खड़ी थी। पहला पुरुष सेवक इतना सतर्क नहीं था। वह समझा था कि कदाचित् तब वह मेहमान था और अब नरेश है। इसी कारण सेवकों की सतर्कता में अंतर है। इस विचार से उसने विस्मय प्रकट किए बिना, वस्त्र लिए और साथ के आगार में वस्त्र बदलने चला गया।

मातृगुप्त के वस्त्र पहन बाहर निकलते ही मृणालिनी जूता लिये भूमि पर बैठी थी।

:: 6 ::

प्रासाद के बैठकघर में महामंत्री उपस्थित था। मातृगुप्त वहाँ पहुँचा तो वह उठकर आदर-भाव से नमस्कार कर महाराज के लिए नियत स्थान पर बैठने का संकेत करने लगा।

"महाराज, पधारिए।"

"तो इस देश में कुम्हार अपने बनाए खिलौनों को स्वयं ही नमस्कार करने लगते हैं?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
''हाँ, यदि खिलौना भगवान की मूर्ति का प्रतीक बन जाए। तब तो कुम्हार ही नहीं, वरंच पूर्ण जनता उसकी पुष्प, धूप, दीप इत्यादि से पूजा करती ही है।''

''परंतु मैं भगवान की प्रतीक मूर्ति नहीं बन रहा।''

''तो महाराज, क्या बनना चाहेंगे?''

''एक सजीव, कार्य में लीन, सतर्क नरेश।''

''तब तो महाराज, मैं अपने को धन्य मानूँगा। मैं समझूँगा कि मैंने मूर्ति निर्माण नहीं की, वरंच जीवित, जाग्रत, सतर्क, सर्वगुणसम्पन्न भगवान को जन्म दिया है। तब तो महाराज हमारा पूर्ण देश मेरे इस कार्य पर कृतकृत्य होगा।''

''तो सुनो, मैं अब विवाह नहीं करूँगा।''

महामंत्री मृणालिनी की नियुक्ति स्मरण कर मुस्कराता हुआ पूछने लगा, ''तो मृणालिनी देवी ने कुछ अनुचित व्यवहार किया है? तब तो महाराज उसे उचित दंड देने का अधिकार रखते हैं।''

''नहीं, उस भली लड़की ने अभी तक अपनी सीमाओं का उल्लंघन नहीं किया। इस पर भी मुझे संदेह है कि उसकी माता अथवा आपने किसी प्रकार का षड्यंत्र किया है और कश्मीर नरेश इस षड्यंत्र को दंडनीय मानेगा।''

''परंतु श्रीमान्, षड्यंत्र तो चोरी-चोरी किया जाता है। उसमें लक्ष्य के साथ किसी अनिष्ट की भावना होती है। ऐसी कोई बात नहीं। एक राज्यकार्य ही करने का यत्न किया जा रहा है। वह भी चोरी-चोरी नहीं। न ही किसी के साथ बलात्कार करते हुए इसे करने का यत्न किया है।

''महाराज, यदि वह किसी की इच्छा के विपरीत किसी प्रकार का भी अनियमित कार्य करने लगे तो वह दंड की भागी होगी।

''महाराज, आपने अपने लिए दिन भर का कार्यक्रम नियत कर लिया है। इसमें आपने अपने मनोरंजन तथा विश्राम के लिए अवकाश नहीं रखा। इस कारण मैंने आपके राजप्रासाद के वातावरण में कुछ रंग भरने का यत्न किया है। अपनी सामर्थ्यानुसार आपके जीवन को सुंदर से सुंदर वातावरण से रंजित करने का यत्न किया है।''

''परंतु हमने तो अपनी दिनचर्या में अपने लिए संगीत और पूजा-पाठ का समय रखकर पहले ही जीवन में रस भर रखा है। इन छोकरियों को हमारे आगे-पीछे लगाने से भला क्या मनोरंजन होगा?''

''यह मानव प्रकृति है, महाराज। अपने से विलक्षण वस्तुओं को देखने के लिए वह लालायित रहता है। मानवों में स्त्री पुरुष से एक विलक्षण वस्तु होती है। इस कारण इसकी उपस्थिति मनोरंजन में कारण हो जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''पहले यह स्थान एक अतिथि-गृह मात्र थे। कल सायंकाल से यह राजप्रासाद बन गया है और मैंने इसे सब प्रकार से अलंकृत करने का यत्न किया है।

''जब से श्रीमान के इस नगर में पधारने का समाचार आया था, मैंने गुप्तचर चारों ओर दौड़ाए थे कि राज्य की सर्वश्रेष्ठ सुंदरियाँ जो आपके मनोरंजन में सहयोग दे सकें, एकत्रित की जाएँ। बहुत यत्न करने पर ही ऐसी पात्रियाँ पा सका हूँ जो इस कार्य के लिए उपयुक्त समझ आई हैं। सबकी सब देश के सर्वश्रेष्ठ परिवारों की घटक हैं।''

''परंतु यह मृणालिनी तो हमारे शयनागार में भी सेवा के लिए जा पहुँची है। हमें वहाँ किसी स्त्री को देखने का अभ्यास नहीं।''

''महाराज, उसमें एक राजकीय कार्य का उद्देश्य है। लड़की स्त्री-रत्न है। वह अति श्रेष्ठ सुंदरी है, विदुषी है, विशेष प्रतिभा की स्वामिनी है और सुशील है। उसे हमारा मंत्रिमंडल भावी राजमाता बनाने की योजना रखता है। एक सर्वश्रेष्ठ कवीश्वर द्वारा एक महापंडिता की विदुषी कन्या से राजमाता निर्माण करने की योजना है।''

''परंतु महामंत्री इस योजना में मुख्य कार्यकर्ता की अनुमति तो होनी चाहिए।''

''उसी के लिए तो उस कुमारी को मुख्य कार्यकर्ता के सम्पर्क में लाया गया है। परंतु महाराज, यह किसी प्रकार से भी षड्यंत्र नहीं। कारण यह कि इसमें कुछ भी गुप्त नहीं, इसमें किसी का भी अनिष्ट लक्ष्य नहीं। इसमें एक महान कल्याणकारी फल की आशा की गई है।''

''परंतु वह प्रलोभन है।''

''तो इसमें दोष महामंत्री का नहीं। यह प्रकृति की देन है। प्रकृति ने ही अपनी योजना को पूर्ण करने के लिए यह सब कुछ निर्माण किया है। पुरुष-स्त्री के संयोग की व्यवस्था हमारी विचारित नहीं। यह भगवान ने अपनी मायारूपी सृष्टि में स्वयं अपने हाथ से रची है।

''प्रभु, हम तो इस योजना में भाग लेना नहीं चाहते।''

''तो महाराज, इसमें हम कैसे आ गए? आप जानें और आपके भगवान जानें।

''परमात्मा ने हमें इस देश के लोक-कल्याण के लिए नियुक्त किया है। हम अपनी तुच्छ बुद्धि से यह कार्य संपन्न करने का यत्न कर रहे हैं। इस कल्याण-कार्य में भी भगवान ही साधन प्रस्तुत कर रहा है। उन साधनों का ही हम प्रयोग कर रहे हैं।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परन्तु मंत्रिमंडल ने यह निर्णय देश के नरेश की अनुपस्थिति में लिया है। इस कारण देश का नरेश इसे रद्द भी कर सकता है।"

"श्रीमान, यह निर्णय उस समय लिया गया था जब देश में कोई नरेश नहीं था। मंत्रिमंडल में ही यहाँ के नरेश के अधिकारों का समावेश था। यह प्रश्न आज से दो वर्ष पूर्व मंत्रिमंडल के समक्ष उपस्थित हुआ था। उस समय मंत्रिमंडल को कार्य करते हुए दस वर्ष हो चुके थे। प्रश्न उपस्थित हुआ कि राज्य का उत्तराधिकारी ढूँढा जाए। यह विचार हुआ कि किसी श्रेष्ठ माता-पिता की संतान को राजकुमार घोषित किया जाए। परंतु जब राजकुमार के लक्षणों से युक्त बालक की खोज की गई तो प्रत्येक मंत्री अपनी संतान को इसके लिए प्रत्याशी के रूप में उपस्थित करने लगा।

"उस समय यह मेरी ही योजना था कि भारतसम्राट से प्रार्थना की जाए कि वह इस देश को एक नरेश दें और उस नरेश से संतान उत्पन्न कराई जाए। संतान के बीजारोपण के लिए भूमि अर्थात् किसी उपयुक्त लड़की की खोज की जाए।

"मेरी योजना स्वीकार हुई तो उस पर कार्य होने लगा। हम अपनी योजना की पूर्ति के लिए यत्नशील हो गए। अभी तक तो हमारी योजना सहज भाव में चल रही है। शेष परमात्मा के अधीन है। हमने उसकी योजना के अनुसार ही कार्य करने का यत्न किया है।"

मातृगुप्त ने मुस्कराते हुए कहा, "तो यह सिद्ध हुआ कि यहाँ के महामंत्री ही नहीं, वरंच पूर्ण मंत्रिमंडल ही एक महान षड्यंत्रकारी संस्थान है और मैं उस षड्यंत्र का आखेट बन गया हूँ।"

"महाराज, यह लांच्छन अप्रमाणित है। यह षड्यंत्र नहीं है। यदि किसी युवक और युवती को विवाह के लिए तैयार किया जाए तो यह षड्यंत्र नहीं हो सकता। विशेष रूप में जब बिना लुकाव-छुपाव के योजना चलाई जाए यदि इसे षड्यंत्र और अपराध माना जाए तो संसार के सब माता-पिता अपराधी हो जाएँगे।"

"परंतु महामंत्री, मैं युवक नहीं हूँ। इस समय मेरी आयु बावन वर्ष के लगभग है।"

"यह देखा गया है महाराज, कि बूढ़े माता-पिता की संतान उनकी सर्वश्रेष्ठ संतान होती है। माता-पिता की अंतिम संतान प्रायः चमत्कारिक प्रतिभा और सामर्थ्य से युक्त होती है।"

मातृगुप्त ने कुछ काल तक गंभीर हो विचार किया और मन में कुछ निर्णय कर वार्तालाप का विषय बदल दिया। मातृगुप्त ने कहा, "महामंत्री, हम चाहेंगे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि प्रति बृहस्पतिवार को मंत्रिमंडल की बैठक हुआ करे। इस नियमित बैठक के अतिरिक्त आपतकालीन सभा भी हो सकती है। उसे हम महामंत्री अथवा किसी भी मंत्री को महाराज की अनुमति से बुलाने का नियम प्रारम्भ करते हैं।

''यह आज्ञा पालन होगी। कल बृहस्पतिवार है। मैं महाराज की इस आज्ञा की अभी घोषणा कर देता हूँ।''

''हम यह चाहते हैं कि उस मंत्रिमंडल की सभा में प्रत्येक मंत्री अपने विभाग की संक्षिप्त परंतु सत्य-सत्य सूचना उपस्थित करे।''

''यह ठीक है।''

''हमारी यह आज्ञा है कि हमारे पूर्ण देश में भ्रमण की योजना तैयार की जाए जिससे हम प्रजागण से परिचित हों और प्रजागण का हमें परिचय हो।''

''यह हो जाएगा। इसका शीघ्र ही प्रबंध होगा।''

महामंत्री ने देश की अनेकानेक समस्याओं पर विचार किया। इन समस्याओं में दुर्भिक्ष की समस्या भी थी। महामंत्री ने कहा, ''मुझे इस देश के महामंत्री पद पर नियुक्त हुए पंद्रह वर्ष से ऊपर हो चुके हैं और इन पंद्रह वर्षों में देश में तीन बार दुर्भिक्ष की अवस्था हो चुकी है। उस समय प्रजा को बहुत कष्ट होता है। इसके निवारण के लिए बहुत यज्ञ-अनुष्ठानादि किए गए हैं, परंतु सफल नहीं होते। अंतिम दुर्भिक्ष की स्थिति आज से तीन वर्ष पूर्व हुई थी। उस समय भूख से पीड़ित एक लाख के लगभग बाल-वृद्ध, नर-नारी मृत्यु को प्राप्त हो गए थे।''

''क्या यज्ञ-अनुष्ठान किए थे दुर्भिक्ष निवारण के लिए?''

''देश के सब नगरों और गाँवों में हवन-यज्ञ किए गए थे। सहस्रों मन घी और सुगंधित द्रव्य जलाए गए थे। परंतु वर्षा नहीं हुई और अकाल की स्थिति उत्पन्न हुई तो लोग मक्खियों की भाँति मरने लगे।''

''आपका अनुमान है कि एक-दो वर्ष में पुनः यही स्थिति उत्पन्न होने वाली है?''

''कब होगी, यह तो नहीं कहा जा सकता। हाँ, पाँच-छः वर्ष उपरांत ऐसा होता रहता है।''

''देखिए, पंडित चित्रगुप्तजी, आपने यज्ञ ठीक ढंग से नहीं किया।''

''महाराज, देश भर के पंडितों से सम्मति कर ही यज्ञ की योजना बनाई गई थी। यजुर्वेद का पारायण सैकड़ों स्थानों पर कराया गया था।''

मातृगुप्त मुस्कराया ओर बोला, ''अच्छा, मैं यज्ञ की एक योजना बताता हूँ। आप करिए। हमारे राजकोष में कितना धन है?''

''वर्ष भर के खर्चे के अतिरिक्त बीस करोड़ स्वर्ण सुरक्षित हैं।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"और आजकल अन्न का क्या भाव है ?"

"दो रजत प्रति मन सुगमता से प्राप्त है।"

"यदि माद्र देश अथवा लवपुर क्षेत्र से मँगवाएँ तो क्या भाव पड़ेगा ?"

"वहाँ तो इससे भी सस्ता है। लाने का खर्चा पृथक् पड़ेगा। मैं अनुमान से बताता हूँ कि तीन रजत प्रति मन पड़ जाएगा।"

"इस वर्ष तो अपने देश में भी उपज अधिक हुई है।"

"हाँ, महाराज।"

"तो ऐसा करो। पाँच लाख मन अनाज क्रय कर लिया जाए। इसमें दो लाख मन तो अपने देश में क्रय किया जाए और तीन लाख मन विदेशों से मँगवाया जाए। इस सबमें लगभग पंद्रह-सोलह लाख रजत व्यय होंगे।"

"ठीक है, महाराज। परंतु इसमें दो कठिनाइयाँ हैं। एक तो क्रय कौन करे और दूसरी यह कि खरीदकर यह कहाँ जमा किया जाए ?"

"उसके लिए अन्य भंडार बनवाएँ जाएँ। जब तक क्रय करने का कार्यक्रम जारी रहे तब तक ये भंडार निर्माण कर लिए जाएँ।"

"और इससे आप क्या करेंगे ?"

"मैं इस अन्न से यज्ञ करूँगा और विश्वास से कह सकता हूँ कि दुर्भिक्ष की स्थिति नहीं होगी।"

"परंतु यह करेगा कौन ?"

"एक मंत्री इस काम के लिए नियुक्त किया जाए। वह यह कार्य देश के व्यापारियों द्वारा करेगा। उनको दश ताम्र प्रति मन लाभ दिया जाए।"

"और यज्ञ कैसे होगा ?"

"यह तो तब बताया जाएगा जब दुर्भिक्ष की स्थिति उत्पन्न होगी। परंतु उससे पहले हमें पाँच लाख मन अनाज जमा कर लेना चाहिए।

"इसके लिए मैं पंद्रह से बीस लाख रजत कोष से निकालने की स्वीकृति देता हूँ।"

महामंत्री समझ रहा था कि कवि महोदय व्यापार की बात नहीं जानता। इस कारण वह इसमें भूल कर रहा है और दुर्भिक्ष-काल के पूर्व ही इस सब अनाज में घुन लग जाएगा और सब मिट्टी हो जाएगा।

परंतु मातृगुप्त ने कहा, "उस मंत्री को यज्ञ की विधि वर्णन कर दूँगा और वह इसे सफलतापूर्वक कर सकेगा।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

:: 7 ::

रात को भोजन के समय पुनः मृणालिनी और उसके साथ दो वही सेविकाएँ उपस्थित थीं जो मध्याह्न के समय थीं। वे भोजनालय में पहले ही पहुँची हुई थीं। मृणालिनी तो शयनागर में वस्त्रादि ठीक कर रही थी और महाराज के विश्राम-गृह में उपस्थित थी, परंतु अन्य दोनों स्त्रियाँ भोजनालय में ही आईं। दिन के समय में वे अपने कक्ष में बैठी अपने अध्यक्ष से अपने कार्य की रूपरेखा समझती रही थीं।

भोजनालय को जाते हुए मातृगुप्त ने मृणालिनी से कहा, ''देवी, तुम्हारी माताजी तुम्हारे वियोग में उदास हो रही होंगी।''

''इसमें कोई कारण प्रतीत नहीं होता। वह तो सब स्त्रियों की भाँति भूमि मात्र हैं। भूमि अन्न-अनाज कट जाने पर उदास नहीं होती। इसी प्रकार कोई भी माता अपनी लड़की को ससुराल जाते देख प्रसन्नता ही अनुभव करती है। ऐसा ही मेरी माँ को अनुभव करना चाहिए।''

''परंतु क्या तुम ससुराल आई हो।''

''महाराज, मैं ऐसा ही अनुभव करती हूँ।''

''ओह! यह तुम किस आधार पर समझती हो?''

मृणालिनी ने अभी उत्तर नहीं दिया था कि मातृगुप्त भोजनालय में जा पहुँचा। वहाँ मध्याह्न वाली दोनों स्त्रियों को खड़ा देख पूछने लगा, ''तो तुम यहाँ पहले ही पहुँची हुई हो?''

''हाँ महाराज।'' उसी स्त्री ने उत्तर दिया जिसने दिन के समय बात की थी और चँवर झुलाया था।

''और दिन भर क्या करती रहीं?''

''हमारा काम नियत हुआ है कि हमें आपकी भोजनालय में रक्षा करनी है।''

''सत्य? भला कैसे और किससे रक्षा करोगी?''

''हमें आज्ञा हुई है कि आपके लिए तैयार किए जाने वाले प्रत्येक व्यंजन को हम खाकर देखें जिससे आपको यदि विष दिया जा रहा हो तो हम आपसे पहले मृत्यु को प्राप्त हों और आपको सचेत और सतर्क कर सकें।''

''आप जैसी कोमलांगी महिलाओं को बहुत भयानक काम सौंपा जा रहा है।''

''हम इसे भयानक नहीं मानतीं। इसे अपने देश के लिए महाकल्याणकारी कार्य मानती हैं।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो अब तुमने भोजन की परीक्षा कर ली है ?"

"हाँ महाराज। हम आपके आने से पूर्व सब व्यंजन चख-चखकर पेट भर चुकी है।"

"और यदि इस समय कोई भोजन में गड़बड़ कर दे तो ?"

"हमारी दो बहनें इस समय भी भीतर रसोईघर में विद्यमान हैं और सब कुछ देख रही हैं।"

"यहाँ की सब बातें विचित्र हैं," मातृगुप्त के मुख से निकल गया।

"परंतु महाराज, इसमें कुछ भी वैचित्र्य नहीं है। पुरुष गुप्तचरों से स्त्री गुप्तचर अधिक विश्वस्त और योग्य मानी गई हैं।"

"दूसरे देशों में इससे उल्टा माना जाता है।"

"वहाँ उन स्त्रियों के संबंध में हो सकता है जिनकी आयु अभी कम है और उनकी वासना-तृप्ति अभी नहीं हुई। हम उस अवस्था को पार कर चुकी हैं।

"वहाँ स्त्रियाँ वासनाभिभूत पुरुषों से बरगलाई जाती हैं। यहाँ हम वासना से ऊपर उठ चुकी हैं। हम जैसा निष्ठावान पुरुष मिलना कठिन है।"

मातृगुप्त को इस सच्चाई का विश्वास हो रहा था। इस पर भी प्रश्न यह था कि कौन किस समय वासना की आयु पार करता है ?

इस समय वह चौकी पर बैठा तो आज एक अन्य स्त्री, जो मृणालिनी से आयु और बल में भी अधिक प्रतीत होती थी, भोजन ले आई। वह एक अन्य थाल मृणालिनी के लिए भी ले आई।

इस पर मातृगुप्त की हँसी निकल गई। उसने मृणालिनी से पूछा, "तो तुम्हें इस काम से छुट्टी मिल गई है ?"

"हाँ महाराज, आज मेरी पदोन्नति हो गई है।"

"अब तुम्हारा क्या पद हो गया है ?"

"वैसे तो मैं सेविका ही हूँ, परंतु सेविकाओं में भी ऊँच-नीच होता है।"

"तो तुम प्रातः से इस समय उन्नत पद पर नियुक्त हो ?"

"महाराज, यह आपकी कृपा का फल है।"

"भला हमने क्या कृपा की है तुम पर ?"

"आपने मुझे अपनी सेवा का अवसर दिया है।"

"यह तो कोई भी होता, उसे मिल जाता।"

"सत्य ? ऐसा अन्य प्रबंधकों का विचार नहीं है। वे इसे मेरे सौभाग्य का ही सूचक मानते हैं।"

"वे मानने वाले कौन हैं ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातृगुप्त ने भोजन करना आरम्भ कर दिया था। यह तो वह भी अनुभव कर रहा था कि उसके भोजन में मध्याह्न के समय भी रस था और अब भी भोजन में अधिक रस आ रहा है। परंतु वह विचार कर रहा था कि उस स्वाद का इस कुमारी की पदोन्नति से क्या संबंध हो सकता है ? जब समझ नहीं सका तो उसने बात बदल उस स्त्री से पूछना आरम्भ कर दिया जो कह रही थी वह महाराज का भोजन चखकर देख चुकी है।

मातृगुप्त ने पूछा, ''भगिनी, तुम्हारा क्या नाम है ?''

''सौराष्ट्री, महराज बहुत कृपालु हैं जो मेरी भी पदोन्नति कर रहे हैं।''

''परंतु मैं न तो आप सबको नियुक्त करने वाला हूँ और न ही आपमें से किसी की पदोन्नति करने वाला।''

''वह तो महाराज हो गई। जब आपने मुझे भगिनी कहा है तो पदोन्नति ही की है। अब मैं ऐसा अनुभव करने लगी हूँ कि मैं अपने भाई की रक्षा कर रही हूँ।''

''ओह ! यह बात है। तब हम प्रसन्न हैं। मैंने यही समझ बहन माना है कि तुम कदाचित् राजा से अधिक भाई के लिए यह भय मोल लोगी।''

''ठीक है, महाराज, आपका विचार ठीक है। भाई-बहन का सम्बंध स्वामी-सेवक से श्रेष्ठ ही है।''

मातृगुप्त यह विचार कर रहा था कि मृणालिनी ठीक कह रही थी कि उसकी माँ उसे ससुराल में समझती हुई संतुष्ट है। इस पर उसे महामंत्री का कथन स्मरण आ गया कि उसे कश्मीर में बुलाया ही इस कारण गया है कि वह वहाँ का राज्य-परिवार चलाए। वे सब उससे आशा करते हैं कि वह राज्य को एक राजकुमार दे।

इससे वह गंभीर विचार में निमग्न हो गया। वह विचार करने लगा था कि उसने अविवाहित जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया हुआ है। तो क्या वह अपने संकल्प का त्याग कर दे! साथ ही वह यह विचार करता था कि इस कार्य के लिए उन्हें किसी युवक को नियुक्त करना चाहिए था। एक पचास वर्ष से अधिक आयु के व्यक्ति को चार सौ योजन से बुलाया गया है और फिर इतना बड़ा साम्राज्य उसके भोग के लिए दिया गया है इस सामान्य से कार्य के लिए। इससे वह अपनी महत्ता का अनुमान लगा अपने में गौरव अनुभव करने लगा था।

यह विचार एक क्षण तक ही रहा। तुरंत ही उसने इसे मिथ्या अभिमान समझ मन से निकाल दिया। अब वह दूसरे ढंग पर विचार करने लगा था। वह समझता था कि पुत्र-कलत्र इस संसार के मिथ्या बंधन हैं जिनसे मोक्ष मार्ग में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाधा पड़ती है। इससे उसका मन कड़ा हो गया। उसके मुख की मुद्रा भी कठोर हो गई। उसके मुख पर बदलते भावों को मृणालिनी देख रही थी। उसने कहा, ''महाराज, इस समय राज्य संबंधी किसी समस्या पर चिंता कर रहे प्रतीत होते हैं ?''

''हाँ, देवी ठीक समझी हैं।''

''तो महाराज, क्या आप राज्यकार्य को इस भोजन के समय भी मन से नहीं निकाल सकते ?''

''निकाल रखा था, परंतु मैं अनुभव कर रहा हूँ कि आप सबकी नियुक्ति मुझे यह स्मरण करा रही है कि मेरी अपने पद पर चौबीस घंटे की नियुक्ति है। अन्यथा ये सब सुनहरी श्रृंखलाएँ न होतीं। इस परिणाम से भयभीत होने के कारण ही तो मैं गृहस्थ बंधन और राजसी बंधनों से मुक्त रह रहा था। मुझे तो कश्मीर आने का शोक लगने लगा है।''

''परंतु महाराज, क्या आप स्वेच्छा से यहाँ आए हैं ? यहाँ की प्रजा को तो यह बताया गया है कि आपको भारतसम्राट महाराज विक्रम ने यहाँ भेजा है।''

''परंतु मैं उनका सेवक नहीं था जो उनकी आज्ञा पर इतनी दूर की यात्रा पर चला आता अथवा अपने को इन स्वर्ण-श्रृंखलाओं में बँध जाने के लिए तैयार हो जाता।''

''सेवक तो आप नहीं हैं, यह हम सब जानती हैं। आप महाराज के परम मित्र हैं, यह भी सर्वविदित है। साथ ही हम यह भी जानती हैं कि स्वामी सेवक भाव से अन्य भी कई भाव हैं और उनमें से प्राय: स्वामी-सेवक भाव से अधिक सुदृढ़ हैं।

''इसीलिए तो जब बहन सौराष्ट्री को आपने भगिनी कहा तो वह अपनी पदोन्नति मानने लगी है। मेरी पदोन्नति इसी कारण हुई है। यही बात हम आप में और महाराज विक्रमजी में मानते हैं। भारत जैसे देश के सम्राट का मित्र होना उसके सेवक होने से अति श्रेष्ठ पद है। आपकी महिमा तो इसी में है कि आप उनके मित्र हैं।

''और महाराज, मित्र के नाते ही तो आप यह सब सहन कर रहे हैं, एक मित्र का प्रिय कार्य कर रहे हैं।''

''तो कश्मीर की ललनाओं से घिर जाना मित्र का कार्य है ?''

''परंतु महाराज, यह भी तो किसी अन्य कार्य में साधन मात्र है। यह स्वत: तो कुछ भी नहीं।''

भोजन समाप्त हो गया। मातृगुप्त समझ रहा था कि यह लड़की सत्य ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
महामंत्री से अधिक युक्तियुक्त बात करती है। वह उठा तो मृणालिनी भी उठ खड़ी हुई और जब दोनों भोजन के हाथ धोने भोजनालय में इस कार्य के लिए नियत स्थान पर पहुँचे तो मृणालिनी ने कहा, ''महाराज, भारत जैसे महान और विशाल देश के सम्राट का मित्र होना क्या आप सामान्य बात मानते हैं ?''

मातृगुप्त को बात समझ आ रही थी। उसने कहा, ''हाँ, देवी की बात विचारणीय है।''

''तो विचार करिए। हम इस देश के निवासियों ने तो विचार कर ही आपको महाराज पद देना स्वीकार किया है। हम किसी सेना से विजित प्रजा नहीं, स्वेच्छा से यज्ञवेदी पर बलि होने वाले हैं।''

हाथ धो जब मातृगुप्त अपने शयनागार की ओर चल पड़ा तो मृणालिनी तथा सौराष्ट्री इत्यादि उसके पीछे-पीछे साथ थीं। शयनागार के द्वार पर पहुँच मातृगुप्त ने प्रश्न-भरी दृष्टि से अपने साथ आ रही स्त्रियों की ओर देखा। इस पर सौराष्ट्री इत्यादि ने तो झुककर प्रणाम किया और लौट गईं, परंतु मृणालिनी बोली, ''महाराज, चलिए, आपके विश्राम का प्रबंध देख लूँ।''

''यह हम देख लेंगे। अपने बाल्यकाल से हम इसे स्वयं देखते आ रहे हैं।''

''परंतु महाराज, आप बाल्यकाल से तो कश्मीर नरेश नहीं थे। मैं मातृविहीन, राजपथ पर दो-दो ताम्र पर कविता सुनाने वाले कवि के विश्राम की सुख-सुविधा देखने नहीं जा रही, मैं तो महाराज विक्रमादित्य के मित्र महाराज मातृगुप्त कश्मीर देश के शिरोमणि नरेश की सुख-सुविधा देखने को नियुक्त की गई हूँ।''

मातृगुप्त इस कुमारी के सतर्क और अविलम्ब उत्तरों पर प्रसन्नता अनुभव कर रहा था। उसने कहा, ''देवी के इस प्रकार सतर्क उत्तरों से हम देवी की शिक्षिका मातंगी देवी के दर्शनों की अभिलाषा करने लगे हैं।''

''किसी समय मैं आपकी इच्छा उनसे कहूँगी और वह महाराज के दर्शनों के लिए भी आ सकती हैं।''

दोनों पुनः विश्राम-गृह में जा पहुँचे। शयन-कक्ष के बाहर बैठक और स्वाध्याय कक्ष थे। वहीं मातृगुप्त की वीणा रखी थी। वह उसके समीप जा बैठा। मृणालिनी महाराज की पीठ के पीछे खड़ी रही। मातृगुप्त वीणा को उठाकर उसके तारों को हिलाकर उनके स्वर में होने की परीक्षा करते हुए बोले, ''ठीक है। देवी अब हमारे विश्राम का प्रबंध देख सकती हैं।''

'''मैं देख रही थी कि आपकी वीणा स्वर में है अथवा नहीं।''

''यह हम देख लेंगे।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"परंतु महाराज, मैंने इसको स्वर में किया है। यह ठीक नहीं थी क्या?"

"ओह! तो यह भी तुम्हारे कर्त्तव्यों में है?"

"यहाँ का सब कार्य मेरे कर्त्तव्यों में है।"

कवि अब ध्यान से वीणा के तारों को हिला-हिलाकर उनके स्वर संधान को देखने लगा। कुछ देर तक वीणा की परीक्षा करने के उपरांत वह बोला, "हाँ, ठीक है। परंतु तुममें यह भी गुण है, यह जानकर हमें बहुत प्रसन्नता हुई है।"

"महाराज, मुझमें अन्य भी गुण हैं। मैं इसे बजा भी सकती हूँ।"

"ओह!" मातृगुप्त ने वीणा पुन: भूमि पर रख दी और कहा, "तब तो हम तुम्हें बजाते हुए सुनने की इच्छा करने लगे हैं।"

"हाँ, यदि आज्ञा हो, बजाकर सुनाऊँ?"

"जब देवी ने इसे स्वर किया है तो इसे बजाने का अधिकार भी प्राप्त कर लिया है।"

मृणालिनी मातृगुप्त के सामने बैठ वीणा को उठा घुटनों पर रख बजाने लगी। मातृगुप्त के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा जब वह उसकी ही एक प्रिय धुन बजने लगी। धुन थी—

स-नि-ध-घ-नि-स-ग-सं-गं म-गं स

"खूब! बहुत खूब!" मातृगुप्त ने कहा, "बहुत सुन्दर!" मृणालिनी बजा रही थी—

स-निं-धं-म-गं-स गं-म, धं-नीं-स स-ग-स

इस प्रकार जब वीणा बजने लगी तो मृणालिनी की लंबी-लंबी और लचकीली उँगलियाँ अपने कौशल का प्रदर्शन करने लगीं।

आधी घड़ी-भर विभिन्न संयोगों को बजाकर मृणालिनी ने पूछा, "महाराज! कुछ गाकर भी सुनाऊँ?"

"हाँ। अवश्य।"

मृणालिनी न गा दिया—

महाकाल।
है चला जा रहा महाकाल।
जीवन का विकराल काल॥...

"तुम तो मेरी ही रचना को गाने लगी हो?"

"मैं आपकी हृदय-तंत्री को बजाने का यत्न कर रही हूँ।"

"तो बजाओ।"

मृणालिनी आगे गा रही थी—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टिक टिक करता चला जा रहा इस जीवन का विकराल काल।
है चला जा रहा महाकाल।...

कवि को अपनी ही रचना अपने से अधिक भावपूर्ण स्वरों में गाते सुन अत्यंत उल्लास अनुभव हो रहा था।

एक घड़ी भर मृणालिनी राग का स्वरालाप तथा तानादि सुनाती रही और फिर मुस्कराती हुई वीणा को कवि के सम्मुख रखकर बोली, "अब आप अपना अभ्यास करिए और मैं अपना काम देखती हूँ।"

"क्या काम देखती हो?"

"आपकी सुख-सुविधा देखने के लिए नियुक्त हुई हूँ।"

कवि देख रहा था कि जीवन का यह भी एक पक्ष है। इस पक्ष से वह अभी तक सर्वथा वंचित था। वह अनुभव कर रहा था कि जीवन का यह पक्ष भी तिरस्कार योग्य नहीं है।

अब उसने वीणा अपने हाथ में लेकर स्वयं बजाना और साथ ही गाना आरंभ कर दिया। आज वह अनुभव कर रहा था कि उसके हृदय की बात समझने वाला कोई उसके सम्मुख बैठा है। इस कारण इसकी गाने में रुचि अत्यधिक हो गई थी। उसने उसी राग में जिसे मृणालिनी बजा रही थी, गा दिया। लय द्रुत थी। वह गा रहा था—

चल चल रे बादल चलता चल।
देश-देश के दृश्यों को अब तू देख-देख मन भरता चल।
चल चल रे बादल चलता चल।

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम्।
आशाबंध: कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्य:पाति प्रर्णायहृदय विप्रयोगे रुणद्धि॥

चल चल रे बादल चलता चल।
पहुँच से बाहर तेरे है क्या घर विरही तेरी भाभी का।
धीरज देना उसे तनिक तुम यह काल चला चलता है चल।
चल चल रे बादल चलता चल।

गीत की लय और स्वर पर मस्त हो मृणालिनी उठी और वीणा की झंकार के साथ नाचने लगी। कवि गा रहा था।

कुमारी की नृत्य मुद्राएँ देख कवि की वीणा के स्वरों की गति द्रुत होने लगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और मृणालिनी के नृत्य में भी गति बढ़ने लगी।

कवि मुस्कराता हुआ गाता रहा—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पत्रबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः॥

संगीत की गति द्रुत हो जाने के कारण अथवा उक्त प्रशंसा को सुन मृणालिनी नाच करती-करती रुक गई और विस्मय में कवि के मुख की ओर देखने लगी।

मातृगुप्त ने पूछा, ''क्यों? देवी खड़ी हो गई हैं?''

''महाराज, आपके द्वारा की प्रशस्ति सुन विस्मय करने लगी हूँ।''

''इसमें विस्मय करने की क्या बात है?''

इस पर मृणालिनी पुनः सामने बैठ कहने लगी, ''आपका मेघदूत कश्मीर देश पर तो उड़ता हुआ आया नहीं। तब यह किसका सौंदर्य वर्णन होने लगा है? यह किसी कैलाश के स्वर्णप्रासादों में स्थित अलकापुरी की निवासिनी का है अथवा श्रीनगर की किसी निवासिनी का, यही मेरे चिंतन का विषय हो गया है।''

''इस समय तो कहने वाला श्रीनगर की रहने वाली एक मृणालीनी देवी को नृत्य करता देख रहा था। इससे ऐसा प्रतीत हुआ है कि मेघदूत का रचयिता स्वयं यहाँ आ यहाँ की शोभा का ही वर्णन कर रहा है।''

''परंतु भगवन्, उसने अभी वह कुछ भी तो देखा नहीं जिसका वर्णन हुआ है।''

''अपनी कल्पना शक्ति से उसने देखा है। उस कल्पना का आधार सुंदरी का मुख तो देखा ही है।''

''परंतु वह तो एक बहुत हो छोटा-सा अंश मात्र है उसके पूर्ण अंग-प्रत्यंग का। मुख से भी अधिक सुंदर ंग तो उसने वस्त्रों में ढाँप रखे हैं।''

''परंतु क्या सुंदरी ने तुलना की है मुख और अन्य अंगों के सौंदर्य की? मैं समझता हूँ कि उसका ज्ञान आधार रहित भी हो सकता है। वह अनुभवविहीन होने से इस विषय में क्या जानती है, कहा नहीं जा सकता।''

''तो कवि ने अलकापुरी की उस विरहिणी को देखा है और फिर उसकी तुलना अन्य स्त्री-रत्नों से की है?''

'अवश्य की होगी। न की होती तो वह यह काव्य न लिख सकता। परंतु देवी ने किस-किसको देख अपने विषय में अनुमान लगाया है?''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैंने तो अपनी माँ को यह कहते सुना है कि मेरे अति सुंदर अंग तो अन्य हैं। उसने मेरे पूर्ण शरीर को देखा है और लड़कियों की शिक्षिका होने से उसने अपने जीवन में बहुतों को देखा है, इससे उनके कथन पर विश्वास कर ही कह रही हूँ।"

"तो देवी की माता अपनी शिष्य कन्याओं के शरीरों की तुलना किया करती हैं?"

"हाँ महाराज। वह नृत्यु-संगीत सिखाती हैं और इसे सिखाने में वह समय-समय पर सीखने वालियों के शरीर का विकास देखती रहती हैं।"

"और यह वीणावादन, संगीत और नृत्य अपनी माँ से ही सीखा है?"

"हाँ महाराज। क्या इसमें कुछ त्रुटि दिखाई दी? यदि कुछ है तो वह मेरे सीखने में ही हो सकती है। वह तो इस देश की सर्वश्रेष्ठ शिक्षिका मानी जाती हैं।"

मातृगुप्त समझ गया कि एक नर्तकी की लड़की ही इतनी वाचाल और इन विषयों की ज्ञानवान हो सकती है। पहले तो वह समझा था कि वह किसी शास्त्र और अध्यात्म के ज्ञाता की लड़की है जो इस प्रकार ज्ञान की बातें कर रही है।

एकाएक मातृगुप्त ने कहा, "हम देवी का धन्यवाद करते हैं। उसने हमारी इस रात्रि का आधा प्रहर रंगीन और रसयुक्त बनाया है। हम अपने कोषाध्यक्ष को कहलवा देंगे कि वह देवी को इसके लिए पुरस्कृत करे।

"अब हमारे सोने का समय हो गया है। देवी कहाँ सोने जाएँगी?"

"मुझे आज्ञा है कि मैं आपके शयनागार में ही एक कोने में भूमि पर सो जाऊँ।"

"ओह! तो ठीक है। राजाज्ञा का पालन करना चाहिए और हम उसमें बाधक नहीं होंगे।"

इस पर मातृगुप्त बगल के आगार में गया और दिनभर के काम के वस्त्र बदल सोने योग्य वस्त्र पहन आया। इस समय तक मृणालिनी आगार की दीवार के साथ भूमि पर ही कंबल बिछाकर लेटने की तैयारी किए हुए थी।

मातृगुप्त विचार कर रहा था कि यह लड़की उससे प्रणयदान के लिए भेजी गई है और महामंत्री का विचार है कि वह भावी राजकुमार की माँ बनेगी। वह विचार करता था कि इस भूमि में बीज डालना व्यर्थ का प्रयास नहीं होगा क्या?

इसी विचार में वह पलँग पर लेटा और सो गया।

अगले दिन वह रात आधा प्रहर रहते उठा और स्नानादि में लीन हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
वह अपनी पूजा की तैयारी में भूल गया था कि उसके आगार में कोई अन्य प्राणी भी सोया हुआ था।

:: 8 ::

इस दिनचर्या के चलते हुए एक मास से ऊपर हो चुका था। मंत्रिगण जिन्हें राज्य-कार्य का पंद्रह वर्ष और इससे भी अधिक काल का अनुभव था, मातृगुप्त की राज्यकार्य में सूक्ष्म दृष्टि को देख चकित थे।

प्रात:काल पूजा के उपरांत वह प्रजागणों से मिलता था और पिछले एक मास में मंत्रिमंडल के पास एक भी ऐसी सूचना नहीं आई थी जिसमें महाराज ने किसी प्रजागण को मिथ्या आशा दिलाई हो अथवा किसी व्यक्ति के मिथ्या कथन का रहस्योद्घाटन न किया हो।

मिलने आने वालों में से अधिकांश की माँगों अथवा किसी पर आरोपों का वह ऐसे ढंग से विश्लेषण करता था कि याचक स्वत: ही लज्जित हो स्वीकार कर लेता था कि वह भूल कर रहा था और कम से कम प्रत्यक्ष रूप में संतुष्ट होकर वापस लौट जाता था।

एक वृद्धा आई और बोली, "महाराज, वृद्धावस्था में पुत्र निर्वाह योग्य देते नहीं। इससे भूखी मर रही हूँ। राज्य की ओर से सहायता की याचना करती हूँ।"

"माँ," महाराज का कहना था, "यदि तुम ठीक-ठीक कहती हो तो तुम्हारे घर के वायुमंडल में पौष्टिक पदार्थ उपस्थित प्रतीत होते हैं।"

"ऐसा तो नहीं है, महाराज। मेरे घर में भी वह वायु आती है जो पड़ोसियों के घर से आती है।"

"पर माताजी, आपके मुख का आज तो यह प्रकट करता है कि आपके शरीर में नित्य एक सेर गाय का दूध, दो छटाँक घी और आधा सेर अन्न जाता है। यदि यह घर की वायु में से प्राप्त नहीं हो रहा तो अवश्य आपका कोई संबंधी आपको देता होगा। वह कौन है?"

"परंतु महाराज, मैं तो इस समय भी क्षुधा से पीड़ित श्रीमान् के सम्मुख खड़ी याचिका कर रही हूँ।"

"देखो नागेन्द्रदेव," यह महासचिव का नाम था। वह नित्य इस समय महाराज की आज्ञाओं को अंकित कर सचिवालय में ले जाने और उस पर उचित कार्रवाई करने के लिए आया करता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातृगुप्त ने कहा, "इस बेचारी भूख से पीड़ित को अभी भोजन कराओ। हमारे राज्य में कोई भूख से पीड़ित हो, हम यह सहन नहीं कर सकते। तनिक यह देखो कि यह कितने अन्न से तृप्त हो सकती है। हम यह जानने के उपरांत इसकी याचिका पर विचार करेंगे।"

नागेन्द्रदेव ने एक प्रतिहार को उस स्त्री को भोजनालय में ले जाकर महाराज की आज्ञानुसार कार्य करने की आज्ञा दी। वह स्त्री गई तो अन्य याचकों की याचिकाओं पर विचार होने लगा। अगला याचक एक युवक था।

"क्या नाम है ?" मातृगुप्त ने पूछा।

"देवधर।"

"यह क्या चाहता है ?" मातृगुप्त ने महासचिव से पूछा। सचिव के सामने उस दिन आए याचकों की याचिकाएँ रखी थीं। उसने एक याचिका पढ़कर सुना दी। याचिका में लिखा था—

"मेरी पत्नी माला दुराचारिणी है। वह मेरे अतिरिक्त अन्य कई लोगों से सम्बंध बनाए हुए है।"

"और वे लोग क्या-क्या काम करते हैं ?" मातृगुप्त का प्रश्न था।

उत्तर देवधर ने दिया, "महाराज, उनमें एक नगर का अति धनवान सेठ है। एक राज्य का उच्चाधिकारी है। एक अन्य है जो नगर का एक रसिक युवक है। महाराज, कुछ अन्य भी हैं।"

"और उन सबसे वह क्या प्राप्त करती है ?"

"वह मुझे बताती नहीं। जब मैं पूछता हूँ तो मुस्करा देती है।"

"और तुम क्या काम करते हो ?"

"मैं जाति का ब्राह्मण और व्यवसाय से अध्यापक हूँ। नित्य वेद-पाठ और यज्ञ-हवन कराता हूँ।"

"और उसे तुम्हारे ये सब काम नहीं भाते ?"

"महाराज, उसे हवन-यज्ञ में आहुति दिए घी-सामग्री की सुगंधि सुहाती नहीं। वह इत्र और अन्य सुगंधित पदार्थों से लिपटी रहती है।"

"और आचार्य महोदय, उसे भोजनादि तुम देते हो अथवा उसके मित्र देते हैं ?"

"भोजन तो मेरे साथ लेती है, परंतु रात वह किसी अन्य के साथ व्यतीत करती है।"

"पंडितवर, तुमने उसे कभी इस अनिष्ठा के कार्य से मना नहीं किया ?"

"किया तो है, परंतु वह मानती नहीं। वह कहती है कि जो जिससे प्राप्त हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
सके उसी से तो प्राप्त किया जाएगा।''

''तो आपसे उसे कुछ प्राप्तव्य नहीं?''

''मुझसे उसे भोजन प्राप्तव्य प्रतीत होता है। वस्त्रादि भी मैं लाकर देता हूँ। मेरे गृह में रहती है। वह कहती है कि ये वस्तुएँ मुझसे प्राप्त होती हैं, इसलिए यह मुझसे प्राप्त करती है।''

''और प्रणय-सुख किसी अन्य से प्राप्त करती है?''

''हाँ, महाराज।''

''ठीक है। पंडित महोदय, अगले सप्ताह आना। तुम्हारी याचिका में कुछ छिद्र प्रतीत होते हैं। उनके अन्वेषण की आवश्यकता है।''

जब देवधर गया तो महाराज ने महासचिव नागेन्द्रदेव से कहा, ''इसकी पत्नी को बुलाओ।''

''कल यत्न करूँगा।''

''क्या मतलब?''

''महाराज, बिना दोष और स्पष्ट आरोप लगाए किसी को राज्य-न्यायालय में उपस्थित होने के आदेश नहीं दिया जा सकता।''

''उसे सूचना भेजो कि महाराज मातृगुप्त माला देवी के दर्शन की अभिलाषा करते हैं। इस कारण उन्हें प्रात: याचकों के मिलने के समय दर्शन देकर कृतार्थ करें। यदि इस निमंत्रण पर वह न आएँ तो फिर विचार करेंगे कि उसे किस प्रकार देश के नरेश के सम्मुख उपस्थित किया जाए।''

अगले दिन देवधर की पत्नी माला महाराज मातृगुप्त के सम्मुख आ उपस्थित हुई।

''क्या नाम है?'' माला के सामने आने पर महाराज ने पूछा।

''महाराज, मेरे पति मुझे माला कहते हैं।''

''और पति के अतिरिक्त भी कुछ लोग हैं जो आपको स्मरण करते हैं?''

''हाँ महाराज, मेरा नगर में परिचय तो कई लोगों से है और वे सब मुझे भिन्न-भिन्न नामों से स्मरण करते हैं।''

''उदाहरण के रूप में देवीजी को किस-किस नाम से संबोधन किया जाता है?''

''नगर के एक सेठ विश्वपति हैं। वह मुझे लक्ष्मी के नाम से संबोधित करते हैं।''

''ओह! भला यह क्यों? वह आपके वास्तविक नाम से आपको क्यों नहीं पुकारते?''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
''मेरा वास्तविक नाम तो मृणाल है। पतिदेव को माला पसंद आया है तो मेरे अन्य मित्र भी अपनी-अपनी रुचि अनुसार मेरा नाम रखते हैं।''

''तो और क्या नाम हैं आपके?''

''मेरे एक मित्र हैं शिव। संगीत में कुशल हैं। वह मुझे पार्वती के नाम से संबोधन करते हैं। एक अन्य हैं। वह राज्य में एक अधिकारयुक्त स्थान पर नियुक्त हैं। उनका नाम राम है। वह मुझे सीता कहते हैं। एक अन्य हैं जो मुझे राधा कहते हैं।''

''तो देवी, तुम इन सब महापुरुषों की पत्नी भी हो? ये सब अपने नाम वाले देवता की पत्नी का ही नाम तुम्हें देते हैं।''

नहीं महाराज, वे न तो इन नाम वाले देवता हैं और न मैं उनकी पत्नी हूँ।''

''तो ये लोग तुम्हें इन नामों से किसलिए सम्बोधन करते हैं?''

''यह उनके मन की भावना है। मैंने उनसे कभी पूछा नहीं और उन्होंने कभी बताया नहीं। वे जब मुझे इन नामों से सम्बोधित करते हैं तो मैंने उन्हें कभी मना नहीं किया। नामों के विषय में झगड़ा केवल मूर्ख ही कर सकते हैं। आरम्भ में तो कुछ अटपटा प्रतीत हुआ था, परंतु पीछे स्वभाव हो जाने से कभी अप्रिय प्रतीत नहीं हुआ।''

''परंतु तुम्हारे पति तो यह कहते हैं कि तुम उनकी अनिष्ठावान पत्नी हो?''

''वह ईर्ष्यालु जीव व्यर्थ में मेरे विषय में चिंता करता रहता है। मैं उसकी ईर्ष्या की चिंता नहीं करती।''

''परंतु वह तुम्हारा विवाहित पति है।''

''पर महाराज, पति-पत्नी के कर्त्तव्यों में विकृति न आते हुए कोई अपने मनोरंजन का साधन क्यों नहीं बटोर सकता?''

''पंडित देवधर मेरे विवाहित पति का नाम है। व्याकरणाचार्य हैं और विद्यार्थियों को व्याकरण पढ़ाते-पढ़ाते जड़बुद्धि हो रहे प्रतीत होते हैं।

''परंतु देवी, कितना काल व्यतीत हुआ है विवाह हुए?''

''महाराज, दस वर्ष से ऊपर हो गए हैं।''

''कोई संतान नहीं हुई?''

''नहीं, महाराज।''

''इसमें क्या कारण समझती हो?''

''कारण सामान्य ही है। जब कोई पुरुष पुत्र-कर्म करे ही नहीं तो पुत्र हो कैसे?''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो क्या वह असमर्थ है इस कार्य के लिए?"

"यह मैं नहीं बता सकती। परंतु आज आठ वर्ष हो गए हैं जब से उसने मुझे छुआ नहीं।"

मातृगुप्त इस समस्या का कारण समझने का यत्न करने लगा। उसने पूछा, "और तुम्हारा यह सामाजिक जीवन, जिसमें विश्वपति इत्यादि देवता तुम्हारे जीवन में आए हैं, कब से आरंभ हुआ है?"

सामने खड़ी मृणाल ने आँखें मूँद कुछ देर तक विचार किया और कहा, "जहाँ तक मुझे स्मरण है, सेठ विश्वपति मेरे सबसे पुराने मित्र हैं। वह एक दिन मेरे पास आए और बोले, 'देवी, मैं तुमसे परिचय बढ़ाना चाहता हूँ।'

"मैंने पूछा, "किस उद्देश्य से?"

"उन्होंने कहा, 'मनोरंजन के विचार से। मुझे तुम्हारी रूप-राशि बहुत पसंद है। तुम्हें ऐसे ही देखकर तुष्टि अनुभव करता हूँ जैसे कोई किसी मंदिर में देवी की सुंदर मूर्ति देख करता है।

"मैंने कहा, यदि इस दृष्टि से देखना चाहते हैं तो सामने बैठ जाइए। मुझे इसमें क्या आपत्ति हो सकती है। पंडित देवधर उस समय वहाँ उपस्थित थे।

"हम दोनों परस्पर वार्तालाप करते रहे। एक घंटा भर सेठ विश्वपति बैठे रहे और जाने से पूर्व पूछने लगे, 'देवी, बहुत-बहुत धन्यवाद। परंतु मेरी तृप्ति नहीं हुई। मैं फिर भी आ सकता हूँ क्या?'

"मैंने उनके आने में आपत्ति नहीं की। जहाँ तक स्मरण है, इसको नौ वर्ष हो चुके हैं। यह सेठ सप्ताह में तीन-चार दिन आते हैं और मेरे बैठकघर में बैठ मेरे दर्शन तथा कभी वार्तालाप करते रहते हैं। अब तो वैसे ही अन्य लोग भी आने लगे हैं। कभी-कभी तो ये सब एक ही समय आ जाते हैं और भिन्न-भिन्न विषयों पर चर्चा भी करते हैं।

"इनके आने से मेरे पतिदेव रुष्ट रहने लगे हैं और वह मेरा त्याग कर चुके हैं।"

"परंतु देवी, उसने यह आरोप लगाया है कि तुम्हारा इन आने वालों से पति-पत्नी का सम्बंध है।"

"यह मिथ्या आरोप है, महाराज। परंतु मेरा निवेदन है कि यदि यह सत्य भी हो तो क्या यह राजकीय नियम का विषय है?"

मातृगुप्त इस प्रश्न पर मौन हो गया। तदनन्तर कुछ विचारकर बोला, "तुम्हारे इस प्रकार के व्यवहार से समाज को तुम्हारे आचरण पर संदेह हो सकता है और इससे तुम्हारे पति की निन्दा होने लगी प्रतीत होती है। यह आपत्तिजनक है।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
"तो महाराज, वह मकान छोड़कर पृथक् रहने के लिए कोई मकान ले लें।"

"और तुम क्यों न पृथक् मकान ले लो?"

"इसलिए कि यह मकान मेरी माँ ने मुझे दिया है। वह मेरे मकान में रहते हैं। मैं उनके मकान में नहीं रहती।"

महाराज ने आज्ञा दी कि याचिका करने वाले देवधर को कह दिया जाए कि वह यदि चाहे तो अपनी पत्नी को छोड़ सकता है। राजनियम में कोई ऐसा नियम नहीं कि स्वेच्छा से मित्र बनाने वालों पर प्रतिबंध लगाए।

इस प्रकार नित्य विवादास्पद विषय आते थे और महाराज उनको धैर्य से सुनते और राजनियम तथा प्रजागण की स्वतंत्रता पर निर्णय देते। यह देख मंत्रिगण और प्रजा भी अति प्रसन्न प्रतीत होते थे।

महाराज देश-भ्रमण के लिए गए और एक मास के भ्रमण के उपरांत राजप्रासाद में आए तो सदा की भाँति मृणालिनी को द्वार पर स्वागत के लिए मुस्कराते हुए खड़ा देख मातृगुप्त ने पूछा, "तो देवी अभी तक यहीं नियुक्त हैं?"

"हाँ महाराज।"

"तो तुम्हारी पदोन्नति नहीं हुई?"

"नहीं, महाराज।"

"किसलिए?"

"इस कारण कि जिस पद पर महामंत्री ने नियुक्त किया था उससे ऊँचा पद देना महामंत्री के अधिकार में नहीं।"

"तो किसके अधिकार में है?"

"महामंत्री से ऊपर तो महाराज आप ही हैं और मैं समझती हूँ कि यह आपके ही अधिकार में है।"

"परंतु हम तो तुम्हें सब प्रकार से अधिकार दे चुके हैं। हम नहीं जानते कि किस प्रकार और अधिक अधिकार दें।"

महाराज मातृगुप्त और मृणालिनी महाराज के निजी बैठकघर में पहुँच गए थे और दोनों बैठकघर के मध्य में खड़े वार्तालाप कर रहे थे।

"महाराज," मृणालिनी ने आदरयुक्त मुद्रा में खड़े-खड़े कहा, "महामंत्री कहते थे कि आगे मेरी पदोन्नति तो श्रीमान ही कर सकते हैं। महाराज, यह अब आप ही उनसे पूछिए कि किस प्रकार कर सकते हैं। मैं तो पूछ नहीं सकी और उन्होंने बताया नहीं।"

"अच्छी बात है, उनसे पता करेंगे। हम समझते हैं कि सबको उन्नति करनी चाहिए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो महाराज, पता करिए। मैं भी अपनी पदोन्नति की उत्कृष्ट इच्छा करती हूँ।"

:: 9 ::

रात के भोजनोपरांत सदा की भाँति जब मातृगुप्त वीणा बजाने लगा तो मृणालिनी भी उसके सम्मुख आकर सुनने लगी। कवि गाने लगा तो भी मृणालिनी ने न तो वीणा बजाने की इच्छा प्रकट की और न ही गाने की। वह मंत्रमुग्ध की भाँति चित्रवत् बैठी रही।

कवि गा रहा था—

प्रियमाचरितं लते त्वया मे गमनेऽस्याः क्षणाविध्नमाचरन्त्या।
यदियं पुनरप्यपाङ्गनेत्रा परिवृत्तार्धमुखी मया हि दृष्टा॥

"ओह!" मृणालिनी के मुख से अनायास निकल गा।

मातृगुप्त उसको सुन नहीं रहा था। वह अपने काव्य-रस में डूबा हुआ गा रहा था। वह कहने लगा—

रे वीणे! मधुर बजो ये रस के लोभी
घुमड़-घुमड़ कर सुनने तुमको आते हैं।
मुस्कान मधुर, प्रेममय दृष्टि, अधर बिम्ब
आ-आकर अपने को दिखलाते हैं॥
रे वीणे!····

अकस्मात् मृणालिनी के मुख से भी निकल गया। यह स्वर सहित ही था और वह कवि का साथ दे रही थी। कवि गाता गया—

मधुर बजो ये रस के लोभी
घुमड़-घुमड़ कर सुनने तुमको आते हैं।

पुनः मृणालिनी ने स्वर पूर्ति कर दी—रे वीणे!····

आज भी मृणालिनी उठकर नृत्य करने लगी और उसके नृत्य के साथ कवि गा रहा था—

मुस्कान मधुर, प्रेममय दृष्टि, अधर बिम्ब
आ-आकर अपने को दिखलाते हैं।

दो मास के उपरांत आज फिर वीणा की गति तीव्र हो उठी और मृणालिनी के चंचल अंग-प्रत्यंग संगीत के साथ थिरकने लगे।

आज फिर नृत्य के उपरांत उसने सामने बैठते हुए कहा, "महाराज, बस यही देखा है आपने?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
"तो क्या यह पर्याप्त नहीं?"

"महाराज, यह तो कुछ नहीं। इससे बहुत अधिक तो हृदय में है।"

परंतु वह तो दिखाई नहीं देता।"

"परंतु हृदयस्थल को तो आपने देखा ही नहीं। तब वह दिखाई कैसे दे?"

"परंतु कहाँ है वह स्थल?"

"है तो यहाँ ही। आज्ञा हो तो दिखाऊँ?"

"कुछ सुंदर और श्रेष्ठ है तो दिखा दो।"

मृणालिनी ने अँगिया के बंद खोल दिए और वक्षस्थल उभारकर दिखा दिया। छोटे-छोटे गोल स्तन थे और उन पर छोटे-छोटे स्वर्ण कमल उलटकर रखे प्रतीत हुए, जिनकी मृणाल बाहर को थी। सत्य ही अति सुंदर दृश्य था और मातृगुप्त स्तब्ध हुआ देखता रह गया । दोनों स्तनों के बीचोंबीच एक स्थान पर कुछ धक-धक करता हुआ धड़क रहा था। जब मातृगुप्त मंत्र-मुग्ध की भाँति उसके लुभायमान वक्षस्थल को देख रहा था तो मृणालिनी ने मुस्कराते हुए पूछ लिया, "क्या देखा है महाराज?"

"मातृ शक्ति के उभर रहे भंडार हैं।"

"हाँ महाराज, ये अपना रस पान करने वाले की प्रतीक्षा कर रहे हैं। परंतु महाराज, इनके बीच में यह धक-धक कर कुछ अपना ही नाद बजा रहा है।"

"हाँ, वह भी देख रहा हूँ।"

"परंतु यह देखने का विषय नहीं। यह तो सुनने का विषय है। यह कुछ कह रहा है। तनिक कान लगाकर सुनिए।"

मातृगुप्त हँस पड़ा और बोला, "अच्छा, हमारे समीप आओ तो हम सुनने का यत्न करते हैं।"

उस रात मृणालिनी की पदोन्नति हो गई। महाराज मातृगुप्त ने उसे भूमि से उठाकर अपने पलँग पर बिठा दिया। इसके उपरांत उसे स्थायी रूप से वहाँ स्थान मिल गया।

यह तो कुछ दिन के उपरांत ही मृणालिनी ने कहा, "आप अति दयालु हैं।"

"सत्य? किस पर दया की है हमने?"

"एक क्षुद्र जीव मृणालिनी पर। आपकी दया से प्लावित उसे तो इतने दिन तक सुध ही नहीं रही कि वह अपनी अवस्था का अनुभव भी कर सके। आज ही समय पा रही हूँ ओर कह रही हूँ कि सत्य ही आप दया के भंडार हैं। आपके दयाभाव में मैं पूर्णतया निमग्न हो गई हूँ। मैं आपकी अत्यंत आभारी हूँ।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हाँ। हमने मातंगीदेवी की लड़की से विवाह कर लिया है। विवाह तो गंधर्व ही था; इस पर भी उसकी सूचना माताजी को देनी ही चाहिए थी।''

''तो महाराज, आज्ञा हो तो आज मध्याह्न के समय उन्हें बुलाकर सूचित कर दूँ।''

''हाँ, बुला लो। हम उन्हें इतना सुंदर, सुकोमल, सुवासित पुष्प हमें भेंट देने के लिए धन्यवाद देंगे।''

''तब तो ठीक है। अब स्वीकृति मिल गई है कि माँ को बुला लूँ, तो बुलाऊँगी।''

जिस दिन यह पता चला कि मृणालिनी गर्भवती है उसी दिन उसके लिए पृथक् शयनागार नियुक्त हो गया। उसकी अपनी पृथक् दासियाँ नियत हो गई और उसकी महाराज से मेल-मुलाकात केवल दिन के समय होने लगी।

मातंगी अब रात के समय लड़की के पास सोने लगी। दिन के समय वह अपने शिक्षा केंद्र में लड़कियों को संगीत, नृत्य इत्यादि सिखाती थी।

मातृगुप्त जब अपनी कविताएँ रात को गाता था तो मातंगी उसके समीप बैठ उसके स्वर-विन्यास में शुद्धि करती रहती थी। मातृगुप्त समझ गया था कि मृणालिनी की गुरु एक योग्य अनुभवी नर्तकी और संगीतज्ञ है।

वह कभी स्वयं भी वीणा बजाकर महाराज के बजाने में सुधार कर देती थी। एक दिन उसने भी कवि का प्रिय गीत 'है चला जा रहा महाकाल' गाया। इस पर मातृगुप्त ने कहा, ''हमें विस्मय हो रहा है कि इस गीत की गूँज उज्जयिनी से इतनी दूर तक आ पहुँची है। एक बार मृणालिनी ने भी इसे गाया था।''

''हाँ महाराज। आज से चार-पाँच वर्ष पूर्व एक बार मृणालिनी की माँ उज्जयिनी महाकाल के दर्शन करने गई थी और वहाँ महाकाल के मंदिर में कवि को सहस्रों श्रोतागणों के बीच यह भैरवी के स्वरों में गाते सुना था। बहुत ही प्रिय और अर्थयुक्त समझ आया था।

''वहाँ से लौटकर मैंने इसे अपनी रुचि से अनेक बार गाया है। इसे मध्यरात्रि के राग मालकोंस के स्वरों में बाँधना ठीक समझा है। यह मेरी प्रायः सब शिष्याओं का प्रिय गीत है।''

''महाराज, कितना सुंदर वचन है यह!'' उसने गीत का एक पद गा दिया—

अति लुभायमान है यौवन में उन्माद भरा यह
फूल-फूल पर फुदक-फुदक कर करता रहता जीवन रसाल
है चला जा रहा महाकाल।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातृगुप्त अपनी ही कविता एक संगीतज्ञ के स्वरों में सुन मंत्रमुग्ध की भाँति स्तब्ध बैठा रह गया।

मातृगुप्त ने पूछा, "देवी, क्या इस कला के आश्रय जीवन सुगमता से चलता है?"

"महाराज, कला का मैं क्रय-विक्रय नहीं करती। मैं निःशुल्क इसकी शिक्षा पात्रों को देती हूँ।"

"और पात्र बनने के लिए कितनी योग्यता आवश्यक है?"

"ईश्वरप्रदत्त मधुर, लोचदार, कंठ-स्वर। दर्शनीय, सुंदर, सुदृढ़, परंतु लचकदार शरीर। रूप-राशि, नख-शिख सुंदर। ये सब ईश्वर की देन हैं। जिनको परमात्मा की कृपा से यह सब कुछ मिलता है उनमें मैं उसी की दी हुई कला भरने का यत्न करती हूँ। जो पात्री बुद्धि और स्मृति रखती है वह सीखकर और गुणवान बनकर किसी गुणग्राही के घर की शोभा बन जाती है। कुछ ऐसी भी बनी हैं जो नगरों के चकलों में पशुओं से विकृत मानव भावों पर छाकर ढेरों धन एकत्रित करती देखी गई हैं। यह उनके कर्मफल का परिणाम ही होता है।"

"परंतु मृणलिनी तो संगीत नृत्य-कला के अतिरिक्त भी अति विदुषी और किसी अति कुशल चित्रगुप्त की गढ़ी हुई प्रतीत होती है।"

"उसको शास्त्रीय शिक्षा भी मैंने ही दी है। मेरे पिता शास्त्र के प्रकांड विद्वान थे। वे संगीतादि कलाओं में भी अति प्रवीण थे।

"पिताजी ने एक दिन बताया था, केसर की खेती के लिए भूमि विशेष ही उपयुक्त होती है। सब स्थान पर केसर फल-फूल नहीं सकता। इस कारण केसर की पैदावार के लिए मैं भारत भर के ब्राह्मण परिवारों में घूमता रहा था और कई वर्ष की खोज के उपरांत वह मेरी माँ को पा सके थे।"

"माँ का देहांत तो मेरे बाल्यकाल में ही हो गया था। मैंने माँ को देखा नहीं, परंतु पिताजी उसके गुणानुवाद करते थकते नहीं थे।

"मैं अपने पिता की ही शिष्या हूँ—शास्त्र ज्ञान में, संगीत में और नृत्य में। बहुत परिश्रम से उन्होंने मुझे सब प्रकार से योग्य बनाया और बीस वर्ष की वयस में मेरा विवाह इसी नगर के एक विद्वान से कर दिया।

"मैं तो अपने स्वभाववश उस देवता के घर को अपनी कलाओं से अलंकृत करने लगी परंतु वह विरक्त जीव दिन-रात वीणा, मृदंग, पायल ओर नूपुरों के झंझावात से घबरा उठा और घर से भाग हिमालय के किसी कंदरा में जा छुपा। जाने से पूर्व वे मृणालिनी दे गए थे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''मैंने उनको बहुत ढूँढा, परंतु वह कहीं दिखाई नहीं दिए। तब से मैंने यह शिक्षणालय चालू किया हुआ है।

''शिक्षणालय में शिक्षा पाने के सैकड़ों प्रत्याशियों में कोई एक-आध ही मेरे जीवन के अमूल्य समय का उपयोग करने के योग्य निकलती है। मैं किसी भी छात्रा से कुछ शुल्क नहीं माँगती। इस पर भी शिष्य कृतज्ञता से सराबोर हो मेरे कुठार धन धान्य से भरते रहते हैं। मैं एक दिन भी भूखी नहीं सोई अथवा एक क्षण भी अवस्त्र नहीं रही। वस्त्र अनायास ही प्राप्त होते हैं। अपनी आवश्यकता से जब अधिक मिलते हैं तो फिर निर्धन योग्य छात्राओं को वस्त्र और अन्न देती भी हूँ।

''शिक्षणालय में संगीत नृत्य की शिक्षा बिना प्रकृति-पुरुष में भेद जाने नहीं दी जाती। यही मृणालिनी को दे सकी हूँ। मृणालिनी एक प्रतिभाशाली लड़की है। मेरे पिताजी ने इसे देखा तो कहा था कि यह मेरी माँ की प्रतिलिपि ही बन गई है। वह अपनी दोहती से बहुत स्नेह रखते थे और इसको प्रारम्भिक शिक्षा उन्होंने ही दी है।

''कुछ मास हुए, अपने देश के महामंत्री के दूत घर-घर घूम-घूमकर कश्मीर के महाराज से कश्मीर के राज्य का उत्तराधिकारी प्राप्त करने के लिए किसी उपजाऊ भूमि की खोज करते हुए मेरे शिक्षणालय में भी आए थे और मृणालिनी को देख उसे माँगने लगे। मेरा स्पष्ट उत्तर था कि लड़की अभी अल्पवयस्का है। राज्य-नियम से वह अपने माता-पिता के संरक्षण में है। इस कारण मैं उसे तब तक नहीं दूँगी जब तक इसके योग्य किसी सुपात्र को स्वयं देख और पसंद नहीं कर लेती।

जब आप इस राजप्रासाद में अतिथि के रूप में ठहरे हुए थे तो महामंत्री मेरे पास आए और मृणालिनी को माँगने लगे। मैं तो आपको पहले से ही जानती थी। आपके काव्य-रस का स्वाद ले चुकी थी। इस कारण यह जान कि आप इस देश में राज्य करने आए हैं, मैं मान गई। इस पर भी मेरा यही आग्रह था कि लड़की को स्वेच्छा से स्वीकार करने दूँ।

''आपके राज्याभिषेक से तीन दिन पूर्व मृणालिनी को यहाँ लाकर रखा गया और उसे बता दिया गया कि उससे क्या कार्य लेना है। मुझे प्रसन्नता अनुभव हुई थी, जब मुझे यह ज्ञात हुआ कि आपने लड़की से गंधर्व विवाह कर लिया है।

''ईश्वर की कृपा से अब वह गर्भ से है और राज-ज्योतिषी की गणनानुसार यह आशा की जा रही है कि मृणालिनी राज्याधिकारी राजकुमार को जन्म देगी।''

मातृगुप्त प्रसन्न था कि वह संतान का बीजारोपण किसी सुपात्र में कर सका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। मृणालिनी की माँ द्वारा बताई पारिवारिक कथा ने मृणालिनी की महिमा बहुत बढ़ा दी थी। इस कारण वह उत्सुकता से मृणालिनी के प्रसव काल की प्रतीक्षा कर रहा था।

मातृगुप्त को कश्मीर का शासन सँभाले डेढ़ वर्ष के लगभग हो चुका था। इस समय तक एक बुद्धिशील निष्काम भाव से कार्य करने वाले शासक का प्रभाव राज्य के कोने-कोने तक पहुँच गया था।

राज्य का व्यय बहुत कम हो गया था। व्यर्थ के कर्मचारियों की भरमार थी जो मंत्रियों से सम्बंध रखने के कारण राज्य-सेवा में आए हुए थे। इनकी संख्या कई सहस्र तो राजधानी में ही थी। पूरे राज्य में तो एक लाख के लगभग कर्मचारी बिना आवश्यकता के भरती किए हुए थे। मातृगुप्त ने इन सबको उपजाऊ काम पर लगाने की योजना बनाई। राज्य के धनी-मानी लोगों को व्यापार और उद्योगों में उन्नति करने के लिए उत्साहित किया गया और राज्य के फालतू कर्मचारियों को उन उद्योग-धंधों में लगा दिया गया।

एक-आध मंत्री ने इससे राज्य में विद्रोह उठ खड़ा होने की सम्भावना बताई।

मातृगुप्त का कहना था, ''दो भिन्न-भिन्न समस्याएँ हैं। एक शुद्ध आर्थिक है और दूसरी राजनीतिक। आर्थिक व्यवस्था तो यह माँग करती है कि व्यर्थ के कर्मचारी निकाल दिए जाएँ।

''राजनीतिक समस्या यह है कि इन कर्मचारियों को विद्रोह न करने दिया जाए। उसके लिए शम, दम, दान, भेद, दंड सबका प्रयोग किया जा सकता है।''

मंत्रियों को समझ आ गई। महामंत्री प्रथम मंत्री था जिसने महाराज की नीति को समझा। उसने कहा, ''महाराज ठीक कहते हैं। युद्ध अथवा विद्रोह से भयभीत हम श्वेत को काला नहीं कह सकते। विद्रोह तथा युद्ध से बचने के उपाय होने चाहिए। परंतु राज्य के व्यय पर आलसी, प्रमादी और कामचोर उत्पन्न नहीं किए जा सकते।

''हम प्रजा की रक्षा के लिए दुष्टों पर नियंत्रण रखते हैं। इसी प्रकार राज्य के धन को व्यर्थ गँवाने के स्थान पर हमें राजनीति से काम लेना चाहिए।''

अतः व्यर्थ के कर्मचारियों को निकालने की योजना बनाई गई। प्रथम प्रयास में दस सहस्र से ऊपर लोग निकाले गए और उनको व्यापारियों और उद्योगपतियों के पास भेजा गया। वहाँ उनकी परीक्षा ली गई और योग्यता के अनुसार काम और वेतन दिया गया। इन दस हजार, सरकारी वेतन पर बिना उपयोगी काम किए पलने वालों में से बहुत से तो अपने वेतन में कमी हो जाने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
घबराए। तदनन्तर काम की कठोरता पर तिलमिला उठे। इनमें से एक बड़ी संख्या में लोग निजी व्यापारियों तथा उद्योगपतियों का काम छोड़ बेकार हो राज्य के विपरीत षड्यंत्र करने लगे।

अब मातृगुप्त की नीतिमत्ता का प्रयोग हुआ। कुछ कर्मचारियों को सरकारी गुप्तचरों ने उकसाया कि वे महाराज के दरबार में उपस्थित होकर अपनी कठिनाई का वर्णन करें। अत: बेकारों ने अपना एक नेता नियुक्त किया और महाराज के पास एक याचिका दी गई। उसमें उन सब सरकारी कर्मचारियों की दुर्व्यवस्था का वर्णन किया गया जिनका निजी व्यापारियों के तथा उद्योगपतियों के यहाँ से सेवा-कार्य से निकाला गया था।

प्रात: के अल्पाहार के उपरांत महाराज के सार्वजनिक दरबार में यह याचिका उपस्थित की गई।

बेकारों के प्रवक्ता ने प्रथम कठिनाई यह बताई कि व्यापारियों ने उनको अकारण कार्य से निकाल दिया है।

महाराज ने उनसे सहानुभूति प्रकट कर पूछा, ''क्या आपको निकालते समय आप पर किसी प्रकार का दोषारोपण किया गया है ?''

''बहुत मिथ्या दोषारोपण किए गए हैं।''

''सबके विरूद्ध एक ही आरोप है अथवा भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के विषय में भिन्न-भिन्न आरोप हैं ?''

''प्रत्यक्ष में तो भिन्न-भिन्न हैं, परंतु सब मिथ्या होने से एक समान हैं।''

''यह ठीक हो सकता है कि सब मिथ्या हों। इस पर भी इनकी जाँच पृथक्-पृथक् ही हो सकती है। मिथ्यात्व भिन्न-भिन्न होने से परीक्षा एक समान नहीं हो सकती। देखो,'' महाराज ने कहा, ''क्या यह संभव नहीं कि कुछ के विषय में ही यह सत्य हो ? तुम व्यक्तिगत आरोपों का वर्णन करो।''

इस पर प्रवक्ता उलझ गया। महाराज ने कहा, ''उदाहरण के रूप में तुम अपने ही विषय को लो। तुम्हें कार्य से निकालते समय क्या आज्ञा दी गई ?''

''मुझे कहा गया कि मुझे अपना कार्य करना नहीं आता।''

''क्या काम है तुम्हारा ?''

''मैं सरकारी कार्यालय में लेखाकार था। तीस रजत प्रति मास वेतन मिलता था। जितना वेतन मिलता था उतना काम कर देता था।

''अब सेठ सोमदत्त की शाल की दुकान पर लेखाकार नियुक्त हुआ। उसने एक मास तक काम पर नियुक्त रखा और मास के अंत में बीस रजत देकर सेवा से निकाल दिया और लिख दिया कि मुझे लेखाकार का कार्य नहीं आता।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाराज ने उस याचिका करने वाले नेता को आज्ञा दी कि उसके लेखा-कार्य के ज्ञान की परीक्षा के लिए नगर के अमुक विद्वान को नियुक्त किया जाता है। यदि उसकी सम्मति यह हुई कि तुम कार्य को जानते हो और उतने वेतन पाने के अधिकारी हो तो तुम पर आरोप मिथ्या सिद्ध हो जाएगा। तब उस सेठ सोमदत्त को दंडित किया जा सकता है।

''इसी प्रकार अन्य कर्मचारियों को पृथक्-पृथक् यहाँ आकर बताना चाहिए कि वे क्या काम करते हैं और उन पर क्या दोष लगाकर सेवा से निकाला गया है।''

इस आज्ञा के उपरांत कोई भी कर्मचारी महाराज के पास याचिका लेकर नहीं आया। सब प्रतीक्षा करने लगे कि उनके नेता की योग्यता की जाँच का क्या परिणाम निकलता है।

तीन दिन के भीतर ही कर्मचारियों के नेता की परीक्षा का परिणाम निकल आया। निरीक्षक का कहना था कि वह व्यक्ति लेखाकार के कार्य से सर्वथा अनभिज्ञ है।

इस जाँच पर कर्मचारियों के नेता की याचिका अस्वीकार की गई तो अन्य उसी प्रकार की याचिका करने वालों ने अपनी-अपनी याचिकाएँ वापस ले लीं और जैसा भी काम उनको मिला, करने लगे।

इसी समय दस सहस्र अन्य कर्मचारी सरकारी कामों से निकाल दिए गए। इस प्रकार राज्य में मंत्रियों के कार्य पर लगाए अनावश्यक कर्मचारी निकाल दिए गए और राज्य में धन के अपव्यय को रोका गया।

:: 10 ::

राजा का राज्य मंत्रियों के राज्य से सदा भिन्न होता है। मंत्रियों में महामंत्री राजा का पद ग्रहण नहीं कर सकता। कारण यह कि महामंत्री और अन्य मंत्रियों के निर्वाचन और नियुक्ति में अंतर नहीं होता। अतः सब मन्त्रियों को समान पद वाला समझा जाता था। राजा की नियुक्ति दो प्रकार से होती थी। युद्ध में विजयी होने के कारण अथवा राजा का लड़का होने के आधार पर। ये दोनों आधार मानवकृत नहीं हैं। इसमें प्रजा के अतिरिक्त शक्तियाँ कार्य करती हैं। सब मंत्रियों की नियुक्ति समान ढंग से होती है। या तो मंत्रियों के परिवारों का राज्य में दबदबा अथवा उनकी अपनी प्रजा में ख्याति होती है। प्रजा में ख्याति को मंत्रियों की राज्य करने की योग्यता समझ लिया जाता है। दोनों पर्यायवाचक स्थितियाँ नहीं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणामस्वरूप मंत्रिगण अपने को परस्पर समान पद पर मानने लगते हैं। अत: एक दूसरे के अधीन होकर काम करना नहीं चाहते। इन पर कोई नियन्त्रण करने वाला होना चाहिए जो अपने अधिकार को अपने किसी नैसर्गिक गुण के कारण समझे। ऐसे व्यक्ति को आजकल नेता और प्राचीन काल में राजा माना जाता था। नेता की और राजा की राज्य करने में योग्यता न तो मंत्रिगण, न मंत्रियों के परिवार के लोग और न ही प्रजा का मतदान निश्चय कर सकता है। यह तो राज्य-कार्य ही प्रकट करता है।

राज्य-कार्य की सफलता ही निर्णायक होती है जिससे कोई व्यक्ति नेता अथवा राजा बना रह सकता है और यह सफलता मिलती है पूर्व जन्म के कर्मों के फल से अथवा ईश्वर की कृपा से। दोनों पर्यायवाचक ही हैं। ईश्वर की कृपा अकारण नहीं होती। यदि वर्तमान जन्म में कारण दिखाई न दे तो पूर्वजन्म के पुण्य-कर्म ही ईश्वर-कृपा में कारण कहे जा सकते हैं।

जब पूर्वजन्म के पुण्यकर्म विफल अर्थात् प्रारब्ध समाप्त हो जाता है तो वर्तमान जन्म के कर्म निर्णायक हो जाते हैं। इस कारण बहुत से नेता अथवा राजा अपने जीवन-काल में ही असफल सिद्ध हो पदच्युत किए जाते देखे गए हैं।

इनको पदच्युत करने में कई उपाय प्रयोग होते रहे हैं। विदेशी आक्रमण, राज्यांतर्गत विप्लव तथा विद्रोह, राज्य-पारिवारिक वैमनस्य इत्यादि। वर्तमान युग में एक अन्य उपाय ढूँढा गया है। वह है जनमत। ये सब उपाय सफल अथवा असफल नेता अथवा राजा की राज्य करने में योग्यता पर निर्भर नहीं करते, वरंच राज्य करने के अतिरिक्त गुणों पर निर्भर करते हैं। वे गुण समय और स्थिति निर्णय करती है और जो राजा तथा नेता उन गुणों को ग्रहण कर लेता है वह अपने शासनकाल को लंबा कर सकता है।

यही स्थिति मातृगुप्त के कश्मीर में राजा बन जाने के उपरांत उपस्थित हुई थी। मातृगुप्त राजा बना अपने भाग्य में इस अवसर का योग होने के कारण।

महाराज विक्रमादित्य से मातृगुप्त का परिचय बाल्यकाल से था। जब विक्रमादित्य अभी चौदह-पंद्रह वर्ष का राजकुमार मात्र था, उसके चारों ओर साहित्यिक चर्चा करने वालों का एक दल बन गया था। मातृगुप्त सड़कों पर गीत गाता हुआ भाग्याधीन उस साहित्यिक मंडली में पहुँच गया। विक्रमादित्य के राजा बन जाने पर इस मंडली के प्राय: सब सदस्य राज्यान्तर्गत किसी न किसी पद पर नियुक्त हो गए, परंतु इस कवि पर किसी की दृष्टि ही न गई और प्रौढ़ावस्था तक वह भाग्यहीन कवि पाटलिपुत्र और उज्जयिनी के राजप्रासादों में वीणा ही बजाता रहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन में समय आया जब भाग्य में राजा बनने का योग था। कश्मीर में मंत्रिगणों में परस्पर झगड़ा होने लगा और महामंत्री के सुझाव पर मंत्रिमंडल को किसी राजा की, जो मंत्रिमंडल के अधीन न हो और उन पर नियंत्रण रख सके, आवश्यकता अनुभव हुई विक्रमादित्य की महिमा की चर्चा भारत में घर-घर और राज्य-राज्य में हो रही थी। इस कारण उससे कश्मीर में राजा नियुक्त करने की माँग की गई।

महाराज विक्रमादित्य का ध्यान मातृगुप्त पर न जाता यदि रात्रि के तीसरे प्रहर मातृगुप्त किसी अंतर्प्रेरणा से अपना प्रिय गीत गा न रहा होता। जब महाराज की पटरानी ने मातृगुप्त को किसी अधिकार और लाभ के काम पर नियुक्त करने की बात कही तो किसी अन्तर्प्रेरणा से महाराज को कश्मीर में राजा की माँग स्मरण आ गई और मातृगुप्त कश्मीर भेज दिया गया।

इस नियुक्ति में किसी प्रकार का प्रत्यक्ष कारण तो दिखाई देता नहीं था। यह पूर्व जन्म के कर्मफल अर्थात् प्रारब्ध के कारण ही कहा जा सकता है।

परंतु जब मातृगुप्त राजा बन गया तो वह एक बुद्धिशील व्यक्ति की भाँति विचार करने लगा कि उसके जीवन में यह कायापलट किस कारण हुई? वह समझ गया था कि उसने पूर्वजन्म में अवश्य राजपद पाने योग्य कुछ कर्म किए होंगे। कोई घटना अकारण नहीं होती इस सृष्टि में, यही नियम है। सर्वत्र कारण-कार्य का संबंध अनिवार्य रूप में बना हुआ है।

परन्तु जब वह राजगद्दी पर अभिषिक्त किया जा चुका तो राजप्रासाद में अपने को स्त्रियों से घिरा हुआ पाकर समझ गया कि यह सब कुछ उसके इसी जन्म में किए कर्म का फल तो हो नहीं सकता। अवश्य उसके भाग्य में ऐसा बदा था तभी तो वह अनायास अथवा बिना इच्छा के राजा बन गया है। इतना विचारकर वह यह भी अनुमान लगाने लगा था कि क्या यह सौभाग्य उसके पूर्ण जीवन तक बना रहेगा अथवा जीवनान्त से पहले ही समाप्त हो जाएगा। इस विषय में कुछ न जान सकने के कारण उसने निश्चय किया कि वह बलपूर्वक इस सौभाग्य को पकड़े नहीं रहेगा। न ही वह इस जन्म में कुछ ऐसा कार्य करेगा जिससे यह योग समय से पूर्व समाप्त हो जाए। इस कारण संयम का जीवन व्यतीत करता हुआ अपनी आवश्यकताओं से अधिक अपने पास न रखते हुए वह बिना किसी स्वार्थसिद्धि के राज्य-कार्य करने लगा।

जब उसे कहा गया कि कश्मीर राज्य उससे एक राजकुमार उत्पन्न करने की अभिलाषा रखता है तो उसने इस दिशा में भी यत्न किया। समय पाकर राज्य का उत्तराधिकारी भी उत्पन्न हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राजकुमार का नाम मारुति रखा गया। यह कुमार अपनी रानी माँ की देख-रेख में बड़ा होने लगा। मातृगुप्त के मन में अब यह आया कि उसने अपने भाग्य में यह सब वैभव समझ इसका भोग किया है, तो क्या यह ठीक नहीं होगा कि इस भरे-पूरे मेले को स्वेच्छा से त्याग दे? इस समय उसकी आयु पचपन वर्ष की थी। वह अनुभव करता था कि उसकी यह आयु वानप्रस्थ लेने की है। अत: एक दिन मंत्रिमंडल की बैठक में उसने राज्य के भविष्य के विषय में चर्चा चला दी। उसने मंत्रिमंडल से पूछा, "मैं इस समय पचपन वर्ष की आयु का हो गया हूँ और वर्णाश्रम के विधानानुसार मुझे इस समय वन में किसी आश्रम में जाकर रहना चाहिए।

"मुझे महाराज विक्रमादित्य ने एक कार्य सम्पन्न करने के लिए भेजा था। मैं समझता हूँ कि मैंने वह कार्य सम्पन्न कर दिया है। आप लोगों को मिल-जुलकर कार्य की विधि मैंने सिखा दी है। राज्य का कोष और अन्न-भंडार भरे हुए हैं। अब मंत्रियों को इस दिशा में राज्य में कुछ भी कठिनाई नहीं होनी चाहिए और आप अब राजकुमार मारुति के नाम पर राज्य कर सकते हैं।"

"और आप?" महामंत्री ने पूछा।

"मैं हरिद्वार अथवा काशी में जाकर ज्ञानार्जन करना चाहता हूँ।"

"तो क्या आपके लिए कुछ जानने को शेष है?"

"हाँ चित्रगुप्तजी। मैं तो समझता हूँ कि महारानी की माँ मातंगीदेवी मुझसे बहुत अधिक जानती हैं। वास्तव में ज्ञान की तो कुछ भी सीमा नहीं और मुझसे तो वह आगे निकल चुकी हैं।"

"परंतु महाराज, उसका ज्ञान निरर्थक है। उसने तो एक भी पुत्र को जन्म नहीं दिया और आपने इतने बड़े समृद्ध राज्य का उत्तराधिकारी उत्पन्न किया है। वह बेचारी क्या जानती है?

"जब हमने यहाँ के लिए एक राजा की माँग महाराज विक्रमादित्य से की थी तो हमारी इच्छा हुई कि कश्मीर के रक्त से एक राजकुमार भी उपलब्ध किया जाए। मंत्रिमंडल ने यह विचार किया कि जब कोई पुरुष राज्य करने के लिए मान जाए तो उससे ही कहा जाए कि यहाँ की मिट्टी से गढ़ा राजकुमार निर्माण करे।

"इस योजना के अधीन मैंने देश में चारों ओर गुप्तचर भेजे और यह जानने का यत्न किया कि इस देश में कोई लड़की ऐसी मिल जाए जो यहाँ ही राजमाता बनने के योग्य हो तो वह बुलाई जाए।

"मुझे सूचना मिली कि इस योग्य एक कुमारी श्रीनगर में ही है। मैं उसे देखने गया तो उसकी माता ने कहा कि अपने दामाद को देखकर ही लड़की का विवाह उससे करेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''मैंने बताया कि वह कश्मीर नरेश होगा।

''मातंगीदेवी ने कहा, ''यह मृणालिनी का पति बनने के लिए योग्यता नहीं है। मैं किसी विद्वान से ही उसका विवाह करूँगी, भले ही वह निर्धन हो।''

''इस पर मैंने एक गुप्तचर स्त्री उस लड़की को महारानी बनने की प्रेरणा देने के लिए उसके विद्यालय में रख दी।

''इस पर भी वह मान नहीं रही थी। परंतु जब आप आए तो आपकी आयु का विचार कर तो मुझे मातंगी से किसी प्रकार की आशा नहीं रही थी, परंतु उसने आपको देख स्वेच्छा से उस गुप्तचर स्त्री के द्वारा संदेश भेज दिया कि यदि यह कवि कश्मीर नरेश बनने वाला है तो वह सहर्ष लड़की का उसके साथ विवाह करने को तैयार है।

''इस पर मैं उससे मिलने गया और मैंने उसे बताया कि लड़की को आपकी सेवा में रख दिया जाएगा और लड़की यदि उसे विवाह के लिए तैयार कर सकी तो विवाह हो जाएगा।

''इस पर मातंगीदेवी तैयार हो गई। यद्यपि यह प्रस्ताव लड़की की माता से करना कुछ अधिक शोभनीय नहीं था कि उसकी लड़की से एक वृद्ध व्यक्ति को फुसलाकर संतान प्राप्त करने को कहा जाएगा। परंतु जब इस पर भी वह मान गई तो मैंने उससे उसके इस प्रस्ताव को स्वीकार करने का कारण पूछ लिया।

''उसने बताया, 'आप इस महानुभाव के गुणों को नहीं जानते, परंतु मैं जानती हूँ। ऐसा विद्वान व्यक्ति यदि विवाह के लिए राजी हो गया तो मैं लड़की को परम सौभाग्यवती समझूँगी। मैं समझूँगी कि लड़की बहुत ही योग्य हो गई है जो इस प्रकार के व्यक्ति को पति के रूप में पा सकती है।'

''परिणाम आपके समक्ष है। अभिप्राय यह कि मातंगीदेवी आपको शास्त्रों का प्रकांड विद्वान मानती है।''

मातृगुप्त मुख देखता रह गया। उसी मध्याह्नोत्तर वह मृणालिनी के शयनागार को चल पड़ा। वहाँ मातंगी बैठी अपने दोहते से खेल रही थी। इस समय वह दो वर्ष का हो गया था। मातंगी उसकी बुद्धि को विकसित करने का यत्न कर रही थी। वह उसकी स्मृति को क्रियाशील बनाने के लिए उसे खिलौने की पहचान बता रही थी। इसी समय मातृगुप्त वहाँ पहुँचा। दोनों स्त्रियों ने उठकर महाराज का स्वागत किया। बच्चा विस्मय से पिता का मुख देखने लगा।

मातृगुप्त ने हाथ फैलाकर उसे गोद में आने का निमंत्रण दिया। बच्चा नानी का मुख देखने लगा। मातंगी ने उसे महाराज के हाथों में देते हुए कहा, ''देखिए महाराज, यह अभी आपको पहचानता नहीं है। इसे अपने आगार में स्थान दें तो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
यह अपने को राजपुत्र समझने लगेगा।''

''यह इसकी माँ पर निर्भर करता है। लगभग ढाई वर्ष से यह वहाँ नहीं गई।''

''परंतु आपने भी तो कभी वहाँ चलने का निमंत्रण नहीं दिया।'' मृणालिनी ने कह दिया।

''मैंने तो आपको कभी भी निमंत्रण नहीं दिया। आप स्वेच्छा से वहाँ पहुँची थीं और फिर आपने ही अपने भोग का निमंत्रण दिया था।''

''हाँ महाराज, मुझे स्मरण है। परंतु तब मैं एक राजकुमार के निर्माण की योजना लिए हुए थी। परंतु अब तो मेरी इस प्रकार की योजना नहीं है। इस पर भी आपकी इच्छा के अधीन ही हूँ।''

''मेरी इच्छा तो यही है कि इस बालक पर मेरी कुछ परछाईं पड़े तो यह मेरा कार्य-भार सँभालने के योग्य हो सके।''

मातंगी ने इस कथन का उत्तर मृणालिनी को संबोधित कर दिया। उसने कहा, ''उठो मृणालिनी, इस निमंत्रण की अवहेलना करना अथवा इसको स्वीकार करने में विलंब करना ठीक नहीं।'' मृणालिनी जैसे बैठी थी वैसे ही उठ खड़ी हुई और बोली, ''महाराज, चलिए। आपकी छाया के नीचे पलना सुखदायी होगा।''

मातृगुप्त वार्तालाप के इस परिणाम पर चकित रह गया। वह तो आया था यह जानने कि मातंगी ने उसमें किस गुण के कारण लड़की को एक बूढ़े पति के साथ बाँधने में कल्याण माना है। वह मृणालिनी को भी अपनी वानप्रस्थ लेने की इच्छा बताने वाला था और इसकी प्रतिक्रिया जानना चाहता था, परंतु यहाँ तो बात ही दूसरी हो गई। मृणालिनी ढाई वर्ष के उपरांत उसके आगार में रहने चल पड़ी थी। इसका परिणाम वह समझता था कि प्रणय-संबंध पुन: बनेगा और क्या जाने कब राजकुमार का कोई अन्य भाई अथवा बहन बन जाए। इस पर भी वह समझ रहा था कि जो प्रारब्ध में बदा है, वह तो होगा ही। फिर अनासक्त भाव से उसे होने क्यों न दे?

जब वह अपने बैठकघर में पहुँचा तो महाराज और मृणालिनी आसनों पर बैठे और मातंगी सामने बैठ महाराज की कोने में रखी वीणा उठाकर स्वर साधने लगी।

मातृगुप्त विस्मय में मातंगी की ओर देखने लगा तो उसने बता दिया, ''महाराज की वीणा स्वर कर उनके बजाने के लिए तैयार कर रही हूँ जिससे राजकुमार के कानों में पिता का प्रथम परिचय उसकी किसी कविता और संगीत से हो।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"यह ठीक है।" कवि ने बालक को उसकी माँ की गोद में दे दिया और स्वयं वीणा ले बजाने लगा।

कल्याण के स्वरों की झंकार में वह गाने लगा—

स-नि-रे-स स-ग प-ध-नि-स स-नि-ध-प प-ग-रे-नि नि-रे-ग-स।

कुछ देर तक स्वरालाप कर उसने गा दिया—

नूनमुन्नमति यज्वनां पतिः शार्वरस्य तमसो निषिद्धये।
पुंडरीकमुखि पूर्वदिङ् मुखं केतकैरिव रजभिराहतम्॥
रुद्धनिर्गमनमादिनक्षयात्पूर्वदृष्टतनु चंद्रिकास्मितम्।
एतदुद्गिरति चंद्रमंडलं विग्रहस्यमिव रात्रिनोदितम्॥[1]

कवि अपनी स्वरचित कविता ही सुनाने लगा था और मृणालिनी समझ रही थी कि वह उसे चंद्रमा मान उसकी प्रशंसा गाने लगा है।

दो घड़ी भर संगीत लहरी चलती रही और चंद्र की शोभा का वर्णन होता रहा। जब गाना समाप्त हुआ तो महाराज और महारानी ने देखा कि लड़के को मातंगी आगार से बाहर ले गई है। मातृगुप्त ने पूछा भी, "कहाँ गई हैं मातंगीजी? वह तो बालक को मेरा परिचय करा रही थीं!"

"मैं भी तो आपके काव्य-रस में निमग्न हो अपने को भी विस्मरण कर चुकी थी। मैं नहीं जानती कि माताजी कब यहाँ से चल दी हैं।"

मातृगुप्त हँस पड़ा और बोला, "उन्होंने बालक की माता का परिचय कराना प्रथम कार्य समझा है। उनका विचार है कि मैं देवी को भूल गया था। अब तो देवी ने सुन लिया कि मैं भूला नहीं हूँ। अभी कमलमुखी की स्मृति मेरे हृदय में विराजमान है।"

"महाराज, मेरे मन में तो इस विषय में संशय कभी भी उत्पन्न नहीं हुआ। मैं तो आपकी मानसिक छाया में आपके इस देश में आने से भी पहले आ चुकी थी और उसी छाया में तब मेरे जीवन में वसंत आ रहा अनुभव होने लगा था और वसंत के आते ही—

---

1. हे कमल के समान मुखवाली, पूर्व दिशा का कुछ भाग ऐसा उजला प्रतीत हो रहा है मानो केतकी के फूल का पराग बिखर रहा हो।

जो चन्द्रमा दिन-भर दिखाई नहीं दिया था वह इस समय निकल आया है और ऐसा दिखाई देता है मानो रात्रि के कहने से यह चांदनी के रूप में मुस्कराता हुआ पूर्व दिशा के सब रहस्य प्रकट करने वाला हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुबेरगुप्तां दिशमुष्णरश्मौ गंतुं प्रवृत्ते समयं विलङ्घ्य,
दिग्दक्षिणागंधवहं मुखेन व्यलीकनि:श्वासमिवोत्सर्ज।
असूतसद्य: कुसुमान्यशोक: स्कन्धात्प्रभृत्यव सपल्लवानि,
पादेन नापेक्षत सुंदरीणां संपर्कमासिञ्जित नूपुरेण॥[1]

मातृगुप्त ने मुस्कराते हुए पूछा, "और यह वसंत कब आया था?"

"जब श्रीमान अभी उज्जयिनी से उत्तर की ओर चले ही थे तब मैंने अपनी माँ से पूछा था, 'माँ' यह क्या हो रहा है? मेरे मन में नये-नये विचार और कामनाएँ क्यों उत्पन्न हो रही हैं?"

"तब माँ ने ही बताया था कि ये जीवन में वसंत के आगमन के लक्षण है और फिर सूर्य उदय हुआ। फाल्गुन की मधुरता का अनुभव होने लगा और अब....।"

"तो अब क्या पतझड़ आ गया है?"

"नहीं महाराज। अभी तो ग्रीष्म का यौवन भी नहीं आया। अभी तो चैत्र का मध्य ही है और कमल दल जलाशयों पर उमड़-घुमड़कर छा रहे हैं।"

"तो ठीक है। कमलवदनी के अंग का स्पर्श तो हमें भी स्मरण है।"

:: 11 ::

इस बार मृणालिनी के लड़की हुई। लड़की के जन्म की सूचना देने महाराज के आगारों में मातंगी आई तो कवि हरिभजन से उठ अल्पाहार ले सार्वजनिक दरबार के लिए वस्त्र पहन रहा था। वह दर्पण के सामने खड़ा अपने अंगरखे के बंद बाँध रहा था कि पीछे मातंगी के खड़े होने का प्रतिबिंब दर्पण में दिखाई दिया। मातृगुप्त प्रात:काल से उसकी प्रतीक्षा में था। इस कारण उसका प्रतिबिंब देखते ही घूमकर प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखने लगा।

---

1. वसन्त के आते ही सूर्य समय से पूर्व ही दक्षिणायन से उत्तरायण चले आए। दक्षिण से बहने वाला मलय पवन दक्षिण दिशा के सूर्यपति-विहीन हो जाने पर दीर्घ निश्वास छोड़ने की बात बताता था।

   बसन्त के आने पर अशोक वृक्ष भी पाँव से सिर तक फूलों से लद गया। उसने आती हुई सुन्दरियों के पाँव के बिच्छुओं की झंकार को भी नहीं सुना। इतना मस्त हो गया था वह।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृणालिनी के प्रसव की आशा पूर्व मध्य रात्रि से ही की जा रही थी। अतः मातंगी से वह उसकी लड़की के समाचार की आशा करता था।

मातंगी ने कहा, "महाराज, लड़की हुई है। मृणालिनी स्वस्थ है।"

"और प्रसन्न नहीं?" मातृगुप्त ने मुस्कराते हुए पूछ लिया।

"वह तो अति प्रसन्न है।"

"और देवी मातंगी?"

"वह आपकी अति कृतज्ञ है। हमारे घर का संतति-सूत्र तो लड़कियों के द्वारा ही चल रहा है। यह लड़की मैं अपने घर ले जाऊँगी।"

मातृगुप्त मुस्कराया और बोला, "ठीक है। अभी तो कदाचित् बहन-भाई दोनों ही अपनी नानी के सरंक्षण में रहेंगे।"

मातंगी समझी नहीं और प्रश्न-भरी दृष्टि से महाराज का मुख देखने लगी। मातृगुप्त ने अंगरखे के बंद बाँधे और आगार से बाहर जाते-जाते कहा, "राज्य के उत्तरी प्रदेश में काली घटाएँ उमड़ती दिखाई देने लगी हैं। कहा नहीं जा सकता कि दक्षिण के सूर्य के प्रचंड ताप से वह घटाएँ विलीन हो जाएँगी अथवा पूर्ण देश पर छा जाएँगी। इस कारण प्रत्येक संभावना के लिए तैयार रहना चाहिए।"

"वह अपने को महाराज तोरमाण का पुत्र प्रवरसेन कहता है। इससे यदि वह राज्य करने के योग्य हुआ तो यह राज्य उसे वापस कर दूँगा।"

"परंतु यह कैसे पता चलेगा कि वह राज्य के योग्य है? बिना राज्य दिए उसकी योग्यता की परीक्षा कैसे होगी और जब एक बार राज्य दे दिया तो अयोग्य होने पर भी वह बिना युद्ध के राजगद्दी से हटाया नहीं जा सकेगा।"

"देखो देवी, इस विचार-शृंखला में स्वार्थपरता बाधक प्रतीत होती है। मेरा अपना राजा बना रहना मेरी विचारधारा को मिथ्या दृष्टि में ले जाता प्रतीत होता है। इस कारण इसका निश्चयात्मक सुझाव मैं महाराज विक्रमादित्य से ही पता करूँगा।"

इस समय तक वे सार्वजनिक दरबार भवन के द्वार पर पहुँच गए थे। इस कारण महाराज ने मातंगीदेवी को वापस मृणालिनी के पास भेजते हुए कहा, "मैं सायंकाल उसका स्वास्थ्य समाचार लेने आऊँगा।"

आज सार्वजनिक सभा में एक प्रश्नकर्ता ने प्रवरसेन की बात ही आरंभ कर दी। प्रश्नकर्ता ने कहा, "महाराज, क्या राजा का बेटा ही राज्य का अधिकारी होता है?"

"नहीं, जैसे मनुष्य के बेटे को मनुष्य माना जाता है। और उसे मानवोचित्त मान-सत्कार दिया जाता है, परंतु यदि वह मानवेतर व्यवहार अपना ले तो उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंदीगृह में डाल उससे वही व्यवहार किया जाता है जैसा पालतू पशुओं से किया जाता है। यही बात है एक राजा के पुत्र की।''

''परंतु महाराज, जब एक सामान्य प्रजा का पुत्र राजा के योग्य व्यवहार रखता हो तो उसकी किसी प्रकार की परीक्षा किए बिना क्या उसके लिए राज्य के पात्र को हटा देना चाहिए?''

मातृगुप्त समझ गया कि प्रवरसेन के विषय में बात हो रही है। इस कारण उसने पूछा, ''भद्र, तुम तोरमाण के कथित पुत्र प्रवरसेन की बात कर रहे हो?''

''हाँ, महाराज।''

''तुम्हारा उससे क्या संबंध है?''

''मेरा उससे किसी प्रकार का संबंध नहीं। मैं उसके पिता तोरमाण की प्रजा रहा हूँ। इसी कारण उसके विषय में जानने की रुचि रखता हूँ।''

''तुम क्या चाहते हो?''

''मैं तो यह कह रहा हूँ कि हमारा वर्तमान नरेश तोरमाण से राज्य करने में अधिक योग्य है। उसने तोरमाण के काल से अधिक सुख और उन्नति का प्रसार किया है। इसी कारण मैं जानना चाहता था कि क्या राजा का पुत्र होने मात्र से वह राजा बनाया जाने के योग्य होगा?''

''देखो भद्र, मैंने भी प्रवरसेन के विषय में सुना है कि वह बहुत बड़ी सेना तैयार कर रहा है और हमें राज्य से च्युत करने का यत्न करना चाहता है।

''हमारा मत यह है कि जो दोनों में राज्य करने तथा कश्मीर की उन्नति करने में अधिक योग्य हो, राजा बनने का वही अधिकारी है।

''परंतु यह निश्चय नहीं हो पा रहा कि कौन अधिक योग्य है राज्य करने के।''

''परंतु महाराज। हम प्रजागण यह चाहते हैं कि आप राज्य चलाते रहें। आपका, हमें एक जंगली पशु के हाथ में देकर, संन्यास ले लेना ठीक मालूम नहीं हो रहा।''

''परंतु वह जंगली पशु ही है क्या?''

''आपके राज्य को हमने देखा है और उसमें सुख प्राप्त किया है। उसे हम नहीं जानते।''

''इस विषय में मैंने अभी कुछ निश्चय नहीं किया। मैं मंत्रिमंडल से परामर्श करूँगा। तत्पश्चात् ही कार्य करूँगा।

''देखो भद्र, यह समय इस विषय पर विचार करने का नहीं कि राजा को क्या करना चाहिए। यह समय तो प्रजागण के कष्ट निवारण करने का है। इस

CC-0. In Public Domain..Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण मैं पूछता हूँ कि आपकी क्या याचना है?''

''मैंने बता दिया है और उसका उत्तर मिल गया है।''

मातृगुप्त ने मुस्कराते हुए पूछा, ''क्या उत्तर मिल गया है?''

''यही कि आप मंत्रिमंडल से सम्मति कर बताएँगे।''

''ठीक है। मेरे उत्तर में यह और समझ लो कि मंत्रिमंडल से यह भी सम्मति करूँगा कि मैं इस विषय पर किसी को बताऊँ अथवा नहीं?''

''यह तो महाराज, अन्याय हो जाएगा।''

''नहीं भद्र, उसमें भी उद्देश्य यही होगा कि प्रजागण का हित कथन में है अथवा नहीं है।''

परन्तु उस दिन सार्वजनिक सभा में कुछ अधिक याचिकाएँ नहीं थीं। एक-दो सामान्य विषयों पर चर्चा होती रही। तदनन्तर सभा विसर्जित हुई।

महाराज मातृगुप्त ने उसी दिन मंत्रिमंडल से इस विषय पर सम्मति की। सूचना यह थी कि राज्य के उत्तरी भाग में एक व्यक्ति अपने को स्वर्गीय प्रवरसेन का पौत्र और तोरमाण का पुत्र घोषित कर अपने बाबा का राज्य लेने के लिए सेना तैयार कर रहा है। यह समाचार महाराज को मिला, मंत्रिमंडल को भी मिला और प्रजा में भी फैल गया।

इससे चिंतित हो मंत्रिमंडल की साप्ताहिक बैठक में प्रवरसेन की बात विचाराधीन थी।

महामंत्री चित्रगुप्त ने कहा, ''यह समाचार है कि एक तेजस्वी युवक उत्तरी कश्मीर में सेना एकत्रित कर रहा है और वह दल-बल सहित श्रीनगर पर आक्रमण करने वाला है।''

''क्यों करने वाला है?'' महाराज ने पूछ लिया, ''उसको वर्तमान राज्य से क्या कष्ट हो रहा है?''

मंत्रिमंडल के एक अन्य सदस्य ने व्यंग्यात्मक भाव में कह दिया, ''वह मानता है कि राजा की संतान होने मात्र से राज्य का अधिकारी हो जाता है।''

''तो और किस प्रकार हो सकता है?''

''जैसे श्रीमान हुए हैं।''

''परंतु मैं भी तो किसी राजा द्वारा नियुक्त किया गया हूँ।''

''यह नियुक्ति तो गुण देखकर की गई प्रतीत होती है,'' महामंत्री ने वार्तालाप में हस्तक्षेप करते हुए कहा।

''और हम मानते हैं कि जन्म परमात्मा पूर्व जन्म के कर्म फलों के अनुसार देता है।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''परमात्मा ने तो कर्म फलों के अनुसार उसे महारानी के गर्भ से जन्म देने के उपरांत भी एक कुम्हार के घर में पटक दिया था। यही हमारी सूचना है।''

''परंतु परमात्मा ने उसके अधीन एक सेना देकर यह सिद्ध नहीं कर दिया क्या कि उसके कुम्हार के घर में रहने के कर्मफल समाप्त हो गए हैं ?''

''नहीं महाराज, यह परमात्मा की देन नहीं है। यह तो उसके इस जन्म के कर्मों का फल प्रतीत होता है और वे कर्म अधर्मयुक्त उद्देश्यों से भी हो सकते हैं।''

''तो यह विषय परीक्षायोग्य है ?''

''हाँ महाराज,'' सुरक्षा मंत्री ने कहा, ''और इसकी परीक्षा युद्धभूमि पर होगी।''

''तो क्या युद्धभूमि पर विजय-पराजय परमात्मा की इच्छा प्रकट करेगी!'' मातृगुप्त का प्रश्न था।

''हाँ महाराज, आपका राज्य प्रजागण के सुख और उन्नति का सूचक है और प्रजा का निर्णय आपके पक्ष में होगा। यदि वह प्रजा का निर्णय परमात्मा की आवाज नहीं स्वीकार करता तो फिर युद्ध होना चाहिए। ईश्वर की इच्छा जानने का इससे श्रेष्ठ उपाय नहीं है।''

मातृगुप्त अनिश्चित-मन था। इस पर महामंत्री ने कहा, ''महाराज, आपके मन में कुछ संशय है अपने विषय में ?''

''मैं अनिश्चित मन हूँ। राजा बने रहने से मुझे लाभ होगा। परंतु मेरा लाभ युक्ति नहीं है कि यह राज्य न्यायसंगत है। मेरे साथी मंत्रिगण कहते हैं कि मेरा राज्य प्रजा के हित में है, परंतु वे कैसे कह सकते हैं कि प्रवरसेन का राज्य मेरे से अधिक हितकर नहीं होगा ? इस कारण मेरे अथवा आपके कहने का कुछ अर्थ नहीं। हम इस विवाद में एक पक्ष हैं।''

''महाराज,'' सुरक्षा मंत्री ने पुनः कहा, ''हमारी सम्मति प्रजा की सम्मति के अनुसार ही है और प्रजा की सम्मति है कि कश्मीर के राजसिंहासन पर मातृगुप्त राज्य करे।''

''यदि प्रतिवादी प्रजा के निर्णय को नहीं मानेगा तो युद्ध होगा। युद्ध ईश्वरीय निर्णय होगा।''

''मंत्री महोदय, आपकी सम्मति प्रजा की सम्मति है, यह सिद्ध कैसे होगा ?''

''कैसे सिद्ध कर सकता हूँ ? एक बात निश्चय है कि आपके प्रबंधन से देश में अकाल की स्थिति नहीं उत्पन्न हुई। देश में कोई विदेशी आक्रमण नहीं हुआ। देश में किसी प्रकार की महामारी नहीं पड़ी। इससे अधिक प्रमाण क्या हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है आपके उत्तम राज्य का?''

''तो ऐसा करो। मंत्रिमंडल के एक या दो सदस्य प्रवरसेन से मिलें और उसे समझाएँ कि वह व्यर्थ की नरहत्या न करे। वह मुझसे मिले तो मैं उसकी योग्यतानुसार राज्य में उसको स्थान दे दूँगा। यदि वह राजा बनने के योग्य हुआ तो उसे राजा भी बना दूँगा।''

''वह मानेगा नहीं,'' महामंत्री का कहना था।

''यत्न करना चाहिए। इस यत्न के परिणाम प्रकट होने के उपरांत विचार करेंगे।''

इस पर सुरक्षा मंत्री ने कहा, ''इस पर भी मंत्रिमंडल यह निश्चय करे कि युद्ध के लिए सैनिक तैयारी की जाए।''

मातृगुप्त इस विचार पर मौन रहा और मंत्रिमंडल ने सर्वसम्मति से युद्ध की तैयारी का निर्णय कर दिया।

इस पर मातृगुप्त ने कहा, ''युद्ध की तैयारी तो करनी ही चाहिए परंतु युद्ध-घोषणा अभी नहीं की जा रही। अतः यह युद्ध की तैयारी किसके विरुद्ध है, यह भी घोषित नहीं करना।''

इस प्रकार निश्चय हो गया।

इसी सायंकाल मातृगुप्त मृणालिनी का सुख-समाचार लेने गया। मृणालिनी सर्वथा स्वस्थ और प्रसन्न थी। महाराज ने उसे देखा और लड़की को जन्म देने पर बधाई दी।

''हाँ महाराज, मैं अपने पर ईश्वर की कृपा मानती हूँ। सृष्टि-रचना में मैं संतुलन रख सकी हूँ।''

''तो यह तुमने किया है? क्या यह तुम्हारे वश में था कि लड़का न हो और लड़की हो?''

''यह तो नहीं, महाराज। लड़का-लड़की होने में विधान तो परमात्मा का ही है। मैं तो यह कह रही हूँ कि ऐसा कर सकने से मैं प्रसन्न हूँ। यह मैंने ईश्वर के सहयोग से किया है अथवा आपके सहयोग से, कह नहीं सकती। परंतु क्या आपका सहयोग भी ईश्वर की कृपा के बिना सफल हो सकता था?''

''तुम ठीक कहती हो, देवी। मेरा तो केवल इतना कहना है कि जो कुछ जैसा है वैसा ही स्वीकार करना हमारी कुशलता है। यही सफलता का लक्षण है।''

मातंगीदेवी ने पूछा, ''महाराज, उस विषय में जिसका मैंने प्रातःकाल संकेत किया था, मंत्रिमडल का क्या निर्णय है?''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मंत्रिमंडल में इस विषय पर विचार तो हुआ है, परंतु अभी किसी प्रकार का निर्णय नहीं हुआ।"

"परंतु यह तो एक भयंकर परिस्थिति का सूचक है। इसका अर्थ यह है कि मंत्रिमंडल समय पर चूक भी सकता है। पीछे पछताये क्या होत् जब चिड़िया चुग गई खेत?"

"नहीं, ऐसा नहीं होगा। समय पर उचित कार्रवाई की जाएगी।"

रात को शयनागार में लेटा हुआ वह मन में विचार कर रहा था कि अपने स्वार्थ के लिए वह कश्मीर में गृहयुद्ध उत्पन्न करे अथवा न करे? उसके मन पर यह विश्वास बिठाया जा रहा था कि उसका राज्य प्रजा के हित में है। इस कारण उसे अपने राज्य को स्थापित रखने के लिए युद्ध जैसी भयंकर बात को भी करना चाहिए। कश्मीर में उसका राज्य धर्म का राज्य है और उसके पक्ष में युद्ध धर्मयुद्ध होगा।

मातृगुप्त के मन में यह संदेह था कि ये सब लोग उसके राज्य के साथ संबंध रखने वाले हैं। उसके वहाँ रहने से ही उनका राज्य में अस्तित्व है। राज्य बदलने पर वह निस्संदेह बदल दिए जाएँगे। इस कारण उनकी सम्मति निःस्वार्थ भाव से नहीं भी हो सकती। मातंगी, मृणालिनी, मंत्रिमंडल और प्रजागण के वे लोग जो उसके सार्वजनिक दरबार में अपनी याचिका उपस्थित करते हैं, सबके सब उसके राजा होने से ही जीवन सुलभ पा रहे हैं। अतः उनकी सम्मति निष्पक्ष भाव से नहीं हो सकती। प्रवरसेन एक योग्य संगठनकर्ता तो है। तभी तो उसने एक अज्ञात स्थिति से अपने को इतना शक्तिशाली बना लिया है कि स्थापित राज्य को चुनौती दे सका है।

क्या वह शासन करने में भी योग्य होगा? क्या वह न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म और उचित-अनुचित में भी भेद कर सकेगा? यह जाँच का विषय है। यदि कर सकेगा तो वह अपने को आत्मा की उन्नति के मार्ग से हटा, भला संतानोत्पत्ति तथा पालन करने के मार्ग पर क्यों प्रवृत्त करे? वह मन में विचार कर रहा था कि अनपढ़, स्वार्थ में रत, दिन-रात धनोपार्जन करने में लीन प्रजा की रक्षा परिश्रम करना भी क्या संतान-पालन से कुछ अधिक महत्त्व रखता है?

इस प्रकार के विचारों से वह एक ही परिणाम पर पहुँचा कि उसे शीघ्रातिशीघ्र यह जानने का यत्न करना चाहिए कि प्रवरसेन संगठनकर्ता के साथ न्यायोचित शासन चलाने की भी सामर्थ्य रखता है अथवा नहीं? यदि रखता है तो उसे स्वयं अपने साथ लेकर राज्य के गोपनीय कार्यों में अनुभव कराए।

इस परिणाम पर पहुँचते ही उसके चित्त को शांति हुई और वह सो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीसरा परिच्छेद

मातृगुप्त को कश्मीर का शासन सँभाले तीन वर्ष हो चुके थे और मंत्रिमंडल ने उससे पूर्व दस वर्ष तक निरंकुश शासन किया था। हिरण्य ने अपने निधन से दस वर्ष पूर्व तक अपने भाई तोरमाण को अपने नाम की मुद्रा प्रचलित करने के अपराध में बंदी बनाया था। इन तेईस वर्ष के शासन में बीस वर्ष तक राज्य में अव्यवस्था रही थी।

यह अव्यवस्था हिरण्यादि के पिता प्रवरसेन के निधन पर आरंभ हुई थी। हिरण्य और तोरमाण भिन्न-भिन्न माताओं के पुत्र थे। एक कश्मीर के एक क्षत्रिय परिवार की लड़की थी और दूसरी यवन देश के राजा की लड़की। दोनों माताओं के संस्कारों और स्वभाव में अंतर होने के कारण संतानों में भी अंतर हुआ था। यद्यपि उनके पिता प्रवरसेन ने उनकी शिक्षा-दीक्षा में समानता के कारण मातृजन्य संस्कारों और स्वभावों को समान करने का यत्न किया था, परंतु एक सामान्य-सी बात पर वह अंतर फूट पड़ा था। यह विस्फोट दोनों भाइयों के स्वभाव में अंतर होने के कारण तथा उनके मित्र एवं सम्मतिदाताओं में भी अंतर होने के कारण उत्पन्न हुआ था।

पिता के देहांत के समय वे शोकग्रस्त थे और एकाएक शासन का बोझ भारी प्रतीत होने के कारण, दोनों भाइयों में परस्पर सहयोग की भावना उभर उठी थी। दोनों ने शासन में अपनी-अपनी रुचि के अनुसार कार्य बाँटकर परस्पर सहयोग से कार्य करना आरंभ कर दिया था। बड़ा भाई हिरण्य शासन कार्य करने लगा था और तोरमाण अर्थव्यवस्था की देख-रेख करने लगा था।

तोरमाण ने कश्मीर की मुद्रा बालाहत के अनिश्चित तोल और मूल्य के कारण राज्य में नई मुद्रा दीनार के नाम से चला दी। भूल यह हो गई कि उसने उस मुद्रा पर अपने बड़े भाई हिरण्य का नाम अंकित करने के स्थान पर अपना नाम अंकित करा दिया।

इस पर हिरण्य के सम्मतिदाताओं और विशेष रूप में उसकी पत्नी शूलधरा ने उसके मन में तोरमाण के लिए ईर्ष्या और द्वैष उत्पन्न कर दिया और एक दिन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
एकाएक उसने भाई को बंदीगृह में डलवा दिया।

जब अंजना ने याचिका दी कि उसे अपने पति के साथ रहने की स्वीकृति दी जाए तो हिरण्य के सम्मतिदाताओं को यह बात सुखद समझ आई और उन्होंने हिरण्य को सम्मति दी कि उसे भी बंदीगृह में भेज देने से उसके विरुद्ध किसी प्रकार का षड्यंत्र अथवा विद्रोह करने में वह अशक्त हो जाएगी।

इस प्रकार पति-पत्नी दोनों को बंदीगृह में डाल हिरण्य अपने साथियों सहित राज्य करने लगा। तोरमाण की पत्नी अंजना गर्भवती हुई तो उसके पति ने उसे यह कहकर कि वहाँ बच्चे की जान का भय है, बंदीगृह से बाहर जाकर बालक को जन्म देने के लिए राजी कर लिया। उसका कहना था, ''बंदीगृह में तो बालक की हत्या भी की जा सकती है, जैसे देवकी के सात बच्चों की कंस ने की थी।''

इस संभावना से भयभीत अंजना बंदीगृह से बाहर चली आई और राजधानी से दूर एक निर्धन कुम्हार के झोंपड़े में जाकर रहने लगी। वहाँ उसने एक लड़के को जन्म दिया।

कुम्हार की पत्नी ने अंजना से पूछा था, ''तुम तो किसी उच्च परिवार की स्त्री प्रतीत होती हो। कहाँ से आई हो?''

अंजना अपना परिचय देना नहीं चाहती थी। उसे भय लग रहा था कि कहीं उसका ज्येष्ठ उसे मरवा न डाले। इस कारण उसने कुम्हार की पत्नी से कहा, ''बहन, एक दुखिया हूँ। क्या करोगी नाम-धाम जानकर? मैं इस बच्चे को किसी अज्ञात स्थान पर जन्म देना चाहती हूँ, इस कारण मेरा नाम-धाम मत पूछो और मुझे स्थान दे दो।''

साथ ही अंजना ने उसे आशा से अधिक धन दिया और उसके झोंपड़े में रहने लगी। कुम्हार की पत्नी ने समझा कि जन्म लेने वाला बालक अवैध संतान है, इसी कारण बच्चे की माँ अपना परिचय देना नहीं चाहती। धन के लोभ में वह चुप रही।

बालक अति सुंदर, ओजस्वी और प्रखर मस्तिष्क वाला हुआ। अंजना बालक के कुछ बड़ा हो जाने पर उसे कुम्हार की पत्नी की देख-रेख में छोड़ पुनः बंदीगृह में चली गई। परंतु उसके वहाँ पहुँचने से पूर्व तोरमाण रुग्ण रहने लगा था और कुछ ही दिनों में उसका देहांत हो गया। तब अंजना पुनः कुम्हार की झोंपड़ी में आकर रहने लगी। कुम्हार की पत्नी ने समझा कि बालक की माँ को उसके घर वालों ने उसको चरित्रहीन समझकर घर से निकाल दिया है।

इस बार कुम्हार की पत्नी ने पुनः यह जानने की इच्छा की कि वह किस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठ परिवार की स्त्री है? उसने कहा, ''देवी, तुम्हारा बालक तो तुमसे भी अधिक सुंदर है और बहुत ही समझदार और स्वस्थ शरीर रखता है। तुम यदि बता दो कि किस घर की बहू हो तो बालक को वहाँ पहुँचा दिया जाए जिससे इसकी शिक्षा-दीक्षा भली-भाँति हो सके।''

कुम्हार की पत्नी की बात सुन अंजना रोने लगी। उसे अपने दिवंगत पति का स्मरण आ गया था। रोते हुए उसने कहा, ''बहन, तो बिना मेरे पूर्व को जाने मुझे यहाँ रहने नहीं दोगी क्या? मुझसे मत पूछो कि मैं कौन हूँ तथा कहाँ से आई हूँ? बस, यहाँ रहने की स्वीकृति दे दो।''

अंजना को विह्वल हो रोते देख कुम्हार की पत्नी के मन में दया आ गई और उसने बच्चे को अपने बच्चों में बड़ा होने का अवसर दे दिया।

परंतु श्रेष्ठता तो मन और बुद्धि में होती है जो पुण्यवान आत्माओं से संयुक्त होती है। यह ठीक है कि वर्तमान जन्म की शिक्षा-दीक्षा मन और बुद्धि के विकास में सहायक होती है, परंतु कभी मन और बुद्धि पूर्वजन्म के कर्मों से इतने बलवान होते हैं कि वे वर्तमान जन्म की शिक्षा के बिना भी उन्नति के मार्ग पर चल पड़ते हैं। यही बात अंजना के पुत्र में होने लगी तो अंजना ने उसका नाम उसके ख्यातिप्राप्त बाबा के नाम पर प्रवरसेन रख दिया।

प्रवरसेन जब सात-आठ वर्ष का हुआ तो वह गाँव में छोटी जातियों के लड़कों में खेलने-कूदने लगा। वह अपने सब साथियों से अधिक सुंदर, रूपराशि में श्रेष्ठ और बुद्धि में प्रखर होने से उनका नेता बन गया और उसके नेतृत्व में लड़के सब प्रकार की शरारतें करने लगे।

राज्य के लोगों में अभी हिरण्य के पिता प्रवरसेन की ख्याति की स्मृति जीवित थी इस कारण वह एक कुम्हार के झोंपडे में रहने वाले का नाम प्रवरसेन सुन उससे हँसी करते थे। वे इस कुम्हार को महान महत्त्वाकांक्षी समझने लगे थे और उसकी निन्दा करते थे। छोटी अवस्था में तो अंजना का पुत्र गाँव वालों की हँसी का अर्थ समझता नहीं था, परंतु जब वह आठ-नौ वर्ष का हुआ तो गाँव वालों की बात समझने लगा। इस कारण उसने अपनी माँ से एक दिन कहा, ''माँ, गाँव के लोग मेरी हँसी उड़ाते हैं। वे कहते हैं, 'ओ कुम्हार के बेटे महाराज प्रवरेसन' और हँसते हैं।

''माँ, वे क्यों हँसते हैं?''

माँ ने कहा, ''बेटा वे मूर्ख हैं।''

''पर मुझे यह ठीक प्रतीत नहीं होता।''

''क्यों ठीक प्रतीत नहीं होता?''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"इस कारण कि एक कुम्हार का बेटा महाराज नहीं होता। न ही हो सकता है और प्रवरसेन यहाँ के महाराज रहे हैं।"

अंजना को समझ आया कि अब लड़के को उसके माता-पिता का रहस्य बता देना चाहिए इस कारण उसने कहा, "परंतु यह तुमसे किसने कहा है कि तुम कुम्हार के बेटे हो?"

"हम कल्लू कुम्हार के घर में रहते हैं। वैसा ही खाते हैं, पहनते हैं और उसी के बच्चों के साथ मैं खेलता हूँ।"

"इस पर भी प्रवर, तुम कुम्हार की संतान नहीं हो?"

"तो माँ, फिर किसकी संतान हूँ?"

"जानते हो, इस देश के राजा का क्या नाम है?"

प्रवरसेन को इस दिशा में माँ के अनुमान से अधिक ज्ञान था। वह गाँव के लोगों से सामयिक समाचार सुनता रहता था इस कारण उसने बता दिया, "माँ, आजकल देश में कोई राजा नहीं है। शासन मंत्रिमंडल करता है।"

"और पहले महाराज हिरण्य को क्या हुआ है?"

"उसका निधन हो गया है। कहते हैं कि वह स्वर्गलोक को गया है।"

"और हिरण्य के पिता का क्या नाम था?"

"मैं नहीं जानता।"

"उसका नाम प्रवरसेन था," अंजना ने बताया।

"ओह! तो यह बात है जिससे गाँव के लोग मेरी हँसी उड़ाते हैं।"

"वे तो मूर्ख हैं। तुम्हारा नाम तो सार्थक ही है। कभी-कभी पोते का नाम बाबा के नाम पर रखा जाता है।"

इस पर तो प्रत्रसेन भौचक्का हो माँ का मुख देखता रह गया। वह माँ के कथन का अर्थ ठीक-ठीक नहीं समझा। इस कारण उसने पूछा, "माँ, कौन बाबा है और कौन पोता है?"

"तुम पोते हो। हिरण्य के पिता प्रवरसेन के तुम पोते हो। देखो प्रवर, यह बात किसी को बताने की नहीं। यह संभव है कि वर्तमान मंत्रिमंडल अभी वही हो जो तुम्हारे ताऊ हिरण्य के समय में था और वे भी तुमको हिरण्य की भाँति मार डालने का यत्न करें। तुम्हारे पिता को हिरण्य ने ही बंदीगृह में डाल मरवा डाला था। जब तुम अभी मेरे गर्भ में ही थे कि मैं बंदीगृह से भाग आई थी। तब से ही में छुपी-छुपी यहाँ रह रही हूँ।"

आठ वर्ष के बालक के मन में इस समाचार ने विशेष स्फूर्ति उत्पन्न की। गाँव वालों की हँसी से बचने के लिए उसने समवयस्क लड़कों का संगठन तैयार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
किया। वह अपने साथियों को लेकर चंद्रभागा नदी के तट पर आ खेल-कूद, कुश्ती इत्यादि करते हुए दल को सुदृढ़ करने लगा।

माँ से अपने जन्म का समाचार पाने के दो-तीन वर्ष के भीतर ही उसने गाँव के लड़कों का एक सशक्त जत्था बना लिया। एक दिन वह अपने साथियों के साथ नदी-तट पर जा रहा था कि एक वैश्य जातीय दुकानदार ने हँसी में कह दिया, ''प्रवरसेनजी महाराज, अपने दल-बल के साथ किधर जा रहे हो?''

''जिधर इच्छा हुई। तुम किसलिए पूछ रहे हो?''

''महाराज प्रवरसेन की जय-जयकार करने के लिए।'' इतना कह वह हँसने लगा। इस पर प्रवरसेन को क्रोध चढ़ आया। उसने अपने साथियों से कहा, ''इसकी दुकान लूट लेनी चाहिए। इसकी दुकान की मिठाई खाने को जी करता है।''

प्रवरसेन का यह कहना था कि लड़के कूदकर बनिये की दुकान पर चढ़ गए और उसकी दुकान लूट ली। दुकानदार की खूब मरम्मत की और घोषणा कर दी, ''यदि किसी व्यक्ति ने प्रवरसेन की उसके नाम के कारण हँसी उड़ाई तो उसके साथ यही व्यवहार किया जाएगा जो मधुसूदन दुकानदार से किया गया है।''

तीस-चालीस लड़कों का जत्था गाँव में आतंक का कारण हो गया। शंकर नाम का एक क्षत्रिय जाति का व्यक्ति गाँव में रहता था। उसे इन छोटी जाति के लड़कों का यह हुड़दंग पसंद नहीं आया और वह नदी के तट पर जा पहुँचा। उसकी कमर के साथ खड्ग बँधा था। वह वहाँ लड़कों को खेल-कूद करते देख एक लड़के को बाँह से पकड़ पूछने लगा, ''तुम भी मधुसूदन की दुकान लूटने में सम्मिलित थे?''

वह लड़का शंकर की कमर से बँधी खड्ग देख डर गया और अपने नेता को बुलाने लगा, ''दादा! दादा!!....''

वह कुछ अधिक कह नहीं सका कि शंकर ने उसके मुख पर अपने पूरे बल से एक चपत लगा दी। समीप खड़े एक लड़के ने देखा और हल्ला कर दिया। फिर क्या था, लड़के अपना खेल छोड़ शंकर के चारों ओर आ खड़े हुए। प्रवरसेन सबसे आगे था। उसने पूछा, ''आपने इस लड़के को क्यों पीटा है?''

''यह मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहा था।''

''और आपका प्रश्न क्या था?''

''मैंने पूछा था कि क्या यह भी मधुसूदन की दुकान लूटने वालों में सम्मिलित था? इसने उत्तर देने के स्थान चिल्लाना आरंभ कर दिया और मैंने इसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुप कराने के लिए इसके मुख पर चपत लगाई है।''

''दुकान इसने नहीं लूटी, दुकान लूटने वाला मैं हूँ। बताओ, क्या कहते हो?''

''तुम तो किसी भले घर के लड़के प्रतीत होते हो, परंतु तुम गुंडे निकले!''

''क्या कहा?'' प्रवर ने पूछा।

''मैंने कहा है कि तुम गुंडों के नेता हो,'' इतना कहते-कहते उसने तलवार निकाल ली, परंतु वह प्रवर की चपलता का ठीक अनुमान नहीं रखता था। प्रवर तलवार बाहर निकालने से पहले ही चार पग पीछे हट चुका था। उसने नदी तट पर पड़ा एक पत्थर उठाया और शंकर के सिर का निशाना बनाकर जोर से फेंका।

उसे ऐसा करते देखा तो प्रवर के साथियों ने भी शंकर को पत्थर मार-मार कर मार डाला। जब शंकर मर गया तो लड़के परेशानी अनुभव करने लगे। प्रवरसेन ने अपने साथियों से कहा,''डरो नहीं। जिन्ह मोहें मारा तिन्हीं मैं मारा। मैंने कोई पाप नहीं किया।''

''परन्तु दादा, गाँव वालों को इस हत्या का पता चला तो वे हमारी हत्या कर देंगे।'' एक ने कहा।

''कैसे कर देंगे? हम संगठित हैं। वे संगठित नहीं हैं। जैसे एक छोटी-सी सेना पूर्ण देश भर में राज्य करती है वैसे ही हम पचास लड़के पूर्ण गाँव पर शासन करेंगे।''

''परंतु वह तो राजा करता है।''

''तो मैं राजा बन जाऊँगा। तुम मेरे सैनिक होगे।''

लड़के इस योजना से बहुत प्रसन्न हुए। शंकर का शव चंद्रभागा में बहा दिया गया और सब लड़के गाँव पर शासन के स्वप्न लेते हुए गाँव को लौट गए।

अभी गाँव वालों को पता नहीं चला था कि शंकर मारा गया है। इस पर भी मधुसूदन की अवस्था देख गाँव के लोग इन लड़कों के गुट्ट से डरते हुए घरों में छुप जाते थे।

जब शंकर अपने घर नहीं पहुँचा तो यह समाचार फैलने लगा कि शंकर इन लड़कों की ताड़ना करने इनके पीछे नदी तट पर गया था और वहाँ से लौटा नहीं।

गाँव का मुखिया कल्लू कुम्हार के घर पहुँचा जहाँ प्रवरसेन रहता था। वह उसे बुलाने लगा तो प्रवर झोपड़े से निकल आया। इस पर मुखिया ने कहा, ''ओ कुम्हार के बेटे, शंकर का क्या किया है?''

''उसे मारकर शव नदी में बहा दिया है।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"क्यों?"

"उसने अकारण हमारे साथियों में से एक को पीटा था।"

"परंतु यह तो राज्यद्रोह है और अत्याचार है कि तुम कुछ लड़के मिलकर अनधिकारयुक्त कार्य कर आए हो। मैं राजधानी में यह सूचना भेज रहा हूँ। वहाँ से सेना आकर तुम्हारा सब घर-बार लूट लेगी और तुम्हें पकड़कर फाँसी पर लटका देगी। नगर के एक दुकानदार को लूट लेना और एक क्षत्रिय को मार डालना तो महापाप है।"

"अच्छा तो सुनो। जब तक तुम्हारे राज्य की सेना आएगी मैं इस गाँव को फूँककर सब राख कर दूँगा।"

"तो करो। मैं सूचना भेज रहा हूँ।"

झोंपड़े में बैठी अंजना अपने पुत्र और गाँव के मुखिया में हो रहा वार्तालाप सुन रही थी। जब मुखिया क्रोध में लाल-पीला होता हुआ चला गया तो माँ ने पुत्र को भीतर बुला पूछा, "प्रवर, यह तुमने क्या किया?"

"माँ, उसकी बात का उत्तर दिया है।"

"परंतु जब किसी कथन को कार्य में लाने की सामर्थ्य न हो तो उसे मुख से निकालना उचित नहीं होता।"

"क्या बात मेरी सामर्थ्य में नहीं है?"

"यही कि तुम गाँव को फूँक दोगे। इस धमकी से तो तुम अपने साथियों को भी अपने विरुद्ध कर लोगे। वे भी तो गाँव में ही रहते हैं। साथ ही उनके माता-पिता सगे-संबंधी भी हैं। वे तुमको छोड़कर पृथक् संगठन बनाकर तुम्हें बंदी बना राज्याधिकारियों के हाथ में दे देंगे।"

अपने साथियों के तथा उनके सगे-संबंधियों के भी मकान गाँव में फूँक डाले जाने के बात उसे समझ आ गई। वह पूछने लगा, "तो माँ, क्या करूँ?"

"प्रश्न यह है कि तुम करना क्या चाहते हो?"

"मैं अपने बाबा का राज्य वापस लेना चाहता हूँ।"

"तो उसकी सामर्थ्य उत्पन्न करो।"

"कैसे करूँ?"

"तुम क्षत्रिय स्वभाव रखते प्रतीत होते हो। तुम्हें किसी ब्राह्मण स्वभाव के मंत्री की आवश्यकता है।"

"माँ, यहाँ ऐसा कौन है जो इस प्रकार की सम्मति तथा उस योजना की सफलता की सामर्थ्य उत्पन्न कर सकता है?"

"यहाँ तो नहीं, परंतु एक को मैं जानती हूँ। तुम अयोध्या चले जाओ वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
मेरे पिताजी हैं। वह तुम्हारी इच्छापूर्ति की योजना बना सकेंगे।"

"माँ, उनका पता और नाम बता दो। मैं वर्तमान अपमान की अवस्था में नहीं रह सकता।"

"मैं तुम्हें उनके नाम एक पत्र दूँगी। तुम उनके पास चले जाओ। वह तुम्हें तुम्हारी योजना की सफलता का उपाय बताएँगे।"

माँ अपने पुत्र को हत्या के स्थान से बाहर करने में रुचि रखती थी। इसका उपाय उसने कर दिया।

:: 2 ::

अंजना ने अपने पुत्र प्रवरसेन को अयोध्या रवाना कर दिया। वह कौशल के राज-परिवार की लड़की थी। उसके विवाह के समय उसका पितामह राज्य करता था। कौशल राज्य इन दिनों कुछ अधिक बड़ा नहीं था, परंतु अपने पूर्वजों की ख्याति के कारण भारत-भर में मान-प्रतिष्ठा पाता था। चक्रवर्ती पद गुप्त परिवार वालों के पास था। उन्होंने इस पद को अपने पराक्रम और बुद्धि के बल से प्राप्त किया था। उनके इस पद को रघुवंशी भी स्वीकार करते थे। रघुवंश के भी कई घटक अनेकों स्थानों पर राज्य करते थे, परंतु वे सब छोटे-छोटे राज्यों के स्वामी होने के कारण भारत सम्राट गुप्तवंशीय विक्रमादित्य की छत्रछाया में रहने में ही अपना कल्याण मानते थे। अयोध्या का शासक इस वंश का सर्वप्रसिद्ध उत्तराधिकारी माना जाता था। अंजना के बाबा रघुनन्दनसिंह का इस समय देहांत हो चुका था और उसका बड़ा लड़का रामावतार सिंहासन को सुशोभित कर रहा था। अंजना रामावतार के छोटे भाई सौमित्र की लड़की थी।

तेरह-चौदह वर्ष पूर्व जब अंजना का विवाह प्रवरसेन के छोटे लड़के तोरमाण से हुआ था तब सौमित्र सेना में एक अधिकारी था। बड़ा भाई राजा बना तो उसे भय लगा कि सौमित्र किसी दिन उसे सेना के बल से पदच्युत कर देगा। इस कारण रामावतार ने राजगद्दी पर बैठते ही सौमित्र को सेना के काम से मुक्त कर अपने साथ मंत्रिपद पर नियुक्त कर दिया। इस पर भी जब उसे सुरक्षा मंत्री न बनाकर अर्थ मंत्री बनाया तो सौमित्र को बहुत अखरा। जो कार्य वह बाल्यकाल से करता था, उसके स्थान पर उसे एक ऐसे कार्य पर लगा दिया गया जिसमें उसकी रुचि नहीं थी। इस कारण सौमित्र के मन में राज्य-कार्य से अरुचि उत्पन्न हो गई और वह एक दिन अपने बड़े भाई को सूचित कर कि वह संन्यास लेने बनारस जा रहा है, चल दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस समय अंजना के विवाह को दो वर्ष हो चुके थे और वह भी पति के साथ बंदीगृह में जा चुकी थी। अंजना ने अपनी अवस्था की सूचना अयोध्या नहीं भेजी थी। वह जानती थी कि उसके बाबा का देहांत हो चुका है और उसका पिता सेनाध्यक्ष के पद से हटाया जा चुका है।

इसके कुछ ही समय पश्चात सौमित्र अंजना की माँ तथा अंजना के भाई-बहन को लेकर काशी चला गया। वहाँ जाने पर तो अंजना का समाचार न सौमित्रादि को मिला और न उनका समाचार अंजना को। अंजना कश्मीर की राजधानी से दूर एक छोटे-से गाँव में रह रही थी।

प्रवरसेन डेढ़ महीने की यात्रा के उपरांत अयोध्या पहुँचा तो वह राजप्रासाद के द्वार पर सौमित्र का पता पूछने लगा। द्वारपाल से उसने कहा, ''मैं राजकुमार सौमित्र से मिलना चाहता हूँ।''

द्वारपाल नहीं जानता था कि सौमित्र नाम का कोई व्यक्ति राजप्रासाद में रहता है। वह नया ही इस काम पर नियुक्त हुआ था। उसने कह दिया, ''पथिक, यहाँ इस नाम का कोई राजकुमार नहीं रहता। तुम कहाँ से आए हो?''

प्रवरसेन ने अपने गाँव का नाम बता दिया। उसने कहा, ''पूर्वी कश्मीर राज्य में मंगलापुर से आया हूँ।''

द्वारपाल ने उससे कहा, ''यहाँ कोई व्यक्ति इस नाम का नहीं। यहाँ से हट जाओ नहीं तो बंदी बना लिये जाओगे।''

प्रवरसेन एक पांथागार में जा टिका और वहाँ के अध्यक्ष से पूछने लगा। पांथागार का अध्यक्ष एक वृद्ध व्यक्ति था। उसने सौमित्र का नाम सुना तो उसने पूछा, ''तुम किसके पुत्र हो?''

''मेरे पिता कश्मीर के राजकुमार तोरमाण थे। उनका देहांत हो चुका है, परंतु मेरी माता अंजनादेवी जीवित हैं। उन्होंने मुझे एक कार्य विशेष से अपने पिता के पास भेजा है।''

पांथागार के अध्यक्ष को अंजना के विवाह की याद आ गई। विवाह बहुत धूमधाम से किया गया था। वर कश्मीर की राजधानी श्रीनगर से दल-बल सहित आया था। उसके साथ आए बहुत से अतिथि उसके पांथागार में ठहराए गए थे।

उसने प्रवरसेन से कहा, ''मैं सब जान गया हूँ। बड़े महाराज का देहांत हुए ग्यारह-बारह वर्ष हो चुके हैं। अब उनके बड़े लड़के राज्य करते हैं। सौमित्र छोटा भाई किसी अज्ञात कारण से यहाँ से काशी चला गया था। सुना है कि अभी भी वह वहाँ है।''

प्रवरसेन ने काशी जाने का विचार बना लिया। पांथागार के अध्यक्ष ने वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रघुनाथजी के मंदिर का परिचय दे दिया। उसने कहा कि वह मंदिर अयोध्या राज्य ने बनवाया है और उसका पुजारी पंडित महाशंख तुमको बता सकेगा कि तुम्हारे नाना कहाँ रहते हैं।''

दो दिन विश्राम कर प्रवरसेन काशी के लिए चल पड़ा। वहाँ रघुनाथजी का मंदिर ढूँढ उसके पुजारी महाशंख के सामने जा खड़ा हुआ।

महाशंख ने पूछा, ''बालक, बताओ क्या चाहते हो?''

''पंडितजी, मैं कश्मीर से आया हूँ। मेरे नाना सौमित्र अयोध्या नरेश के भाई हैं। सुना है कि वह कहीं काशी में रहते हैं। मैं उनसे मिलना चाहता हूँ। इसमें आप मेरी सहायता करें।''

महाशंख लड़के के ओजस्वी मुख को देख समझ गया कि यह सत्य ही कह रहा है। उसने पहले तो प्रवरसेन से यात्रा का सब वर्णन पूछा और यह पता किया कि वह इस अल्प वयस में इतनी दूर की यात्रा कैसे कर सका?

''पंडितजी, मैं अपनी माँ का एक संदेश लेकर अपने नाना से मिलने आया हूँ। पहले अयोध्या गया था। वहाँ से यह पता पाया कि नानाजी इस पुरी में हैं, आपका पता जान यहाँ आ गया हूँ। मार्ग लंबा अवश्य है, परंतु मेरा संदेश भी अत्यावश्यक है। इस कारण कार्य के महत्त्व को समझते हुए मैं लंबे-लंबे पड़ाव करता हुआ दो मास में यहाँ आ पहुँचा हूँ।''

महाशंख ने अपने अधीन एक मंदिर की सेवा करने वाले के साथ प्रवर को सौमित्र के निवास-स्थान पर भेज दिया।

सौमित्र रुग्ण शैया पर पड़ा था। उसके समीप जब प्रवर को खड़ा कर उसका परिचय दिया तो वह अपनी लड़की के बेटे को देख बहुत प्रसन्न हुआ। परंतु जब प्रवरसेन ने माँ का पत्र अपने नाना के हाथ में दिया तो वह पढ़कर अत्यंत दु:खी हुआ।

उसने पूछा, ''तो तुम अपनी माता के साथ एक अज्ञात गाँव में एक कुम्हार के झोपड़े में रहते हो?''

''हाँ, नानाजी।''

''तुम्हारी माता ने लिखा है कि तुम अपने पिता के राज्य में स्थान पाने के लिए उत्सुक हो और स्थान राजपद है।''

''हाँ, नानाजी माताजी ने कहा है कि आप मुझे इसका उपाय बताएँगे।''

''अच्छा, तुम यहाँ रहो। कुछ दिन विश्राम करो। तब इस विषय पर बातचीत करेंगे। तुम्हारा बड़ा मामा नगर से बाहर किसी कार्यवश गया हुआ है। इस कारण उसके आने के उपरांत ही बात कर सकेंगे।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं तो बीमार हूँ। यहाँ के वैद्य कहते हैं कि इस रोग की चिकित्सा नहीं है। यह कर्म रोग है। इस कारण मैं तो कुछ सहायता कर नहीं सकता।"

प्रवरसेन वहाँ ठहर गया। उसका मामा जयेन्द्र एक सप्ताह के उपरांत आया। प्रवर के नाना का स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा था। इस कारण जयेन्द्र के आने पर भी प्रवरसेन के विषय में विचार नहीं हो सका।

एक दिन प्रवरसेन अपने मन के लड्डू बना रहा था कि जयेंद्र उसके विचार का कारण पूछने लगा, "तो तुम वहाँ के गाँव के एक व्यक्ति की हत्या कर यहाँ भाग आए हो?"

प्रवरसेन समझ गया कि माँ ने अपने पत्र में गाँव की घटना लिखी होगी। अंतः कहने लगा, "मामाजी, उस व्यक्ति ने मेरे एक साथी के मुख पर अकारण चपत लगा दी थी। मैंने उससे पूछा कि उसने यह क्यों किया है तो वह तलवार निकाल मुझ पर झपटा तब मेरे साथियों ने उसको पत्थर मार-मारकर मार डाला।"

"परंतु उसने तुम्हारे साथी के मुख पर चपत क्यों लगाई थी?"

"यही तो मैंने उससे पूछा था, जिस पर वह मेरी हत्या करने पर उद्यत हो गया था।"

"परंतु तुम्हारे साथी तो उसकी हत्या के कारण दंड पा रहे होंगे।"

"दोषी तो मैं हूँ। मैंने ही कहा था कि मारो इस साले को। मेरे साथी तो मुझसे बहुत प्रेम करते थे और मेरा कहा मानते थे। मेरे कहने पर ही उन्होंने उसे पत्थर मारने आरंभ किए थे।"

"परंतु तुमने ऐसा क्यों किया? तुम्हें वहाँ से टल जाना चाहिए था।"

"मामाजी, इस घटना से कुछ मास पूर्व माँ ने मुझे बताया था कि मैं राजपरिवार का बालक हूँ और किसी कारण से अपनी माँ के साथ कुम्हार के झोपड़े में रहता हूँ। तब से ही मेरे मन में प्रतिकार की अग्नि जल रही है और मैं अपने को राजा बनने का अधिकारी समझता हूँ। मेरे चित्त को तब तक शांति नहीं होगी जब तक मैं श्रीनगर के राजसिंहासन पर नहीं बैठ जाता।"

"यह इच्छा तो उचित है, परंतु प्रवर, तुमने इस काम के लिए तैयारी नहीं की। यह एक अति कठिन कार्य है। कुम्हार की झोंपड़ी से कश्मीर के राजसिंहासन तक बहुत लंबी यात्रा है। यह अति कठिन और ढलान वाली भी है। यदि तुम यह चाहते हो तो मेरे साथ रहते हुए इसकी तैयारी करो।"

"कैसे करूँ?

"मैं आज से ही तुम्हारे लिए एक विद्वान नीति शास्त्र का ज्ञाता तुम्हारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षक नियुक्त कर देता हूँ। वह तुम्हें पहले राजा बनने की बुद्धि सिखाएगा। मैं तुमको और तुम्हारे गुरु को लेकर तुम्हारी माँ से मिलने चलूँगा। मेरा बहन से मिलने को बहुत जी करता है और साथ ही देखना चाहता हूँ कि वहाँ राज्य प्राप्त करने की योजना चल सकती है अथवा नहीं।''

''यह सब योजना कितने काल में पूर्ण हो सकेगी?''

''इसमें दस वर्ष तो लग ही सकते हैं। अधिक भी लग सकते हैं और फिर पूर्ण योजना असफल भी हो सकती है। पुरुषार्थ में जब तक परमात्मा सहायक न हो तो वह पुरुषार्थ जल मथने के तुल्य हो जाता है। तब मंथन से नवनीत नहीं निकलता।''

''परंतु मामाजी, इतने काल तक तो मैं ईर्ष्याग्नि में जल-भुनकर राख हो जाऊँगा।''

''तब तुम अपनी अभिलाषा पूर्ण नहीं कर सकोगे। किसी भी पद की यदि योग्यता प्राप्त न की जाए तो वह पद प्राप्त हुआ भी न प्राप्त होने के समान हो जाता है। संभव तो यह है कि तुम राजा बनने से पूर्व ही किसी युद्ध में अथवा बिना युद्ध के मार डाले जाओ। अनीतिमान पुरुषों का यही अंत होता है।''

प्रवरसेन परेशानी से मामा का मुख देखता रह गया। उसे चुप देख जयेंद्र ने कहा,''देखो प्रवर, मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है कि तुम राजसी प्रकृति रखते हो, परंतु बिना किसी नीतिमान ब्राह्मण की सम्मति के तुम अपनी अभिलाषा पूर्ण नहीं कर सकोगे। मेरा कहा मानो, तुम आज से तपस्या करनी आरंभ कर दो।''

''वह क्या होती है?''

''तप: स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानानि इति क्रिया योग:। यह है तपस्या और योग। इनसे सफलता मिलेगी।''

प्रवरसेन को एक बात से प्रसन्नता हुई थी। वह यह कि उसका मामा उसकी माँ से मिलने जाना चाहता है और उसे भी साथ ले जाना चाहता है।

वह मामा की योजना मान गया और तपस्या करने के लिए तैयार हो गया। जयेंद्र ने इसका प्रबंध कर दिया। उसी दिन रघुनाथ मंदिर के पुरोहित महाशंख का लड़का विश्रवा प्रवरसेन का शिक्षक नियुक्त हो गया। विश्रवा चालीस वर्ष का अनुभवी विद्वान था। जब उसने प्रवरसेन को शिष्य माना तो शिक्षा आरम्भ हो गई। प्रवरसेन अपनी माँ से सामान्य देववाणी सीखा था। अब उसे व्याकरण और धर्मशास्त्र पढ़ाए जाने लगे।

सौमित्र का देहांत हुआ तो जयेंद्र बहन की सुध लेने चल पड़ा। जयेंद्र, उसका भाँजा प्रवरसेन और उसका गुरु विश्रवा कश्मीर की यात्रा पर चल पड़े।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

:: 3 ::

दो वर्ष के उपरांत अंजना को पुत्र के दर्शन हुए और पुत्र के साथ अपने भाई को देख वह गद्गद हो गई।

जयेंद्र ने गाँव के शिव मंदिर में निवास-स्थान बनाया। उसने प्रवरसेन को अपने साथ ही रखा। अंजना कुम्हार की पत्नी के साथ ही रहती थी। कुम्हार की मृत्यु हो चुकी थी और उसके लड़के अब पिता के स्थान पर काम करते थे।

यद्यपि कुम्हार का झोपड़ा आस-पास के सब झोंपड़ों से साफ-सुथरा और अच्छा बना था। इस पर भी वह झोंपड़ा ही था। जयेंद्र को यह भला प्रतीत नहीं हुआ इस कारण उसने अपनी बहन से कहा, ''अंजना, यह स्थान एक राजपरिवार की स्त्री के उपयुक्त नहीं।''

''हाँ भैया। परंतु मैं यहाँ राजपरिवार की स्त्री के रूप में परिज्ञात नहीं हूँ। गाँव में तो मुझे इस कुम्हार की पत्नी की बहन ही माना जाता है।''

''परंतु एक दिन प्रवर को तो राजपरिवार का घटक घोषित करना होगा।''

''प्रवर के गुरु पंडित विश्रवा कहते हैं कि अभी पाँच-छः वर्ष और लगेंगे। राजनीति के विषय में यह तो कुछ भी नहीं जानता था। जानने के अतिरिक्त इसका अभी वाणी और कर्म पर भी नियंत्रण नहीं है। इसके बिना यह राजा कैसे बना सकता है?''

''तब तक तुम यहीं रहोगे?''

''हाँ। मेरा विचार है कि इस लड़के को लेकर पूर्ण देश का भ्रमण करूँगा और फिर इसकी शिक्षा समाप्त होने तक इसे राजगद्दी पर बिठाने के लिए धन और जन का प्रबंध करना है। क्या जाने राज्य के लिए युद्ध करना पड़े।''

''तो भैया, इसे समझा दो कि राज्य नहीं चाहिए। मैंने राजमाता बनने की अभिलाषा छोड़ दी है।''

''बहन, यह मेरे अथवा तुम्हारे कहने से नहीं होगा। यह है वैराग्य। यह बिना विवेक के प्राप्त नहीं होता। इसके लिए भी तो तैयारी करनी पड़ेगी। वैराग्य की शिक्षा तो राज्य प्राप्त करने की इच्छा से भी कठिन है। उसके लिए तो और भी कठोर तपस्या करनी होगी।''

''तो फिर?''

''तुमको यह झोंपड़ा छोड़ हमारे साथ रहना होगा।''

''नहीं भैया, इसी कुम्हार के घर को ही मेरे रहने योग्य बना दो। मैं इस घर के लोगों के साथ ही रहूँगी।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''तो ये उस सुन्दर हवेली में बैठ बरतन पकाएँगे ?''

''नहीं भैया, वह प्रवर की सेवा स्वीकार कर उसे राज्य दिलाने में सहायक हो जाएँगे।''

अंजना की योजना पर सम्मति की गई। पंडित विश्रवा की सम्मति से कुम्हार की पत्नी के झोंपड़े के स्थान पर एक बड़ी सी हवेली तैयार होने लगी।

इस तैयारी पर लोग कानोकान पूछने लगे, ''यह प्रवर कौन है ?'' यह प्रश्न कुम्हार की पत्नी से भी पूछा जाने लगा और किसी न किसी प्रकार वे समाचार पा गए कि महाराज प्रवरसेन का पोता जीवित है।

मकान बना। मकान में बीसियों आगार बने और उनमें कुम्हार की पत्नी और उसके बच्चों के लिए भी स्थान बना। इस सबमें दो वर्ष और व्यतीत हो गए।

जयेंद्र प्रवरसेन को लेकर गुप्त रूप से पूर्ण राज्य में घूम आया और समाचार ले आया कि मंत्रियों का राज्य पूर्ण रूप से स्वार्थ पर आधारित है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि राज्य के पास एक लक्ष सैनिक हैं। वे सबके सब मंत्रियों की सहायता करेंगे और जब तक राज्य से अधिक सेना और शस्त्रास्त्र एकत्रित नहीं किए जाते तब तक प्रवरसेन राज्य प्राप्त नहीं कर सकता।

अब साधन और सेना एकत्रित की जाने लगी। इसमें तीन वर्ष और लग गए और तब तक मंत्रियों के राज्य के स्थान पर उज्जयिनी के एक ब्राह्मण विद्वान का राज्य स्थापित हो गया। यह भी विख्यात हो गया कि वह ब्राह्मण मातृगुप्त भारतसम्राट महाराज विक्रमादित्य द्वारा नियुक्त किया गया है। इस पर पुनः प्रवरसेन को अपनी योजना बदलनी पड़ी। अब सेना के स्थान पर प्रजा की सहानुभूति प्राप्त करने का यत्न होने लगा।

प्रवर की ख्याति ही श्रीनगर में पहुँची थी और राज्य को चिंता लग गई थी कि बहुत कठिनाई से उन्होंने एक योग्य शासक के राज्य का सुख प्राप्त किया था और अब उसके स्थान पर अट्ठारह-उन्नीस वर्ष का एक बालक राजा बनेगा और उसके राज्य में क्या होगा, कहा नहीं जा सकता।

मंत्रिमंडल की चिंता का यही कारण था। प्रजा विभक्त थी। जो अवसरवादी थे वे परिवर्तन चाहते थे। परिवर्तन में ही उनको उन्नति करने अवसर मिल सकता था। जो शांति और सुख का जीवन व्यतीत करना चाहते थे, वे स्थापित राज्य का समर्थन करते थे।

जब प्रवरसेन की सूचना मंत्रिमंडल में पहुँची तो इस विषय पर विचार हुआ। सुरक्षा मंत्री की तो यह सम्मति थी कि बुराई को उसके उद्गम स्थान पर ही नष्ट कर देना चाहिए। वह सेना भेजकर इस कथित राजकुमार को पकड़कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंदीगृह में डाल देने की सम्मति दे रहा था।

परंतु मातृगुप्त का कहना था, ''क्या जाने वह मुझसे अच्छा शासक सिद्ध हो। इस कारण उसके विषय में जाँच करनी चाहिए और पीछे विचार करना चाहिए कि उसे राजा बनाया जाए अथवा बंदी बनाकर रखा जाए।''

इस पर तीन मंत्रियों का एक आयोग चंद्रभागा के तट पर मंगलापुर गाँव को चल पड़ा। जिस दिन आयोग गया उसी दिन मृणालिनी प्रसूति-गृह से बाहर निकली थी। वह अपनी नई संतान लड़की को लिए हुए महाराज के चरण-स्पर्श कर प्रसन्न वदन जब चौकी पर बैठी तो महाराज मातृगुप्त हँस पड़ा।

इस समय मृणालिनी के प्रसूति-गृह के बाहर बैठकघर में मातृगुप्त पुरोहित को लिए बैठा था। मृणालिनी की माता मातंगी भी वहाँ उपस्थित थी। मृणालिनी ने अपने लिए आसन पर बैठते हुए पूछा, ''महाराज, हँस क्यों रहे हैं ?''

''इस कारण कि मैं समझता हूँ कि सृष्टि-रचना का यज्ञ मैंने संपूर्ण कर दिया है। हम पति-पत्नी ने एक लड़का और एक लड़की उत्पन्न कर दी है। हमने ब्रह्मा द्वारा आरंभ किया यज्ञ आगे चला दिया है। अब हमें कुछ और कार्य करना चाहिए।''

''और क्या महाराज ?'' मृणालिनी ने पूछ लिया।

''तम्हारे लिए तो पाँच-दस वर्ष को कार्य विधाता ने निश्चय कर दिया है। तुम्हें इन बच्चों को सुयोग्य बनाकर यज्ञ को आगे चलाने के योग्य बनाना है। मेरे लिए नवीन कार्य अभी निश्चय नहीं हुआ। मैं समझता हूँ कि अब शीघ्र ही निश्चय करना चाहिए।''

मातंगी ने बातों में हस्तक्षेप करते हुए कहा, ''महाराज, यह लड़की तो मैं गोद लेने का विचार रखती हूँ। यह लड़की के छः मास की हो जाने के उपरांत ही हो सकेगा। तब आपका यज्ञ अधूरा रह जाएगा। एक लड़की के लिए और यत्न करना पड़ेगा।''

''ओह! अच्छा, जब तुम बच्ची को गोद लोगी तो विचार कर लूँगा।''

पुरोहित ने पूजा का सामान तैयार कर लिया था। नामकरण संस्कार की विधि आरंभ हो गई। पूजा के उपरांत जब नाम रखने का समय आया तो पुरोहित ने कहा, ''महाराज, 'म' अक्षर पर लड़की का नाम रखना चाहिए।''

इस पर मातृगुप्त ने कहा, ''मातंगीदेवी इसका नाम तुम ही बताओ, क्योंकि यह लड़की तुम्हारी संतान बनने वाली है। हाँ, तो बताओ कि क्या नाम हो ?''

''यह योग तो ईश्वर-प्रदत्त ही प्रतीत होता है। मैं मातंगी, मेरी लड़की मृणालिनी और उसके पुत्र का नाम मारुतिज और आप महाराज मातृगुप्त। अब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लड़की का नाम भी 'म' अक्षर से आरंभ होने वाला है। मैं समझती हूँ कि मैं तीन नामों का सुझाव देती हूँ और आप तथा मृणालिनी उनमें से जो चाहें उस पर आशीर्वाद दे दें।

"मुझे ये तीनों नाम एक समान ठीक प्रतीत हो रहे हैं। महिमा, माध्वी और महाबली।"

मातृगुप्त ने पुरोहित की ओर देखकर पूछा, "पंडितजी, आप इनमें से कौन-सा नाम पसंद करते हैं?"

"वैसे तो तीनों बहुत सुंदर हैं, इस पर भी मुझे महिमा सर्वश्रेष्ठ प्रतीत हो रहा है।"

मृणालिनी ने महिमा के पक्ष में ही सम्मति दी और लड़की का नाम महिमा हो गया और पंडितजी ने नाम से आशीर्वादसूचक मंत्र बोल दिया।

पुनः मृणालिनी के लिए पृथक् आगार नियत हो गया और मातृगुप्त दिन-रात राज्य-कार्य में जुट गया। महामंत्री तो आयोग का नेता बन मंगलापुर गया हुआ था, इससे मातृगुप्त को द्विगुणा कार्य करना पड़ रहा था।

राज्य के सुरक्षा मंत्री शूरसेन ने सेना को युद्ध की तैयारी करने की आज्ञा दे दी थी। सब सेनानायक अपनी-अपनी टुकड़ियों को गति देने लगे थे।

प्रजा में तो भारी विवाद चल पड़ा था। प्रवरसेन के पक्ष में सबसे प्रबल युक्ति यह थी कि वह कश्मीर देश का जन्मा-पला है। कश्मीर के प्राचीन राजवंश द्वारका के वासुदेव कृष्ण से आशीर्वाद प्राप्त कर चुका है और वह युवा है, बुद्धिमान है, अतः चिरकाल तक देश के शासन को चला सकेगा।

इसके विपरीत मातृगुप्त के विषय में यह युक्ति दी जाती थी कि वह विषय-वासनाओं से ऊपर निःस्वार्थ भाव का व्यक्ति है। वह जनता से नित्य मिलता है और उस तक निर्धन से निर्धन कश्मीर नागरिक की पहुँच है। ऐसा पहले कभी किसी नरेश ने नहीं किया, न ही राजपुत्र प्रवरसेन से इसकी आशा की जाती थी।

मातृगुप्त सबका परिचित है और प्रवरसेन अभी नवयुवक है। उसका विषय-वासना-रत हो जाना भी संभव है।

यह वाद-विवाद और भी बल पकड़ गया जब मंत्रिमंडल का आयोग मंगलापुर में प्रवरसेन और उसके अभिभावकों से मिलने गया।

मातृगुप्त समझता था कि परिस्थिति विस्फोटक हो रही है। राज्य में गृहयुद्ध हो सकता है। एक ओर कश्मीर निवासी और एक ओर विदेशी होने के कारण यह झगड़े का रूप लेता जा रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
एक दिन मातृगुप्त ने यह विचार किया कि क्यों न यह विचार महाराज विक्रम के पास भेज दिया जाए और दोनों पक्ष के प्रतिनिधि महाराज से इस विषय में आदेश माँगें।

उसने अपने एक विशेष दूत के द्वारा मंत्रिमंडल के आयोग के पास अपना यह सुझाव भी भेज दिया।

:: 4 ::

मंगलापुर में भी परिस्थिति में परिवर्तन होने लगा था। वहाँ राज्य की सेना की गतिविधियों की सूचनाएँ आने लगी थीं। इसके साथ ही कश्मीरी जनता में राजकुमार प्रवरसेन का पक्ष प्रबल हो रहा दिखाई दे रहा था। इससे भयंकर गृहयुद्ध के होने की संभावना प्रतीत होने लगी थी। वहाँ भी एक राज्य समिति बन चुकी थी। उसमें प्रवरसेन, उसका गुरु विश्रवा, प्रवर की माता अंजना और उसका भाई जयेंद्र मुख्य थे। एक छोटी-सी सेना थी और उसका अध्यक्ष प्रवर के बाल्यकाल का एक मित्र सुनन्द और एक वैश्य-जातीय धनी-मानी व्यापारी संतोषी लाल सम्मिलित थे।

युद्ध की संभावना के कारण अंजना ने ही राज्य-समिति में यह सुझाव रखा, ''एक आयोग पाटलिपुत्र में महाराज विक्रमादित्य के पास भेजना चाहिए। उनसे निवेदन करना चाहिए कि उनका कवि मातृगुप्त को राजा नियुक्त करने का आदेश तो इस कारण था कि कश्मीर के राजपरिवार का कोई प्रतिनिधि राज्य के योग्य नहीं था। अब वह उपस्थित है। इस कारण दो प्रतिपक्षियों में निर्णय दें कि कौन राजा हो और अपने निर्णय की आज्ञा कर दें।''

जयेंद्र ने कहा, ''तब तो मातृगुप्त विजयी हो जाएगा। वह महाराज का परम मित्र है।''

''हमें अपना पक्ष बलपूर्वक रखना चाहिए और अपने पक्ष की वे सब बातें कहनी चाहिए जो हमने कश्मीरी प्रजा में फैला रखी हैं।

''साथ ही प्रजा के उस पक्ष का भी एक प्रतिनिधि-मंडल पाटलिपुत्र भेजना चाहिए जो प्रवर का पक्ष प्रजा की ओर से उपस्थित करे।''

मंगलापुर की राज्य-समिति में अंजना के प्रस्ताव पर सहमति नहीं थी। समिति के मुख्य व्यक्तियों में भी मतभेद था। अंजना और प्रवरसेन के गुरु विश्रवा समझौते से कार्य करने के पक्ष में थे। अंजना का भाई जयेंद्र और सेनाध्यक्ष सुनन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा संतोषीलाल विक्रमादित्य का आदेश लेने के पक्ष में नहीं थे। प्रवरसेन मौन था। प्रवर के मामा ने पूछा, ''प्रवर, तुम क्या चाहते हो?''

''मामाजी, मैं तो अब इस झमेले से बाहर होने की इच्छा करने लगा हूँ। मेरे एक व्यक्ति के राजा बनने के लिए राज्य के नगर-नगर और गाँव-गाँव में रक्त की नदियाँ बह जाएँगी। मैं यह पसंद नहीं करता।''

''तो क्या किया जाए?'' जयेंद्र ने पूछा।

''अभी तो माताजी का प्रस्ताव व्यावहारिक प्रतीत होता है।''

''विक्रमादित्य का निर्णय तुम्हारे पक्ष में नहीं होगा।''

''तो मामाजी, में संन्यास ले लूँगा।''

''प्रवर, तुम्हारी प्रकृति वाले युवक के लिए यह अत्यंत कठिन स्थिति हो जाएगी। यह वैराग्य तुमसे सहन नहीं हो सकेगा और फिर जब पुनः क्षत्रिय धर्म का अवेश आया तो परिस्थिति इतनी अनुकूल नहीं रहेगी।''

इस पर अंजना ने कहा, ''मुझे विश्वास है कि एक राजपरिवार का सम्राट परिवार की महिमा को जानता होगा और वह एक अज्ञात माता-पिता की संतान कवि पर प्रवर को उच्चता देगा।''

यहाँ की राज्य-समिति के इस मतभेद के कारण कुछ भी निश्चय नहीं हो सका। संतोषीलाल की योजनानुसार प्रजा में गुप्तचर भेजे जा रहे थे। जो प्राचीन राजपरिवारी के रूप में प्रवरसेन का प्रचार कर रहे थे।

समाचार आ रहा था कि सेना में भी मतभेद उत्पन्न हो रहा है। सैनिक कह रहे थे कि मंत्रिमंडल के कुछ सदस्य गुलछर्रे उड़ा रहे हैं और वे मातृगुप्त के पक्ष में हैं। इससे मातृगुप्त और मंत्रिमंडल का पक्ष दुर्बल हो रहा प्रतीत हो रहा था।

जयेंद्र इस समाचार के कारण संतोषीलाल की योजना के पक्ष में हो गया और उसके लिए और अधिक धन व्यय करने लगा। अंजना भी यदि प्रजा और सेना के दबाव से कार्य-सिद्धि हो जाए तो उसको सहर्ष स्वीकार करने के लिए तैयार थी।

परंतु प्रवरसेन में वैराग्य का वेग प्रबल होने लगा था और वह इस पूर्ण झमेले से पृथक् हो योग की धारणा, ध्यान और समाधि में रुचि लेने लगा था।

यह स्थिति थी जब श्रीनगर से मंत्रिमंडल प्रतिनिधि आयोग आया। कश्मीर के महामंत्री ने यहाँ पहुँचते ही अपने एक प्रतिहार के द्वारा जयेंद्र के पास सूचना भेज दी। सूचना यह थी, ''हम कश्मीर राज्य के एक प्रतिनिधि मंडल के सदस्य हैं। और महाराज मातृगुप्त का संदेश लेकर आए हैं।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जयेंद्र इसको अपने कार्य की विजय का प्रथम लक्षण मानता था। महामंत्री के पत्र के आते ही मंगलापुर वाली राज्य-समिति की गुप्त बैठक की गई और उसमें महामंत्री चित्रगुप्त का संदेश पढ़कर सुना दिया गया।

इस संदेश को सुन जयेंद्र ने कहा, "देखो प्रवर, अब यह वैराग्य का ढोंग छोड़ो। मैं भविष्यवाणी करता हूँ कि तुम एक मास के भीतर कश्मीर के राजसिंहासन पर बैठ जाआगे।"

अंजना को भी यही समझ आया था। इस कारण वह भी मंत्रिमंडल के प्रतिनिधि आयोग से बातचीत कर निश्चय करने के पक्ष में थी। वह समझ रही थी कि मातृगुप्त के जीवन-काल में प्रवरसेन को युवराज नियुक्त कर दिया जाए तो बात बन सकती है। परंतु मंत्रिमंडल की बात सुने बिना वह अपने मन की बात कहना नहीं चाहती थी। उसने केवल यह कहा, "इस आयोग को सत्कारपूर्वक ठहराना चाहिए और इनसे विचार-विमर्श करना चाहिए।"

विश्रवा को वार्तालाप से निर्णय होता दिखाई नहीं देता था। इस कारण उसने कहा, "मेरे विचार में श्रीनगर से आए आयोग को इस बात पर राजी कर लेना चाहिए कि दोनों पक्षों का संयुक्त आयोग महाराज विक्रमादित्य के पास जाए और उसने इस विषय पर निर्णय ले और प्रवरसेन को राजगद्दी पर बिठाने पर बल दे।"

संतोषीलाल का कहना था, "हमें अभी कुछ भी निश्चय नहीं करना चाहिए और अपनी राज्य-समिति में मतभेद का वर्णन वहाँ नहीं करना चाहिए। उनकी बात सुन लेनी चाहिए और उनको अगले दिन अपना निर्णय बताने की बात कहकर आयोग को वापस निवास पर भेज देना चाहिए। तदंनन्तर हम विचार करेंगे।"

इस प्रकार कश्मीर राज्य के आयोग को सत्कार सहित एक पृथक मकान में ठहराया गया। उनको खिलाया-पिलाया गया और फिर अंजना और जयेंद्र उनसे मिले।

महामंत्री ने महाराज मातृगुप्त के हस्ताक्षर वाला अधिकार पत्र उपस्थित कर दिया। इस प्रकार वार्तालाप आरम्भ हुआ। महामंत्री ने अंजना को पहचाना और पूछा, "राजकुमारीजी, आप इतने दिन तक कहाँ रहीं?"

इस पर अंजना ने अपने प्रवर के लिए राजधानी से कहीं दूर किसी गुप्त स्थान पर आने का वृत्तांत बता दिया। इसके साथ ही उसने प्रवर के पुनः राज्य प्राप्त करने की अभिलाषा वर्णन कर दी।

अंजना ने बताया, "मुझे अपनी संतान के जीवन का भय लग गया था अतः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंद्रह वर्ष तक सबसे गुप्त और अपना परिचय दिए बिना यहाँ रहती रही।

"प्रवर कछ काल तक काशी में शिक्षा ग्रहण करता रहा है। यहाँ भी एक योग्य शिक्षक से राजनीति का ज्ञान प्राप्त कर रहा है। योग्य हो जाने के उपरांत इसने अपने पैतृक राज्य को प्राप्त करने की योजना बनाई है। मेरे पिता के यहाँ से सहायता आई है और आ रही है। उस सहायता तथा प्रजा की सहानुभूति से मैं अपने लड़के का उचित अधिकार प्राप्त करना चाहती हूँ।"

"देखिए रानीजी," महामंत्री ने कहा, "राज परिवार के घटक राज्य से च्युत किए जाते देखे गए हैं और अकिंचनों की संतान भी राजगद्दी प्राप्त करने में सफल होती देखी गई है। यह सब भाग्य और योग्यता के आधार पर होता है, हुआ है और होता रहेगा। वर्तमान महाराज पढ़े-लिखे विद्वान, अनुभवी और नीतिमान पुरुष हैं। वह विचारशील राज-पद के सर्वथा योग्य हैं।

"कुछ पूर्व ग्रहों से ग्रसित लोग शरीरिक सौंदर्य,शारीरिक बल और पूर्वजों के आधार पर राजा को ढूँढते हैं। बुद्धि इस बात को नहीं मानती।

"इस पर भी वे पूर्व ग्रहों से ग्रसित लोग अपने विचार तथा स्वार्थ का पक्ष लेकर राज्य बदलना चाहते हैं। वे इस बात का निर्णय कराने के उद्देश्य से अनभिज्ञ प्रजा में विद्रोह अथवा अव्यवस्था उत्पन्न करने का यत्न करते हैं। यह अशुद्ध उपाय है। इससे नर रक्त की नदियाँ बह जाती हैं और कभी विद्रोही सफल भी होते देखे जाते हैं, परंतु प्राप्त राज्य उनके पास रहता नहीं। राज्य का अधिकारी शौर्य, न्याय और धर्म से योग्य व्यक्ति होता है, न कि वह जो विद्रोह उत्पन्न कर सकता हो।

"हमारे महाराज का कहना है कि दो-तीन विद्वान आपके पक्ष के और दो-तीन राज्य के पक्ष के एक स्थान पर बैठकर निश्चय कर लें कि कौन राज्य चलाएगा। यदि दोनों पक्ष सहमत हो जाएँ तो उस अधिकारी के पक्ष में जनमत तैयार किया जाए और उसे राज्य करने के लिए अवसर दिया जाए और यदि वे विद्वान ही सहमत न हों तो किसी एक अन्य विद्वान को मध्यस्त मानकर उसके कथन के अनुसार हम सब कार्य करें।

"यही हमारे महाराज का कहना है। वह स्वयं राज्य करने नहीं आए। उनमें राज्य करने की लालसा भी नहीं है। कश्मीर के प्रतिनिधि मंत्रिमंडल ने महाराज विक्रम से कहकर उनको बुलाया था। तीन वर्ष से ऊपर हो गए हैं उनको राज्य करते हुए। राज्य के विद्वान और धनी-मानी लोग उनके राज्य से प्रसन्न हैं। प्रजा पहले से अधिक धन-धान्य सम्पन्न है। पिछले वर्ष राज्य में सूखा पड़ा था, परंतु राज्य-प्रबंध ऐसा किया गया था कि एक भी मनुष्य अथवा पशु भूख से नहीं मरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ऐसी अवस्था में अकारण राज्य-परिवर्तन में कोई युक्ति नहीं। महाराज मातृगुप्त का कहना है कि यदि यह सिद्ध हो जाए कि राजकुमार प्रवरसेन का राज्य वर्तमान स्थिति में सुधार और उन्नति कर सकेगा तब वह स्वयं राजगद्दी छोड़ देंगे।"

महामंत्री के वक्तव्य पर मंगलापुर की राज्य समिति के सदस्य मौन रहे। इसमें कोई भी बात ऐसी नहीं थी जिसको अस्वीकार किया जा सकता। इस पर भी पूर्व निश्चयानुसार जयेंद्र ने कह दिया, "मंत्री महोदय, हमने आपकी बात सुन ली है। अब हम एकांत में इस प्रस्ताव पर विचार करेंगे और तब अपनी सम्मति आपके सम्मुख रखेंगे।"

इस पर विचार समाप्त हुआ और समिति के सदस्य उठकर जाने लगे तो विश्रवा ने कहा, "भगवन्, यदि मेरे एक दो प्रश्नों का उत्तर भी दे दें तो मैं समझता हूँ कि हमारे विचार करने में सुविधा रहेगी।"

महामंत्री और उसके साथी पुनः बैठ गए और प्रश्न पूछे जाने की प्रतीक्षा करने लगे। विश्रवा ने कुछ देर आँखें मूँदने के बाद कहा, "क्या आपने इतिहास में ऐसे राजाओं की बात कभी पढ़ी है जो राजा बनने के समय कम वयस के होने के कारण वह कुछ अधिक नहीं जानते थे और अनुभव करने पर वे अति योग्य शासक बन गए?"

"हाँ, ऐसे लोगों के विषय में इतिहास में उल्लेख आया है। परंतु हमने योग्यता की बात कही है, अनुभव की बात नहीं कही। एक विद्वान और योग्य व्यक्ति को जब कार्य करने का अवसर मिलता है। तो उसके अनुभव का परिणाम भिन्न होता है और अविद्वान, मूर्ख, बुद्धिविहीन को जब कार्य करने का अवसर मिलता है तो उसका अनुभव भिन्न होता है।

"हमारे महाराज ने योग्यता की परीक्षा के लिए कहा है। अनुभव तो कार्य से प्राप्त हो जाएगा। परंतु योग्यता कार्य से नहीं, वरंच शिक्षा, सत्संग और विद्या से जानी जाती हैं।

"इसी के आधार पर प्रतिनिधियों की सभा विचार करेगी। किसी का राजा की संतान होना अथवा किसी का रंग गोरा अथवा काला होना, किसी की रूप-राशि सुंदर अथवा असुंदर होना उसके शासन करने की योग्यता में नहीं गिनाए जा सकते।"

इस पर विश्रवा ने पूछा, "मान लीजिए, दोनों पक्षों के प्रतिनिधि किसी एक को राजा बनाने में सहमत हो जाते हैं, परंतु सेना और प्रजा उस निर्णय को पसंद नहीं करती, तब क्या होगा?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"दोनों पक्ष के नेता लोग सत्य हृदय से उस व्यक्ति के पक्ष में प्रयत्न करेंगे और प्रजा में प्रचार करेंगे। सेना में अथवा सेना की शिक्षा-दीक्षा के लिए व्यक्तिगत प्रचार का कुछ भी प्रभाव नहीं होता। सेना तो आदेश मानने का स्वभाव रखती है। इस कारण सेना के नेताओं को समझाएँगे। यदि वे नहीं मानेंगे तो उनके नेताओं पर अधिकार प्राप्त करने का यत्न करेंगे। वह अधिकार प्रजा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। और प्रजा को समझाया जा सकता है। सेना को आदेश दिया जा सकता है। आदेश देने में युद्ध भी हो सकता है।

"परंतु जयेंद्रजी, अभी तक सेना महाराज मातृगुप्त की अनुचर है। जब वह प्रतिनिधियों के निर्णय को मानेंगे तो सेना भी मानेंगी।"

"मेरा अंतिम प्रश्न यह है कि क्या वर्तमान कश्मीर राज्य का मंत्रिमंडल सौगंधपूर्वक यह वचन देगा कि प्रतिनिधिमंडल अथवा मध्यस्थ के निर्णय को स्वीकार कर उसका पालन करेंगे?"

"यह बात दोनों पक्षों के लिए है। हम मंत्रिमंडल के प्रतिनिधि हैं, अतः जब आप मंत्रिमंडल के प्रतिनिधियों का प्रस्ताव मानते हैं तो निस्संदेह मंत्रिमंडल उस प्रस्ताव को स्वीकार करेगा। आपको भी यही करना होगा।"

विश्रवा के लिए अब पूछने को अन्य कुछ नहीं था।

:: 5 ::

मंत्रिमंडल के अपने निवास-स्थान को चले जाने के बाद मंगलापुर राज्य-समिति की बैठक हुई। यद्यपि जयेंद्र अभी भी इस विचार का था कि श्रीनगर से आया प्रतिनिधि मंडल एक छलना मात्र है, परंतु जब समिति के अन्य सब सदस्यों ने प्रतिनिधि मंडल के प्रस्ताव को स्वीकार करने को कहा तो विचार होने लगा कि कौन-कौन प्रतिनिधि हो जो वार्तालाप करने जाए और फिर एकदम राज्य ले लेने से लेकर कम से कम क्या माँगने के लिए तैयार हो जाए।

जयेंद्र का कहना था, "मैं समझता हूँ कि समय प्राप्त करने के लिए और प्रजा को तथा सेना को शांत करने के लिए यह सब दिखावा किया जा रहा है। समय पाकर प्रजा शांत हो जाएगी। हम लोगों के साथ श्रीनगर में मान-प्रतिष्ठा का व्यवहार कर लोगों को यह बताया जाएगा कि राज-परिवार को स्वीकार कर लिया गया है और जब हमारे पक्ष के लोग अपनी विजय की प्रसन्नता में अपने काम-काज में लीन हो जाएँगे तब चुपचाप राजपरिवार के मुख्य पुरुष को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
चित्रपट से निकाल दिया जाएगा, बंदी बनाकर अथवा मृत्यु के घाट उतारकर। राजकुमार को दूर किया जा सकता है। तदनन्तर कश्मीर में एक नये राजपरिवार की स्थापना हो जाएगी। उस परिवार का उत्तराधिकारी उत्पन्न हो चुका है।''

विश्रवा जानता था कि जयेंद्र में यह उसका क्षत्रिय स्वभाव बोल रहा है। इस कारण उसने इस स्वभाव के कार्य की दिशा बदलने के लिए कहा, ''जयेंद्रजी का संशय ठीक हो सकता है, परंतु यह संशय और इसके प्रतिकार का विचार तो श्रीनगर में चलकर किया जाना चाहिए। हमें अपने रहन-सहन और सुरक्षा का प्रबंध प्रत्येक स्थिति में रखना ही चाहिए। इन बातों पर अभी विचार करने का समय नहीं है। इस समय तो यह विचार करिए कि पूर्ण राज्य-समिति बातचीत करने के लिए जाएगी अथवा एक-दो व्यक्ति। यदि पूर्ण समिति को जाना है तो इस प्रकार की, वर्तमान और भविष्य की सुरक्षा की बातें पूर्ण मंत्रिमंडल की बात सुनकर विचार करेंगे।

''मेरा विचार है कि दो अथवा तीन व्यक्तियों का प्रतिनिधिमंडल जाना चाहिए। शेष सदस्य भी श्रीनगर में कहीं समीप ही होने चाहिए जिससे प्रतिनिधियों में होने वाली वार्तालाप पर भलीभाँति विचार-विमर्श कर प्रतिनिधि मंडल में निर्णायक वार्तालाप कर सकें। इससे हमारे लिए संधि चर्चा से उठ आने का अवसर बना रहेगा।''

अंजना समझ रही थी कि किसी प्रकार का समझौता होने जा रहा है। अत: उसने कहा, ''समझौते की शर्तों पर विचार हो जाना चाहिए। विचार-विमर्श से निर्णय की गई शर्तों पर बातचीत हो।''

संतोषीलाल ने शर्तों पर बात आरंभ कर दी। उसने कहा, ''हमारा यहाँ तैयारी में दस लाख स्वर्ण व्यय हो चुका है। हमें संधि से पहले वह माँग लेना चाहिए।''

जयेंद्र ने मुस्कराते हुए कहा, ''यह तो होना ही चाहिए। हमारी विजय का प्रथम लक्षण तो यही है। कि जिन लोगों से हमने सहायता के लिए यह धन प्राप्त किया है, उन्हें वापस करें। परंतु यह शर्त सबसे अंत में होनी चाहिए। जिस लक्ष्य प्राप्ति के लिए यह धन व्यय किया गया है। उस लक्ष्य को हमें पहले प्राप्त करना चाहिए।''

अंजना ने जयेंद्र की बात का समर्थन किया। उसने कहा, ''यदि धन न भी दिया गया तब भी जब प्रवर को कोई अधिकार मिला तो उस अधिकार का प्रथम प्रयोग तो यही होना चाहिए कि जिनसे हमने जो-जो सहायता ली है, उनको प्रसन्न करें और उनसे प्राप्त सहायता का उचित प्रतिकार दें।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अब विश्रवा ने बताया, "हमारी प्रथम माँग यह होनी चाहिए कि प्रवरसेन को तुरंत राजगद्दी पर अभिषिक्त किया जाए। इसके लिए मंत्रिमंडल तैयार नहीं होगा। इस पर भी हमारा आग्रह यही होना चाहिए।

"इस पर भी मेरा विचार यह है कि इस प्रकार का परिवर्तन न संभव है और न ही उचित। धीरे-धीरे और सरलता से राज्याधिकार वर्तमान अधिकारियों के हाथ से प्रवरसेन और उसके साथियों के हाथ में आ सके तो सर्वोत्तम है।"

इसकी प्रक्रिया पर विचार होने लगा तो प्रवरसेन को युवराज घोषित किए जाने पर आग्रह होने पर विचार हुआ। युवराज पद से कम किसी भी स्थिति के लिए उनको नहीं मानना चाहिए।

राजमाता का कहना था, "इस पूर्ण, अधिकारयुक्त राजा अथवा युवराज पद में सबसे अधिक बाधा वह नर्तकी और उसकी लड़की होगी जिसने एक पुत्र को जन्म दिया है। इस कारण हमें उस पक्ष को संतुष्ट करने का भी विचार कर रखना चाहिए।"

जयेंद्र का कहना था, "उनका मुख बंदीगृह की ओर होना चाहिए। जैसे प्रवर के पिता को बंदीगृह में डाला गया था वही स्थान मातृगुप्त की कथित पत्नी और उसके पुत्र का होना चाहिए। नर्तकी को कुछ वृत्ति देकर किसी गाँव में रहने को स्थान मिल जाना चाहिए।"

संतोषीलाल का कहना था, "उसकी पूर्ण सम्पत्ति जप्त कर उसे देश-निष्कासन का दंड देना चाहिए।"

"किस अपराध के लिए?" विश्रवा का प्रश्न था।

"उसने एक साधु स्वभाव वाले ब्रह्मचारी विद्वान को मोहजाल में फँसाकर उसे गृहस्थ में धकेला है।"

अंजना हँस पड़ी और बोली, "मुझे विश्वस्त सूत्रों से ज्ञात हुआ है कि उसके घर पर एक सौ रजत से अधिक का सामान नहीं है। वह स्वयं एक साधुनी विधवा के रूप में रहती है। उसकी जप्ती से तो लालाजी के व्यय किए धन का कुछ भी प्रतिकार प्राप्त नहीं होगा।"

विश्रवा का कहना था, "मृणालिनी और उसके बच्चों को बंदीगृह में डालने के स्थान उसे सुख-सुविधा से रखा जाए जिससे माँ-पुत्र दोनों के अंगों में हराम की कमाई खाने की लत लग जाए और वे संसार में बेकार हो अपनी अस्वाभाविक मृत्यु का शिकार हो जाएँ।"

"यह सब कल्पना मात्र है," अंजना ने कहा, "मेरी सम्मति है कि हम सब मुख्य-मुख्य लोग श्रीनगर चलें और मातृगुप्त से मिलें और मंत्रिमंडल के इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथन की सत्यता का अनुमान लगाएँ कि वह राज्य की लालसा नहीं करता। साथ ही मंत्रिमंडल से वार्तालाप करें और प्रवर की उन्नति और प्रभुता के लिए मार्ग बनाएँ। इसके साथ ही जितना भी संभव हो सके, वहाँ के जनसाधारण और शिष्टजनों से संबंध बनाएँ।''

विश्रवा ने रानी अंजना की योजना का समर्थन किया और बात निश्चित हो गई। अगले दिन मंत्रिमंडल के प्रतिनिधि आयोग को पुनः विचार-विमर्श के लिए बुलाया गया और कुछ विचार-विनिमय और श्रीनगर में रहने की सुविधाओं के विषय में निश्चय कर जयेंद्र, अंजना, प्रवरसेन, विश्रवा और संतोषीलाल श्रीनगर को चल पड़े।

मंत्रिमंडल का आयोग भी इनके साथ-साथ अपना पृथक् शिविर लगाता हुआ चल रहा था। इस पर भी महामंत्री प्रवरसेन से नित्य सायंकाल विश्राम से पूर्व पृथक् में एक घंटा विभिन्न विषयों पर वार्तालाप करता था। वास्तव में वह प्रवरसेन के ज्ञान और अध्यात्म के विषय में अनुमान लगा रहा था।

पंद्रह दिन की यात्रा के उपरांत दोनों पक्ष श्रीनगर पहुँचे। महामंत्री ने महाराज मातृगुप्त को यह सूचना पहले ही भेज दी थी कि प्रवरसेन और उसकी माता अंजनादेवी, पूर्व महाराज हिरण्य के भाई तोरमाण की पत्नी, भी साथ आ रहे हैं। इस सूचना पर मातृगुप्त ने यह आज्ञा दी कि मेहमानों का नगर-प्रवेश पर स्वागत किया जाए। उनके आने के उपलक्ष में नगर को सजाया जाए और उनको राजसी रथों पर बिठाकर नगर के मुख्य-मुख्य मार्गों पर घुमाते हुए राजप्रासाद में लाकर ठहराया जाए।

मंगलापुर के अन्य लोगों को भी राजप्रासाद के अतिथि-गृह में ठहरा दिया गया। जयेंद्र को मंगलापुर से आए आयोग के यह टुकड़े करने पसंद नहीं आए। उसने पंडित विश्रवा को इस पर अपने असंतोष का परिचय दिया।

विश्रवा ने कहा, ''यह ठीक तो नहीं हुआ, परंतु जयेंद्रजी, बुद्धिमान व्यक्ति वह होता है जो प्रत्येक परिस्थिति से लाभ उठा सके। इस स्थिति से भी लाभ उठाया जा सकता है। हम परस्पर तो मिला ही करेंगे। इससे हम राजप्रासाद के भीतर की बातें भी जान सकेंगे।''

जयेंद्र को यह पसंद नहीं था और वह समझ रहा था कि इससे आयोग में मतभेद उत्पन्न हो सकता है। उसे इस बात का भय था।

''परंतु आपत्ति तो अंजनादेवी को करनी चाहिए थी। उसने की नहीं।''

मंगलापुर से आए आयोग के श्रीनगर में पहुँचने के अगले दिन प्रातः अल्पाहार के समय मंत्रिमंडल की विशेष बैठक में महामंत्री ने उपस्थित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिस्थिति पर एक वक्तव्य दिया। उसमें उसने बताया कि मंगलापुर में तो सैनिक तैयारी की जा रही प्रतीत हुई है, यद्यपि वह सैनिक तैयारी युद्ध के लिए प्रतीत नहीं होती। मेरा विचार है कि वह एक राजा की शोभा के निमित्त की गई है जिससे सामान्य जनता में यह भास हो कि वहाँ कोई राजा ठहरा हुआ है।

''परंतु हमें पूर्ण मार्ग भर और आस-पास के क्षेत्र, जहाँ से भी हम समाचार प्राप्त कर सके हैं, की प्रजा में भारी हलचल प्रतीत हुई है। लोग इस बात से प्रसन्न हैं कि महाराज प्रवरसेन का उत्तराधिकारी मिल गया है। जहाँ तक उस उत्तराधिकारी को राजगद्दी पर बिठाने की बात है, प्रजा में मतभेद है। प्राचीन राज्यपरिवार से मोहवश ही बहुत लोग उस परिवार को पुनः अपनी राजसी मान-मर्यादा दिलाना चाहते हैं।''

महामंत्री ने यह भी बताया, ''ऐसे लोग भी हैं जो वर्तमान राज्य के लाभ को अनुभव करते हैं और वे कह नहीं सकते कि इस राज्य को बदलने से किसी प्रकार का लाभ होगा।

''महाराज का यह प्रस्ताव हमारे पास पहुँचा था कि मंगलापुर के लोगों को यह सुझाव दिया जाए कि महाराज विक्रमादित्य से निर्णय लिया जाए, परंतु हमने इसको एक दूसरे ढंग से उपस्थित किया है। हमने प्रस्ताव किया था कि दो-दो अथवा तीन-तीन व्यक्ति दोनों ओर के बैठकर इस परितवर्तन के हानि-लाभ पर विचार करें, एक मत से निर्णय दें। यदि दोनों पक्ष एकमत न हो सकें तो फिर दोनों पक्ष किसी एक को मध्यस्थ निश्चित कर लें और दोनों पक्ष मध्यस्थ के निर्णय को मानने का सौगंधपूर्वक वचन दें आर उसके निर्णय का पालन किया जाए।''

''महाराज, हमारा अभिप्राय महाराज विक्रमादित्य को ही मध्यस्थ मानने का है।''

इस वक्तव्य पर मंत्रिमंडल में विचार-विनिमय आरंभ हुआ। सुरक्षा मंत्री शूरसेन ने कहा, ''महाराज, राज्य-कार्य ब्राह्मणों का काम नहीं, यह क्षत्रियों का काम है। युद्ध के बिना इसका निश्चय नहीं होगा।''

महामंत्री ने पूछा, ''युद्ध किससे करोगे।''

''जो वर्तमान राज्य से विद्रोह करेंगे।''

''वह तो प्रजा करेगी। तो क्या राजा प्रजा के साथ युद्ध करेगा?''

''चोर-डाकू भी तो प्रजा में ही होते हैं।''

इस पर मातृगुप्त ने कहा, ''राज्य के विरुद्ध विद्रोह और चोरी अथवा डाका डालने में कुछ भी अंतर नहीं मानते, शूरसेन?''

''महाराज, दोनों डाका डालना चाहते हैं। एक प्रजा के किसी एक-आध

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटक की सम्पत्ति पर डाका डालता है और दूसरा देश के मनोनीत राजा पर डाका डालना चाहता है।''

''शूरसेन,'' महामंत्री ने कहा, ''लोग कहते हैं कि वर्तमान राज्य प्राचीन राज्य-परिवार पर डाका डाल रहा है। इस विवाद का निर्णय युद्ध से कैसे होगा?''

''जैसे संसार भर में होता है।''

''जैसे कौरव और पांडवों में हुआ था?''

शूरसेन मुख देखता रह गया। उसे मौन देख मातृगुप्त ने कहा, ''मैं समझता हूँ कि शूरसेन सामान्य संसार की बात करते हैं और हमारे महामंत्री बुद्धिशील व्यक्तियों की बात कर रहे हैं। मैं दोनों में समझौते की बात कहता हूँ। युद्ध से निर्णय पशुओं की बात है। मनुष्य पशु भी है और देवता भी। दोनों में एक संधि-स्थान है। इस कारण इसे दोनों की बात सुननी चाहिए और यत्न करना चाहिए कि दोनों में संधि हो जाए। संधि होने से संधि-स्थान पर स्थित मनुष्य को लाभ होगा।

''देखिए शूरसेनजी, अभी तक दूसरे पक्ष ने बुद्धिमत्ता की बात ही की है। यदि कोई सामान्य मनुष्य होता तो किसी विदेशीय राज्य से सहायता लेने चल पड़ता। ऐसा इस देश में पहले हो चुका है। महाराज मेघवाहन के बाबा युधिष्ठिर को गद्दी से हटाने के लिए मंत्रियों ने विदेशी राज्यों से सहायता ली थी और परिणामस्वरूप देश एक सौ वर्ष तक दासता में फँसा रहा था। विदेशियों ने देश को लूटकर इसे निर्धन बना दिया था।

''इस बार प्रवरसेन के साथियों ने यह नहीं किया। इससे मैं यह समझा हूँ कि उस पक्ष में कम से कम कोई एक प्रखर बुद्धिमान व्यक्ति है जिसकी उनमें चलती भी है।

''इस कारण मेरी सम्मति मानो। उस व्यक्ति का पता करो और हमें उससे पृथक् में बातचीत करने दो। मुझे पूर्ण आशा है कि वह युक्तियुक्त व्यवहार अपनाएगा।''

''वह तो अंजनादेवी प्रतीत होती हैं'' शूरसेन ने कहा, ''स्त्री होने से वह अवश्य युद्ध से डरती होंगी।''

महामंत्री हँस पड़ा। उसने कहा, ''अंजनदेवी वास्तव में एक भली स्त्री है। परंतु वह किसी प्रकार की विशेष बुद्धि रखती प्रतीत नहीं हुईं। यदि वह बुद्धिमान होतीं तो पंद्रह-सोलह वर्ष तक एक कुम्हार के झोंपड़े में न पड़ी रहतीं।

''मेरे विचार में उनमें एक व्यक्ति गुरुजी के नाम से विख्यात है। नाम है पंडित विश्रवा। वह व्यक्ति मानयुक्त संधि करने का इच्छुक प्रतीत होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"राजकुमार प्रवरसेन तो साधु स्वभाव, विरक्त प्रवृत्ति का युवक प्रतीत होता है। इस पर भी वह विशेष बुद्धि का स्वामी प्रतीत नहीं हुआ।"

"तो मैं मातंगीदेवी से उनके विषय में पता करूँगा। कल रात अंजनादेवी और प्रवरसेन मृणालिनी देवी और मातंगीदेवी से मिलते रहे हैं। इसी कारण मैंने उनको राजप्रासाद में ठहराया है। रात वे दोनों अपनी समिति के साथियों से वार्तालाप करने गए हुए थे, इस कारण मुझसे भेंट नहीं हो सकी।

"हम पुन: सायंकाल एकत्रित होंगे। इस समय तक महामंत्री उन लोगों से मिलकर निश्चय करेंगे कि वार्तालाप का आधार क्या होगा।"

मंत्रिमंडल की बैठक विसर्जित हुई तो महामंत्री ने उठते हुए कहा, "मैं एक बात पर सुदृढ़ हूँ कि वर्तमान राज्य और मंत्रिमंडल बदला नहीं जाएगा।"

:: 6 ::

अब दोनों ओर परस्पर वार्तालाप और साँझी गोष्ठियाँ होने लगीं। मातृगुप्त पहले ही दिन मध्याह्न के भोजन के समय प्रवरसेन के साथ भोजन करने बैठा तो मातृगुप्त को प्रवरसेन, राजसी तेजयुक्त युवक प्रतीत हुआ। मातृगुप्त ने पूछा, "राजकुमार, राजनीति का भी कुछ अध्ययन किया है?"

"जी, महाभारत, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति और कौटिल्य शास्त्र पढ़ा है। शुक्र-नीति का भी अध्ययन किया है।"

"भला यह बताओ कि किस बात में सब नीतिशास्त्र सहमत हैं?"

"सबके सब प्रजा की भलाई के लिए लिखे गए हैं। भलाई करने के उपायों पर सबमें कहीं-कहीं मतभेद है।"

"यदि राज्य-कार्य चलाने के लिए राजा को अनृत भाषण करना पड़े तो क्या स्मृतिकार इसकी स्वीकृति देते हैं?"

"मनु इत्यादि तो स्वीकृति नहीं देते। वे वंचना, धोखाधड़ी केवल शत्रु से ही क्षम्य मानते हैं। शुक्र और कौटिल्य राज्य के लिए अपनी प्रजा से भी लुकाव-छुपाव की स्वीकृति देते हैं।"

"और तुम क्या समझते हो?"

"इस विषय में मुझे मनु की नीति और महाभारत में कही बात अधिक पसंद है। महाभारत में और मनुस्मृति में कहा है कि राजा को अनृत भाषण नहीं करना चाहिए। राजा ऐसा करेगा तो लोग उसका विश्वास करना छोड़ देंगे और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब राज्य में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी।''

''और तुम राज्य, राजा की सम्पत्ति मानते हो?''

''यह कैसे हो सकता है,पंडितजी। ऐसा युधिष्ठिर मानता था। उसने राज्य को जुए पर लगा दिया था और परिणामस्वरूप भयंकर युद्ध हुआ।''

''और यदि युधिष्ठिर जुआ खेलने न जाता तो क्या दुर्योधन उससे बैर करना छोड़ देता ?''

''महाभारत पढ़ने से तो मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि दुर्योधन पूर्वजन्म के कर्मों से दुष्ट स्वभाव रखता था। उसकी शिक्षा-दीक्षा भी ठीक नहीं हुई थी। इस कारण ऐसा प्रतीत होता है कि यदि जुए का खेल न होता तो दुर्योधन और शकुनि युद्ध का कोई अन्य बहाना ढूँढ लेते।

''इस पर भी मेरा विचार है कि तब युद्ध में दुर्योधन को इतने साथी न मिलते जितने कि युधिष्ठिर के जुआ खेलने के उपरांत मिल गए। अनेकों नरेश युधिष्ठिर को मूर्ख समझने लगे।''

''तो तुम युधिष्ठिर को धर्ममूर्ति नहीं मानते?''

''जहाँ तक उसका धृतराष्ट्र से वनवास को जाने के वचन पालन का प्रश्न है, वह पालन करना धर्म ही था। परंतु वह वचन देना और उस वचन के लिए जुआ खेलने की योजना में सम्मिलित होना और उसमें राज्य और पत्नी इत्यादि को भी हार जाना तो मूर्खता के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं कहा जा सकता।''

''तो तुम समझते हो कि युधिष्ठिर धर्मात्मा तो था, साथ ही मूर्ख भी था।''

''जी, साथ ही मैं यह समझता हूँ कि वह अपने अधिकारों की सीमा को नहीं जानता था। परमात्मा सर्वशक्तिमान है, इस पर भी उसकी शक्ति में वह नहीं कि वह भले और पुण्यात्माओं को पीड़ित भी करता रहे। यही बात युधिष्ठिरादि ने की थी। उसका अधिकार नहीं था कि वह अपनी पत्नी को दाँव पर लगा दे। पत्नी पति की सम्पत्ति नहीं होती। यह अनार्य व्यवहार था। यह धर्म नहीं हो सकता।''

मातृगुप्त इस प्रकार भोजन करते हुए पूर्ण समय प्रवरसेन से वार्तालाप करता रहा।

उसी दिन मध्याह्नोत्तर अल्पाहार के समय मातृगुप्त ने विश्रवा को कहला भेजा कि वह उसके साथ अल्पाहार लेकर अति प्रसन्न होगा।

विश्रवा इनकार नहीं कर सका, यद्यपि जयेंद्र को यह सब शतरंज की चालें प्रतीत होती थीं। परंतु जब विश्रवा महाराज के साथ अल्पाहार लेने के लिए तैयार हुआ तो वह उसे मना नहीं कर सका।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्रवा जब मातृगुप्त के निजी बैठकघर में अल्पाहार के लिए पहुँचा तो उसे यह देख विस्मय हुआ कि महाराज ने वहाँ रानी अंजनादेवी, अपनी पत्नी मृणालिनी और प्रवरसेन को भी बुलाया हुआ था। मातृगुप्त का लड़का मारुति जो इस समय तीन वर्ष का था, वहां उपस्थित था।

विश्रवा ने नमस्कार किया तो मातृगुप्त ने सबका परिचय करा दिया। अंजना और प्रवरसेन का परिचय तो था। मृणालिनी, मातंगी और मारुति का परिचय करा मातृगुप्त ने बताया, ''पंडितवर, एक प्राणी अभी और है। वह अभी एक मास की वयस की बच्ची है, इस कारण वह नहीं आई। वह मृणालिनी की मुझसे उत्पन्न लड़की महिमा है।''

विश्रवा को विस्मय इस बात पर हुआ कि मातृगुप्त तो बहुत बड़ी आयु का प्रतीत हुआ था और मृणालिनी अभी बच्ची मात्र दिखाई देती थी। इस समय उसकी आयु उन्नीस वर्ष की थी।

विश्रवा को विस्मय में लीन देख मातृगुप्त हँस पड़ा और बोला, ''मृणालिनी के बच्चे मेरे यहाँ आने के बाद ही हुए हैं क्योंकि यह यहाँ की ही पैदावार है। मेरा इससे विवाह यहाँ मेरे राज्याभिषेक के बाद हुआ था।''

''और आपकी पहली पत्नी?''

''यही पहली पत्नी है। मुझे स्त्री-दर्शन इसी के द्वारा हुआ है।''

''तब तो यह आपकी अति प्रिया होगी?''

''उतनी ही जितने आप हैं।'' इस पर तो सब हँसने लगे।

विश्रवा ने कहा, ''महाराज, मैं तो प्रौढ़ावस्था का पुरुष हूँ और रानीजी निश्चय ही स्त्री हैं और अभी अल्पायु की ही प्रतीत होती हैं।''

''पंडितवर, इस पर भी यह आपके समान ही विदुषी हैं। यह मेरी प्रिया हैं, क्योंकि इनकी सांसारिक और आध्यात्मिक ज्ञान में दूर तक पहुँच है। आपके विषय में भी राजकुमार प्रवर की परीक्षा से मेरा यही अनुमान है।''

''और भगवन्, आप इसके रूप-लावण्य के लिए इससे प्रेम नहीं करते?''

''मैं इसी को रूप-लावण्य समझता हूँ। रही संतान की बात। यह यहाँ के राज्य की माँग थी कि मैं राज्य को एक राजकुमार दूँ। वह मैंने दिया तो इसकी माँ ने एक लड़की की माँग उपस्थित कर दी क्योंकि मृणालिनी के कोई भाई नहीं है। दोनों माँगें पूरी कर मैं तो इस दिशा में कृतकार्य अनुभव करता हूँ। अब मैं यहाँ पर हूँ तो केवल राज्य चलाने के निमित्त।''

''परंतु आप यह राज्य का बोझा किस कारण ढो रहे हैं?'' विश्रवा का प्रश्न था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''जैसे एक राजकुमार के निर्माण का कार्य किया था, इसी प्रकार यहाँ पर धर्मयुक्त शासन करने का कार्य भी किसी ने सौंपा हुआ है।''

''कौन है वह जिसने आपको यह राज्य सौंपा हुआ है?'' विश्रवा का विचार था कि मातृगुप्त परमात्मा का नाम लेगा। परंतु उसने विक्रमादित्य नाम बता दिया और अपने कश्मीर आने का संक्षिप्त इतिहास भी बताया। साथ ही उसने कहा, ''यदि यह मेरे परम मित्र ओर शुभचिंतक महाराज विक्रम का आदेश न होता तो कदाचित् मैं अभिषेक के समय उठकर चल देता। मैंने कदाचित् शब्द का प्रयोग किया है। यह इस कारण कि उस समय मेरे मन में यह भी विचार उत्पन्न हुआ था कि जीवन में किसी देश पर शासन करने का अनुभव भी प्राप्त कर देखना चाहिए कि इसका स्वाद कैसा होता है। दोनों भावों में कौन प्रबल था, यह बताना कठिन है। परंतु थे दोनों उपस्थित।''

''तो भगवन्, आपने पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर लिया होगा?''

''वैसे तो मैं कुछ दिन में ही इस कार्य से ऊब गया था। मैंने अपने यहाँ रहने के साढ़े तीन वर्ष में नवीन कविता का एक पद भी नहीं लिखा। मैं अनुभव करता हूँ कि जीवन में ये तीन वर्ष सर्वथा व्यर्थ गए हैं। जैसे लिखे पर जल पड़ जाने से एक पंक्ति घुल जाती है और उसमें लिखा नहीं रहता, यही बात इन तीन वर्षों में हुई है।''

''तब तो भगवन्, आपको यह राज्य छोड़कर एकदम चल देना चाहिए।''

''आप यहाँ के मंत्रिमंडल को राजी कर लीजिए। उसके कहने पर ही महाराज विक्रमादित्य ने मुझे यहाँ भेजा हुआ है। मंत्रिमंडल के मान जाने पर महाराज विक्रम की नियुक्ति निरर्थक हो जाएगी और मैं यहाँ से चल दूँगा। यदि यहाँ का मंत्रिमंडल न माने तो विक्रमादित्य से कहिए। वह मेरे स्थान पर प्रवरसेन को नियुक्त कर देंगे। उनका अपना कुछ भी स्वार्थ इसमें नहीं है। जहाँ तक मेरा ज्ञान है उनका इतना स्वार्थ भी नहीं जितना मेरा है। और मैं तो इस राज्य को छोड़कर प्रसन्न ही हूँगा।''

अब अंजना ने पूछ लिया, ''और भाई साहब, क्या यहाँ की प्रजा का अधिकार नहीं कि वह अपना शासक निर्माण करे?''

''प्रजा के सब अंग एक समान विचारशील नहीं हैं। पूर्ण प्रजा अपनी शारीरिक आवश्यकताओं में तो समान है, परंतु अपने भविष्य के विषय में भले-बुरे का विचार करने के योग्य नहीं है। इस कारण इसके बुद्धिशील अंश से पूछा जाए तो आपके कथन में कुछ सार होगा।

''प्रजा में विचारशील अंश को ढूँढना कठिन होगा। ज्योंही आप निश्चय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने लगेंगे कि कौन बुद्धिमान है और कौन जड़ बुद्धि है, तो ये परस्पर लड़ पड़ेंगे। यह मानव प्रकृति है कि जड़ से जड़ बुद्धि व्यक्ति भी अपने को प्रकांड विद्वान से भी अधिक बुद्धिमान मानता है। मनुष्य में अहं की भावना प्रकृति ने निर्माण की है। यह उसी भावना का फल है। इस भावना पर नियंत्रण कर सकने वालों से ही मेरा पूछने का आशय है। प्रजा के परस्पर झगड़े में गृहयुद्ध भी हो सकता है और जड़ बुद्धि वालों की दिग्विजय भी हो सकती है। कारण यह कि वह संख्या और शारीरिक बल में अधिक होंगे।''

विश्रवा इस सत्य को मानता था। इस कारण वह जयेंद्र की इस माँग के औचित्य को जानता था कि सेना-सेना में युद्ध से निर्णय कर लिया जाए, प्रजा में गृहयुद्ध होने पर हानि अधिक होगी। विनाश भी महान होगा और देश की प्रगति एक शताब्दी तक अवरुद्ध हो जाएगी। साथ ही गृहयुद्ध सदा अनिर्णीत होते हैं।

अत: जयेंद्र का कहना था कि सेनाओं में युद्ध कम हानिकारक होगा। परंतु विश्रवा का विचार था कि सेनाओं में युद्ध भले ही कम हानिकारक हो, परंतु वह भी उतने ही विफल होते हैं जितने कि गृहयुद्ध।

विश्रवा ने जयेंद्र का विचार भी उपस्थित कर दिया। उसने कहा, ''भगवन्, यह तो ठीक है कि प्रजा के एक अंश और दूसरे अंश को युद्ध से बचना चाहिए परंतु सेनाएँ परस्पर युद्ध का निश्चय कर लें तो क्या हानि है?''

''हानि कम तो है, इस पर भी निर्णय सत्य और कल्याणकारी होगा क्या? मुझे इसमें संदेह है। साथ ही पंडितवर मैं जानता हूँ कि सैनिक युद्ध में राजकुमार प्रवरसेन की पराजय होगी। कुछ लोग अपने क्षत्रिय स्वभाव से युद्ध में मरकर संतोष अनुभव करेंगे, परंतु राजकुमार प्रवरसेन की पराजय होगी। कारण यह कि युद्ध में विजय कराने वाले कई अंग हैं। सैनिकों का शारीरिक बल, उनका बौद्धिक बल, उनके शास्त्रास्त्र का बल, धन-बल और सबसे अधिक सत्य और न्याय पक्ष का बल। मैं समझता हूँ कि आपका पक्ष इन सब प्रकार के बलों में कम है।

''इस कारण मेरा सुझाव है कि कुछ बुद्धिशील लोग बैठकर विचार-विनिमय से निर्णय कर लें कि वे राज्य के लिए मेरी सेवाएँ लेना चाहते हैं अथवा राजकुमार प्रवर की। यह भी हो सकता है कि वह विद्वत् मंडल दोनों की सेवाएँ रखना चाहे। कुछ भी हो, यह उसके निर्णय करने का काम होना चाहिए। न प्रजा का, न मेरा अथवा प्रवरसेन का।''

विश्रवा ने मुस्कराते हुए कहा, ''महाराज, तब तो विश्व-भर में से युद्ध-प्रणाली नि:शेष हो जाएगी।'' उसके मुस्कराने में कारण यह था कि यह होगा नहीं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और वह मातृगुप्त को अपने कथन की व्यर्थता हृदयंगम करा देगा।

"नहीं, पंडितजी महाराज, यह नहीं होगा। कारण यह कि संसार में मित्र और शत्रु, बुद्धिमान और मूर्ख, धर्म और अधर्म तो फिर भी रहेगा। मेरी यह योजना तो देश के भीतरी झगड़ों के लिए है। विदेशी, विपरीत हितों को रखने वाले, दुष्ट स्वभाव वाले और अराष्ट्रवादियों के विषय में नहीं है।

"अपने देश में भी यदि देश के बुद्धिमान लोगों की महिमा बनाकर रखी जाए और उनकी गोष्ठियाँ होती रहें तब ही यह योजना चल सकती है।"

अब अंजना ने पुनः वार्तालाप में हस्तक्षेप करते हुए कहा, "भैया, यह क्यों न किया जाए कि जनमत संग्रह कर लिया जाए और समय-समय पर जनमत लिया जाया करे?"

"यह तभी हो सकता है जब जनता में बुद्धिशीलों की संख्या अधिक हो। यह अस्वाभाविक है। बुद्धिमानी का स्तर सामान्य जनता में ऊँचा किया जा सकता है। परंतु उस पर भी तुलना में विद्वान बहुत कम संख्या में होंगे और जड़ बुद्धि अधिक होंगे।

"वे मानेंगे नहीं कि वे जड़ बुद्धि हैं। यह न मानना ही तो उनमें जड़ बुद्धि का सूचक होगा। उन जड़ बुद्धि लोगों को वाक्पटु और शारीरिक प्रलोभनों में फँसाने वाले विजय पा जाएँगे। वास्तविक बुद्धिशील, जो जनता को त्याग और तपस्या का मार्ग बताएँगे, वे पिछड़ जाएँगे। मूर्खों और धूर्तों की विजय होगी और निश्चय ही व्यापक ह्रास उत्पन्न होगा।"

अब प्रवरसेन ने पूछा, "आप विद्वानों की सम्मति मानेंगे?" इस समय तक भोजन समाप्त हो चुका था।

"मैं उनके कहने से ही यहाँ बँधा हुआ हूँ अन्यथा मैं यहाँ आता ही नहीं। मैं तो भगवान् महाकाल का उपासक हूँ। अपने जीवनकाल को उस महाकाल का एक नगण्य अंश मानता हूँ। इसमें प्रभुता की कुछ भी गणना नहीं मानता।"

:: 7 ::

इसके उपरांत अगले दिन मंत्रिमंडल की बैठक हुई और उसमें पहले दिन हुई मंत्रिमंडल की बैठक और मंगलापुर की समिति में हुए वार्तालाप पर विचार-विमर्श हुआ। मातृगुप्त ने भी अपने मन पर प्रवरसेन और उसके गुरु विश्रवा के प्रभाव का वर्णन किया। मंत्रिमंडल के प्रतिनिधियों का वार्तालाप मुख्य रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
महामंत्री चित्रगुप्त ने ही वर्णन किया। उसने बताया, ''अंजनादेवी और पंडित विश्रवा तो राजकुमार को युवराज के पद पर नियुक्त किए जाने पर प्रसन्न प्रतीत होते हैं, परंतु उनके प्रतिनिधि मंडल में एक वैश्य समुदाय के व्यक्ति संतोषीलाल हैं और दूसरे प्रवर के मामा जयेंद्र हैं। ये दोनों तुरंत प्रवरसेन को पूर्ण अधिकार-सम्पन्न राजा बनाए जाने पर हठ कर रहे हैं।''

मातृगुप्त का कहना था, ''संतोषीलाल को तो उसके द्वारा व्यय किया धन मिल जाने का आश्वासन दे देने से काम बन जाएगा और जयेंद्र को मंत्रिमंडल में मंत्री स्वीकार कर लेने पर राजी किया जा सकेगा।''

इस पर चित्रगुप्त ने कहा, ''अंजनादेवी का विचार था कि मृणालिनी और उसके लड़के मारुति के विषय में भी निश्चय हो जाना चाहिए। वह चाहती थीं कि मृणालिनी को जीवन-भर के निर्वाह के लिए वार्षिक शुल्क नियत कर दिया जाए और मारुति की शिक्षा-दीक्षा के लिए राज्य की ओर से उचित प्रबंध कर दिया जाए।''

''मैं समझता हूँ,'' मातृगुप्त का कहना था, ''विश्रवा को युवराज के गुरुपद पर नियुक्त कर दिया जाए जिससे उसकी शेष शिक्षा-दीक्षा पूर्ण होती रहे। उसका पद युवराज के निजी सचिव का भी हो सकता है।''

कश्मीर राज्य के मंत्रिमंडल में सबसे अधिक असंतुष्ट शूरसेन, सुरक्षा मंत्री था। वह सेनाध्यक्ष भी था और मातृगुप्त का विचार था कि उसे भी संतुष्ट करना चाहिए अन्यथा वह पीछे विद्रोह भी कर सकता है। इस कारण उसने कहा, ''मैं समझता हूँ कि शूरसेनजी के लिए मंत्रिमंडल में स्थान सुरक्षित कर लेना चाहिए।''

शूरसेन का कहना था, ''जिस मंत्रिमंडल में जयेंद्र होगा उसमें मैं कार्य नहीं करूँगा।''

मातृगुप्त ने कहा, ''मैं समझता हूँ कि यदि प्रवरसेन युवराज बनने पर उनका मंत्रिमंडल में आना स्वीकार करें तो शेष बातें तो व्यक्तिगत प्रवृत्तियों की रह जाएँगी। उनके विषय में ले-दे की जा सकती है।

''मुझसे मृणालिनी की माता मातंगी ने कहा है कि वह केवल एक बात चाहती है कि उन्हें श्रीनगर में रहते हुए अपने शिक्षणालय को चालू रखने की स्वीकृति मिल जाए। इसके अतिरिक्त वह न तो राजसी कोष में से किसी प्रकार की सहायता चाहती हैं और न ही किसी प्रकार का पद।''

''और मृणालिनीदेवी क्या चाहती हैं?''

''मुझे उससे उसकी इच्छा जानने का अवसर नहीं मिला। परंतु मुझे पता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
चला है कि अंजनादेवी निरंतर मृणालिनी से हेल-मेल रख रही हैं और उसके मनोभावों को जानने का यत्न कर रही हैं।

"इस विषय में भी महामंत्री चित्रगुप्त उससे स्वयं मिलकर पता करें कि वह क्या चाहती हैं? यह मंत्रिमंडल की ही योजना थी कि वह राजमाता बने। वर्तमान परिस्थिति में मंत्रिमंडल उसे क्या बनाना चाहेगा, यह उसे ही निश्चय करना चाहिए।"

इस वार्तालाप से यह स्पष्ट ही था कि अभी कुछ भी निश्चय नहीं हुआ। दोनों पक्ष एक-दूसरे के मनोभावों को जानने का यत्न कर रहे थे।

उसी सायंकाल मंत्रिमंडल के प्रतिनिधि मंडल और मंगलापुर समिति में वार्तालाप हो रहा था। मातृगुप्त अपने कार्यालय में राज्य-कार्य कर रहा था। महामंत्री चित्रगुप्त और दो अन्य मंत्रिगण मंगलापुर राज्य समिति से चल रहे वार्तालाप के कारण अपने राज्य-कार्य को देखने के लिए समय नहीं पा रहे थे। इस कारण रात बहुत देर तक मातृगुप्त को राज्य सचिवालय से अवकाश नहीं मिला था। रात भोजन के समय ही वह राजप्रासाद के अपने आगारों में आ सका था।

उस दिन वह भोजनालय में जाने योग्य वस्त्र पहनने अपने वस्त्रागार को जा रहा था वहाँ मातंगी, मृणालिनी और एक अन्य स्त्री खड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही थीं। मातृगुप्त ने ध्यान से इस तीसरी स्त्री को देखा तो पहचान गया। वह उज्जयिनी के महाकाल के मंदिर के पुजारी पंडित चंद्रशरण की लड़की नंदिनी थी। मातृगुप्त उसे पहचान स्तब्ध खड़ा रह गया। तदनन्तर सावधान हो पूछने लगा, "देवी, तुम नंदिनी हो?"

"हाँ, भगवन् एक क्षुद्र लौह कण की भाँति चुम्बक की ओर आकर्षित हो चली आई हूँ।"

"कब आई हैं देवीजी?"

"आज मध्याह्न के समय ही यहाँ पहुँची थी। पांथागार के अध्यक्ष से यहाँ की पूर्ण कथा सुन माता मातंगीजी से मिलने चली आई थी।"

"तो यहाँ अकेली आई हो?"

"नहीं महाराज, पिताजी के रथ का सारथी साधु साथ है। महाराज, वहाँ क्रांति सम्पन्न हो गई है।"

पूर्व इसके कि मातृगुप्त इस क्रांति के विषय में पूछे, मातंगी ने कहा, "महाराज, क्या यह अच्छा नहीं होगा कि पहले भोजन कर लिया जाए? तदनन्तर उज्जयिनी के समाचार को जाना जाए।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मातृगुप्त ने नन्दिनी की ओर देखा और पूछा, ''क्यों नन्दिनी, भूख लगी है ?''

''महाराज, माता मातंगीजी से पता चला है कि आपको मध्याह्नोत्तर के अल्पाहार का भी समय नहीं मिला। इस कारण माताजी का सुझाव ठीक ही प्रतीत होता है।''

अत: मातृगुप्त वस्त्र बदलने वस्त्रागार में चला गया। मृणालिनी भीतर साथ-साथ थी। वस्त्र पहनते हुए मातृगुप्त ने पूछा,''यह नन्दिनी राजप्रासाद में कब आई थी ?''

''महाराज, मध्याह्नोत्तर अल्पाहार के समय सेविका सूचना लाई थी कि उज्जयिनी से कोई स्त्री महाराज से मिलने आई है और इच्छा करती है कि महारानीजी से पहले मिल ले।

''इस पर मैंने इसे भीतर बुला लिया। इसने अपनी और अपने आपसे संबंध के विषय में पूर्ण कथा सुनाई है। बहुत लंबी कथा है। यह सब भोजनोपरांत नंदिनी देवी स्वयं ही आपको अवगत कराएँगी।''

इस प्रकार भोजनालय में चारों प्राणी जा पहुँचे। वहाँ अंजनादेवी और प्रवरसेन भी आए हुए थे और महाराज के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

भोजन करते हुए अंजनादेवी ने यह सूचना दी, ''भैया, दोनों पक्षों में समझौता हो गया है।''

''क्या समझौता हुआ है ?'' मातृगुप्त ने मुस्कराते हुए पूछ लिया।

''यह निश्चय हुआ है कि प्रवर को युवराज तुरंत नियुक्त कर दिया जाए और महाराज विक्रमादित्य से निवेदन किया जाए कि वह आपको शीघ्रातिशीघ्र उस कार्य से मुक्त कर दें जिस पर उन्होंने आपको नियुक्त किया था।

''साथ ही यह निर्णय हुआ है। कि वर्तमान मंत्रिमंडल बिना किसी प्रकार के परिवर्तन के कार्य करे। पंडित विश्रवा युवराज के निजी सचिव नियुक्त हों।''

इस पर नन्दिनी ने भोजन करते हुए कहा, ''महाराज, इस समझौते पर श्रीमान की किसी प्रकार की आज्ञा से पूर्व मेरी भी बात सुन ली जाए। मैं भी कुछ कहने के लिए आई हूँ।''

''हाँ, तुम भी कहो।''

''महाराज! मैं भोजनोपरांत आपको सबसे पृथक् में कहूँगी।''

''और बहन अंजनादेवी,'' मातृगुप्त ने पूछ लिया, ''मृणालिनीदेवी के विषय में भी कुछ निश्चय हुआ है ?''

''जब तक आप महाराज हैं, यह महारानी पद की अधिकारिणी मान ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई हैं। तदुपरांत जो कुछ पद आपका होगा उसके अनुसार ही इनकी पदवी रहेगी।''

''क्यों मृणालिनी, तुमने क्या विचार किया है?''

''मैं तो इन बच्चों का प्रबंध होते ही आपके साथ वानप्रस्थ लेने का विचार रखती हूँ।''

''परंतु तुम्हारी आयु अभी उस आश्रय के योग्य नहीं है।''

''वानप्रस्थ तो किसी अन्य आश्रम के लिए शरीर, मन और जीवात्मा को तैयार करने का स्थान है। मैं भी यत्न करूँगी। नहीं कर सकूँगी तो यत्न करने में हानि है क्या?''

अंजनादेवी का कहना था, ''समझौते के अनुसार इसका अवसर अभी दूर है। और भैया, तब और अब में क्या अंतर पड़ जाएगा—कुछ नहीं कहा जा सकता।

''मुझे यह ज्ञात हुआ है कि आपके मंत्रिमंडल में और हमारी राज्य-समिति में दो जीव हैं जो सब बातों का निर्णय युद्ध से समझते हैं। एक हैं मेरे भाई जयेंद्र और दूसरी ओर यहाँ के सुरक्षा मंत्री तथा सेनाध्यक्ष शूरसेनजी। मुझे कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि निकट भविष्य में इन दोनों में द्वंद्व युद्ध हो जाएगा।

''यह भी संभावना प्रतीत होती है कि यह द्वंद्व युद्ध सैनिक युद्ध हो जाए। इसमें आप शांति कराने का यत्न करें तो कुछ आशा की जा सकती है कि युद्ध न हो।''

मातृगुप्त मुस्कराया और बोला, ''इसमें दोनों पक्ष के लोगों को यत्न करना चाहिए कि यह दोनों शूरवीरों में द्वंद्व युद्ध तक ही सीमित रहे।''

''मैं तो इसके आगे जाना चाहती हूँ। वह यह कि दोनों को कश्मीर में जागीर देकर अपनी-अपनी जागीर का प्रबंध करने पर लगा दिया जाए।''

मातृगुप्त ने कहा, ''जयेंद्रजी मान जाएँ तो शूरसेन के लिए भी यत्न किया जा सकता है।''

:: 8 ::

महाराज मातृगुप्त के निजी आगारों के बैठकघर में बैठे हुए नंदिनी उज्जयिनी की कथा बता रही थी। मातंगी और मृणालिनी भी वहाँ बैठी थीं। नन्दिनी ने बताया, ''आपके उज्जयिनी से चले आने के उपरांत मेरे पुत्र कमल के पिता आचार्य ने मुझसे झगड़ा करना आरंभ कर दिया। उसका आरोप था कि मैं असती हूँ और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपसे अनुचित संबंध रखती हूँ। मैंने बहुत समझाया, परंतु वह नहीं माने। इसके उपरांत महाराज विक्रमादित्य और उनके महामंत्री वररुचि ने उसको समझाने का यत्न किया। इसका परिणाम यह हुआ कि हममें अस्थायी रूप में संधि हो गई और कमल की एक बहन भी उत्पन्न हो गई। इसके उपरान्त वह पुनः अयुक्त व्यवहार करने लगा। पिताजी को पता चला तो उन्होंने गणिताचार्यजी के विरुद्ध एक अभियोग चलाया। उसमें गंभीर आरोप थे। उन आरोपों से भयभीत होकर गणिताचार्य उज्जयिनी से लापता हो गए।

''आज से डेढ़ मास पूर्व रात के समय मुझे अपने शयनागार के बाहर कुछ हलचल प्रतीत हुई तो मैंने उठकर शयनागार का द्वार खोला और देखना चाहा कि क्या हो रहा है। वहाँ सर्वथा अंधकार था। मैंने शयनागार का दीपक लेकर बाहर देखना चाहा तो किसी ने मेरे हाथ पर प्रहार किया और दीपक हाथ से छूटकर बुझ गया। मैंने सेविका सुधा को आवाज दी, परंतु उत्तर नहीं मिला। मैं टटोल-टटोल कर उसके आगार की ओर जाने लगी तो मेरे शयनागार में मेरे लड़के और लड़की के चीखें मारने का शब्द सुनाई दिया और तुरंत ही वह शब्द बंद हो गया। मानो किसी ने उनका गला दबा उनकी आवाज बंद कर दी हो।

''मैं इससे भयभीत हो सुधा के शयनागार की ओर भागी, परंतु मेरा पाँव किसी वस्तु से अटका और मैं गिर पड़ी। मैंने टटोल-टटोलकर देखना चाहा कि किस वस्तु से पाँव अटका है। वहाँ गरम-गरम कुछ द्रव हाथों को लगा और किसी का मृत शव भूमि पर पड़ा प्रतीत हुआ था। इस पर मैं अचेत हो गई।

''जब मैं सचेत हुई तो प्रभात का प्रकाश होने लगा था। मुझे कुछ देर लगी पूर्ण चैतन्यता प्राप्त करने में। जब चेतन हुई तो पता चला कि वह वस्तु जिससे मेरा पाँव अटका था, सुधा मौसी का शव था और वह गरम-गरम द्रव अँधेरे में टटोलते हुए हाथों को जो लगा था, मौसी के शरीर का रक्त था। उसके पेट में किसी ने छुरा घोंप दिया था। मैंने उसी समय शयनागार में जाकर देखा। वहाँ दोनों बच्चों की गला घोंटकर हत्या की गई थी।

''मैं तुरंत वस्त्र बदल अपने पिता के घर को गई। जब पिताजी को अपने घर में हो गई दुर्घटना सुनाई तो उन्होंने कहा कि उनको कुछ दिन हुए एक पत्र मिला था। उसमें लिखा था—महाकाल का कोप आप पर प्रकट होने वाला है। आपमें से कोई भी बच नहीं सकता।

''राज्य में इन हत्याओं की सूचना दी गई और राजसी जाँच आरंभ हो गई। परंतु मेरे संबंध में पिताजी को धमकी का एक पत्र और आया कि भूल से नन्दिनी की सेविका मार दी गई है क्योंकि वह नन्दिनी समझ ली गई थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

''महाराज विक्रमादित्य के महामंत्री और उज्जयिनी में उनके स्थानापन्न वररुचि आजकल पाटलिपुत्र गए हुए हैं। उनके स्थानापन्न मंत्री हत्यारे की खोज कर रहे हैं। परंतु पिताजी की यह सम्मति है कि मैं उज्जयिनी से कहीं बाहर चली जाऊँ। मैंने यही उचित समझा कि आपके दर्शनों के लिए श्रीनगर जाया जाए।

''पिताजी ने सहायता कर दी है। धन, रथ और सारथी साधु दिए हैं। हम चालीस दिन में यहाँ पहुँच गए हैं। जिस दिन मैं उज्जयिनी से चली थी उसी दिन यह समाचार मिला कि महाराज विक्रमादित्य रुग्ण हैं। इसी कारण वररुचि पाटलिपुत्र गए हुए थे।''

मातृगुप्त गंभीर विचार में मग्न नन्दिनी का मुख देखता रह गया। फिर कुछ विचारकर उसने कहा, ''तुम्हें वहीं कहीं छुपकर रहना चाहिए था।''

''महाराज, मैं तो तब से ही आपके दर्शन करने के लिए विचार कर रही थी जब से कमल की बहन का जन्म हुआ था, परंतु अवसर नहीं मिल रहा था।

''जब पिताजी ने कहा कि मुझे उज्जयिनी से कहीं बाहर जाकर छुप जाना चाहिए तो मैंने तुरंत निश्चय कर लिया कि छुपना ही है तो कश्मीर में ही छुपना ठीक रहेगा।

''मैंने पिताजी से कह दिया था कि वह यह प्रचारित कर दें कि मैं पूर्व की ओर गई हूँ। कदाचित् महाराज विक्रम से याचना करने का विचार रखती हूँ। यह इस कारण था कि हत्यारे को यदि मेरा पीछा करना हो तो पाटलिपुत्र का मार्ग पकड़ ले जबकि मैं वहाँ से पश्चिम की ओर चल पड़ी थी।

''एक बात यह हुई कि जिस दिन मैं उज्जयिनी से चलने वाली थी उसी दिन वहाँ यह समाचार आया कि महाराज विक्रम की अवस्था शोचनीय है।''

''परंतु यहाँ तो ऐसा कोई समाचार नहीं। हमारे मंत्रिमंडल ने आज ही यह निश्चय किया है कि मेरे विषय में महाराज से कहा जाए कि वह मुझे यहाँ से वापस बुला लें।''

''हमें भी मार्ग में किसी प्रकार का समाचार नहीं मिला। परंतु महाराज, मैं जब उज्जयिनी से चली थी तो दो-दो पड़ाव का एक करती हुई चली आई हूँ।''

मातृगुप्त मुस्कराया और कहने लगा, ''इसका अभिप्राय यह है कि हमें नन्दिनी की सुरक्षा के लिए राज्य को सतर्क करना पड़ेगा।''

नन्दिनी चुप रही। मातृगुप्त ने बात समाप्त करते हुए कहा, ''अच्छा, अब तुम पांथागार में जाओ। मैं तुम्हारे वहाँ पहुँचने से पूर्व ही तुम्हारी सुरक्षा का प्रबंध करवा दूँगा।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नन्दिनी और मातंगी गई तो मातृगुप्त ने मृणालिनी से कहा, ''मुझे कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि मुझे कश्मीर से बहुत जल्दी जाना पड़ेगा।''

''किसलिए?''

''एक तो समझौता होने से मैं अपने-आपको मुक्त पाता हूँ। प्रवरसेन को युवराज पद पर आसीन करते ही मैं राज्य-कार्य से अपना हाथ खींच लूँगा और शीघ्र ही राज्य का कार्यभार प्रवर को सौंपकर यहाँ से चल दूँगा।''

''बिना महाराज विक्रमादित्य की आज्ञा के ही यहाँ से चल देंगे?''

''मेरी आत्मा कुछ ऐसा कह रही है कि मित्र भारतसम्राट विक्रमादित्य इस समय इस पृथ्वी पर नहीं हैं।''

''कैसे कहते हो?''

''मृणाल, बता नहीं सकता। परंतु लक्षण कुछ ऐसे ही प्रतीत होते हैं उनके देहांत हो जाने की अवस्था में न तो उनसे पूछने की आवश्यकता रहेगी और न ही मेरे लिए किसी प्रकार का कारण रहेगा यहाँ रहने का।''

''तो किधर जाइएगा?''

''हरिद्वार जाकर योग, ध्यान और तपस्या में शेष जीवन व्यतीत करने का विचार है।''

''मैं आपके साथ चलूँगी।''

''क्या करोगी चलकर?''

''जो वानप्रस्थ आश्रम में एक पत्नी पति के साथ करती है। वह सब आपसे सीख लूँगी।''

मातृगुप्त हँस पड़ा। हँसते हुए बोला, ''तुम मुझसे सीखोगी क्या? अभी तक तो तुम मुझे सिखाती रही हो। जो मार्ग तुमने मुझे बताया है उसी का परिणाम तो मारुति और महिमा हैं। अभी किसी अन्य की भी आशा करती हो?''

''नहीं महाराज, मैंने जो मार्ग दिखाया था वह दूसरा था। अब तो मैं आपसे मार्गदर्शन के लिए कह रही हूँ। इस कारण इस मार्गदर्शन का परिणाम दूसरा होगा।''

''अब तुम अपने बच्चों के पास जा सकती हो। आज माताजी तो नन्दिनी के साथ चली गई प्रतीत होती हैं।''

मृणालिनी अपने आगार में गई तो मातृगुप्त पलँग पर लेटा भविष्य के विषय में विचार कर रहा था। वह महाराज विक्रमादित्य का स्वास्थ्य समाचार जानने के लिए अति उत्सुक था। परंतु पाटलिपुत्र से छः-सात सौ योजन के अंतर पर होने के कारण समाचार शीघ्र पाने की आशा नहीं करता था। इस पर वह स्वयं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाटलिपुत्र जाने का विचार करने लगा था।

अब उसे समझ आने लगा था कि मृणालिनी उसके पाँव में बंधन बन रही है। मृणालिनी का विचार आते ही अब नन्दिनी के विषय में विचार करने लगा कि यह एक नई मुसीबत आई है। इन स्त्रियों के विचार से वह बहुत परेशान था और रातभर सो नहीं सका था। सूर्योदय से पूर्व ही वह अपने पूजा-पाठ के लिए तैयार हो जाया करता था। आज वह स्नानादि से अवकाश पा जब वीणा ले मंदिर को जाने लगा तो द्वार पर खड़े प्रतिहार ने झुककर प्रणाम किया और कहा, ''महाराज, महामंत्री आपकी मंदिर में प्रतीक्षा कर रहे हैं।''

''मंदिर में क्यों?''

''उनका विचार था कि इस समय आप वहाँ होंगे।''

''हाँ, आज वहाँ जाने में कुछ देर हो गई है।'' अत: वह लंबे-लंबे पग उठाता हुआ मंदिर की ओर चल पड़ा। मंदिर पर आज नित्य से अधिक लोग एकत्रित हो रहे थे। महामंत्री के आने के कारण प्रासाद के सेवक किसी विशेष घटना की आशंका में एकत्रित होने लगे थे।

यह बात तो सब जानते थे कि तोरमाण के पुत्र प्रवरसेन के साथ उसे राजा बनाने के विषय में वार्तालाप हो रहा है। इस कारण महामंत्री के इतने प्रात:काल महाराज से मिलने आने का संबंध इसी वार्तालाप से समझा जा रहा था।

जब मातृगुप्त वहाँ आया तो सेवक लोग महाराज के लिए मार्ग छोड़ आदरयुक्त मुद्रा में खड़े हो गए। मातृगुप्त समझ रहा था कि महामंत्री दोनों पक्ष की संयुक्त गोष्ठी का निर्णय बताने आया है। यह निर्णय वह रात अंजनादेवी के मुख से सुन चुका था। इस कारण वह चिंतित नहीं था। वह तो महाराज विक्रमादित्य से पूछने से पहले ही राज्य छोड़ने के लिए तैयार बैठा था। उसके मार्ग में मंत्रिमंडल ही बाधा थी। मंत्रिमंडल अभी भी इस राज्य परिवर्तन में कश्मीर देश और यहाँ की जनता का हित नहीं समझता था। इसी कारण वह परिवर्तन के पक्ष में नहीं था। इतना भी, कि प्रवरसेन को युवराज घोषित किया जाए, वह मातृगुप्त को प्रसन्न रखने के लिए माना था। अन्यथा जयेंद्र की बात सुन मंत्रिमंडल उसके भांजे को चुपचाप राजगद्दी देना नहीं चाहता था।

मातृगुप्त मंदिर में पहुँचा तो महामंत्री ने उठकर स्वागत किया और मातृगुप्त के प्रश्न-भरी दृष्टि से उसकी ओर देखने पर अति शोकमुद्रा में कहने लगा, ''महाराज, एक अति शोकमय समाचार लेकर आया हूँ।''

मातृगुप्त का मस्तिष्क कश्मीर राज्य की समस्या में उलझ रहा था। इस कारण वह कहने लगा,''रात में हुए समझौते की बात कर रहे हैं?''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'हाँ, वह भी है, परंतु···महाराज विक्रमादित्य के निधन का समाचार रात तीसरे प्रहर मिला है।''

यद्यपि मातृगुप्त नन्दिनी की बातों से ऐसी संभावना की आशंका कर सकता था, परंतु वह अपने विषय में रातभर विचार करने के कारण इस ओर की बात को भूल चुका था। इस कारण महामंत्री के मुख से सुन वह स्तब्ध खड़ा रह गया। एकाएक उसे अपने कर्त्तव्य का ध्यान आया। उसने कहा, ''राज्य-भर में तेरह दिन तक शोक मनाने की आज्ञा कर दीजिए। तीन दिन तक नगर में और राज्य में व्यवसाय बंद रहें और शेष कार्य के लिए मंत्रिमंडल की बैठक तुरंत बुलाई जाए।''

महामंत्री इस मंत्रिमंडल की बैठक तुरंत बुलाने में कारण नहीं समझ सका। इस कारण वह प्रश्न-भरी दृष्टि में मातृगुप्त का मुख देखने लगा।

मातृगुप्त ने कहा, ''आज हम अपना कीर्तन नहीं करेंगे। अपने कार्यालय में मंत्रियों की प्रतीक्षा करेंगे।''

''इसकी अभी आवश्यकता अनुभव नहीं होती। मैं समझता हूँ कि मंगलापुर के लोगों को तेरह दिन तक प्रतीक्षा करनी चाहिए। तब तक उनके विषय मैं विचार कर लिया जाएगा।''

''मैं समझता हूँ कि हमारा प्रतिनिधिमंडल किसी प्रकार का उनसे समझौता कर चुका है।''

''महाराज, उसी विषय में कह रहा हूँ।''

''मैं उसी विषय पर मंत्रिमंडल में विचार करना चाहता हूँ।''

इतना कह मातृगुप्त जैसे वीणा हाथ में पकड़े हुए था वैसे ही मंदिर से लौट गया। एकत्रित हुए लोगों ने यह समाचार सुन लिया था कि महाराज विक्रमादित्य का देहांत हो गया है और राज्य में तेरह दिन के शोक की आज्ञा हो गई है।

मातृगुप्त को कीर्तन किए बिना लौटते देख सब शोक मुद्रा में सिर झुकाए अपने-अपने स्थानों को लौट गए।

मातृगुप्त अपने आगार में पहुँचा तो मातंगी और मृणालिनी वहाँ खड़ी हुई थीं। मृणालिनी ने पूछा, ''महाराज, क्या बात है? आज पूजा नहीं हुई?''

''मेरे जीवन में एक मोड़ खिसककर कुछ समीप आ गया है। इस कारण आज कीर्तन के लिए भी अवकाश नहीं प्रतीत हुआ।''

''महाराज, यह तो मन की एक भयंकर परिस्थिति है। हम वेदानुयायियों के लिए तो जीवन में इतना समय है कि हम इसमें कभी भी हड़बड़ी अनुभव नहीं करते। जीवन अनादि और अनंत है। इस कारण कुछ भी कार्य ऐसा नहीं जिसके लिए समय न हो।''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"ठीक है मातंगीजी, परंतु मेरा अभिप्राय यह नहीं कि जीवन में समय शेष नहीं रहा। मैं तो यह कह रहा हूँ कि मोड़ इतना समीप आ गया है कि उस मोड़ पर घूमने के लिए कीर्तन करने का समय नहीं। एक बार मोड़ पर घूम गया तो फिर आराम से मार्ग पर चलता जाऊँगा।"

मातंगी समझी नहीं और महाराज के मुख पर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखने लगी। मातृगुप्त माँ-बेटी दोनों को परेशान देख फीकी सी हँसी के साथ हँस पड़ा और बोला, "आओ मृणालिनी, भीतर आ जाओ। माँ को भी साथ लेती आओ। एक घड़ी के बाद मंत्रिमंडल की बैठक होने वाली है। तब तक तुमको पूर्ण परिस्थिति से अवगत करा दूँगा।"

इस पर माँ-बेटी दोनों महाराज के साथ प्रासाद के इस विभाग में बैठकघर में पहुँच गईं। मातृगुप्त ने अपनी वीणा इसके लिए नियुक्त चौकी पर रख दी और समीप ही बैठ माँ-बेटी को बैठने के लिए कह दिया।

जब वे भी बैठ गईं तो मातृगुप्त ने कहा, "यह तो तुमने रात भोजन के समय अंजनादेवी के कथन से जान ही लिया होगा कि प्रवरसेन को युवराज बनाने का निर्णय हो गया है। उसने यह भी बताया था कि महाराज विक्रमादित्य से यह निवेदन किया जाए कि मुझे शीघ्रातिशीघ्र इस राज्य-भार से मुक्त कर दें।

"यह भी तुमने सुन लिया होगा कि नन्दिनी ने कहा था कि महाराज विक्रमादित्य रुग्ण हैं और उनका महामंत्री इसी कारण पाटलिपुत्र गया हुआ है।

"अब समाचार आया है कि महाराज विक्रमादित्य का निधन हो गया है। इस कारण दो नई परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई हैं। एक यह कि मुझे कश्मीर के राज्य-सिंहासन पर स्थापित करने वाला नहीं रहा। अत: उसका अधिकार भी उसके साथ ही चला गया है।

"यदि मेरी नियुक्ति मगध राज्य की ओर से होती तो मैं यहाँ पर मगध राज्य का एक राज्यपाल मात्र होता। मुझे यहाँ का स्वतंत्र राजा घोषित करने वाले तो महाराज विक्रमादित्य ही थे और वह अब नहीं रहे। इस कारण मैं इस समाचार के आते ही कश्मीर का राजा नहीं रहा।

"अत: कश्मीर राज्य अब पुन: मंत्रिमंडल के हाथ में चला गया है।"

"मगर महाराज, मंत्रिमंडल तो आपको यहाँ का राजा स्वीकार कर चुका है।"

"यह इस प्रकार नहीं, मातंगीदेवी। मंत्रिमंडल ने महाराज विक्रमादित्य से यहाँ के लिए किसी व्यक्ति की नियुक्ति की माँग की थी। वह व्यक्ति जो भेजा गया, मैं था। व्यक्ति की माँग यहाँ राजा बनाने के लिए थी। अत: जब मैं यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आया तो मुझे राजा बनाना स्वीकार किया गया। यदि मैं बिना माँग किए यहाँ आता और बिना महाराज विक्रमादित्य के भेजे आता तो मुझे राजा न बनाया जाता। अतः मंत्रिमंडल की स्वीकृति से महाराज विक्रमादित्य ने नियुक्ति की। इस कारण महाराज के निधन के उपरांत न मेरी नियुक्ति रही है और न मंत्रिमंडल के द्वारा उस नियुक्ति की स्वीकृति।''

''परंतु,'' मृणालिनी ने युक्ति करते हुए कहा, ''मंत्रिमंडल तो आपको स्वतंत्र रूप से नियुक्त कर सकता है।''

''हाँ, उनको अधिकार है और अब मुझे भी अधिकार है कि मैं मंत्रिमंडल की नियुक्ति स्वीकार करूँ अथवा न करूँ।''

''पर आप क्यों नहीं करेंगे?''

''मैं अब वानप्रस्थ लेना चाहता हूँ।''

माँ-बेटी दोनों मुख देखती रह गईं।

:: 9 ::

मंत्रिमंडल एकत्रित हो गया था। इस समय तक श्रीनगर में महाराज विक्रमादित्य के निधन का समाचार तथा उस पर कश्मीर नरेश की आज्ञा डुग्गी द्वारा प्रसारित की जा चुकी थी। साथ ही राज्य के प्रायः सब मुख्य-मुख्य स्थानों पर दूतों द्वारा सूचना भेजी जा चुकी थी।

मातृगुप्त मंत्रिमंडल की बैठक में आया तो पूर्ण मंत्रिमंडल ने खड़े होकर महाराज का स्वागत किया। महाराज ने सबको बिठाते हुए स्वयं खड़े-खड़े ही कहना आरंभ किया।

''मंत्रिगण, महाराज विक्रमादित्य के निधन का समाचार आपने सुन लिया होगा। इस निधन से मेरी इस राज्य में स्थिति में परिवर्तन हुआ है और वह परिवर्तन मैं आप सबको बताना चाहता हूँ। इसी कारण मैंने आप सबको एकत्रित होन का कष्ट दिया है।

''मेरी यहाँ पर नियुक्ति स्वर्गीय महाराज विक्रमादित्यजी ने की थी। उनके स्वर्गारोहण से उनकी यह आज्ञा समाप्त हो गई है। इस कारण मैं अब अपने को कश्मीर नरेश नहीं मानता।''

इस पर महामंत्री ने कहा, ''महाराज, बैठकर बात करिए।''

''यदि मंत्रिमंडल अपने मध्य में मातृगुप्त को बैठने की आज्ञा दे तो मैं बैठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता हूँ। अब मैं आपकी स्वीकृति के बिना कैसे बैठ सकता हूँ?''

महामंत्री चित्रगुप्त परिस्थिति को समझ रहा था। उसने मंत्रिमंडल से पूछ लिया, ''प्रिय मंत्री बंधुओ! उज्जयिनी के मातृगुप्त को मंत्रिमंडल में बैठने की स्वीकृति दी जाए?''

शूरसेन ने कहा, ''मैं महामंत्री के कथन में संशोधन करना चाहता हूँ। हम कश्मीर नरेश महाराज मातृगुप्त से प्रार्थना करते हैं कि वह बैठकर हमें आदेश दें। उनके खड़े-खड़े बात करने से हमें भय प्रतीत होता है।''

सब मंत्रिगण विस्मय में मुख देखते रह गए। उन्हें चुप देख महामंत्री ने कहा, ''महाराज, बैठिए। मंत्रिमंडल की स्वीकृति है कि आप बैठें।''

जब मातृगुप्त बैठ गया तो चित्रगुप्त ने कहा, ''बंधुओ! मातृगुप्तजी ठीक ही कहते हैं कि वह अब यहाँ के नरेश नहीं रहे। हमने स्वर्गीय भारतसम्राट से निवेदन किया था कि हमको राजा बनाने के लिए एक योग्य व्यक्ति भेजें। उन्होंने मातृगुप्तजी को भेजा और हमने उन्हें स्वीकार किया था।

''भारत सम्राट के निधन पर यह अनुभव करते हैं कि उनको यहाँ भेजने वाला अब नहीं रहा। अत: वह सेवामुक्त हो गए हैं।''

शूरसेन बात बीच में ही काटकर बोला, ''परंतु हमने मातृगुप्तजी से नरेश बनने का अधिकार वापस नहीं लिया।''

महामंत्री ने शूरसेन को समझाने का यत्न करते हुए कहा, ''हमने इनको अभी भी नरेश पद से नहीं हटाया, परंतु यह समझते हैं कि इनको यहाँ भेजने वाली नहीं रहा तो इनका यहाँ रहना आधार रहित हो गया है।

''परंतु हम मंत्रिमंडल के लोग इनको अभी पुन: कश्मीर नरेश नियुक्त कर इनसे निवेदन करते हैं कि मंगलापुर गाँव वालों से हमारे वार्तालाप के लिए नरेश बने रहें।''

''यह इतने सीमित समय के लिए ही है कि मैं आपके साथ बैठा हुआ उनको बुलाता हूँ और इसी समय उनसे निश्चय करता हूँ।''

''परंतु उनसे निश्चय तो मंत्रिमंडल करेगा?''

''मैं आपके इस अधिकार को छीन नहीं रहा। मैं तो यह कह रहा हूँ कि यदि उस निश्चय तक आप मुझे नरेश बने रहने की आज्ञा देते हैं तो मैं एक घड़ी के लिए स्वीकार करता हूँ। आप इतने समय में उनसे निश्चय करिए। इस निश्चय के होने अथवा न होने, दोनों अवस्थाओं में मैं एक घड़ी के उपरांत यहाँ से आपका काम छोड़कर चल दूँगा।''

सब मंत्रिगण अभी इस 'अन्त्यमेथम' का अर्थ समझ ही रहे थे कि शूरसेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उठा और बिना किसी से कुछ कहे द्वार की ओर चल पड़ा।

महामंत्री ने द्वार पर खड़े प्रतिहार को आवाज दी, ''द्वार बंद कर दो।''

शूरसेन ने कमर से बँधा खड्ग खोल से निकाल लिया। महामंत्री ने ताली बजाई तो दस सुभट द्वार से भीतर आ गए। महामंत्री ने उन्हें आज्ञा दी, ''शूरसेन को पकड़ लो।''

सुभटों ने भी खड्ग निकाल लिए। एक-दो वार ही हुए कि शूरसेन पर नियंत्रण पा लिया गया और उसे पकड़कर सुभट मंत्रिमंडल के आगार से बाहर ले गए। एक बगल के आगार में उसे बंदी बना दिया गया।

अब महामंत्री ने पुनः मातृगुप्त से कहा, ''आप क्या चाहते हैं?''

''मैं यह चाहता हूँ कि आप तुरंत प्रवरसेन से निर्णय करिए क्योंकि मैं उस समय के उपरांत नरेश नहीं रहूँगा। इस काल में आप जो कुछ निर्णय करेंगे, मैं उस पर हस्ताक्षर कर दूँगा।''

इस पर महामंत्री ने कहा, ''रात हमने मंगलापुर वालों से यह निश्चय किया था कि प्रवरसेन युवराज बनेगा और मातृगुप्तजी के विषय में भारतसम्राट से आज्ञा माँगेंगे। हमारा विचार था कि महाराज विक्रमादित्य से कहकर हम पाँच वर्ष तक युवराज के कार्य समझने तक मातृगुप्तजी की सेवाएँ यहाँ बढ़वा लेंगे। परंतु विक्रमादित्यजी के निधन के उपरांत मातृगुप्तजी को यहाँ बाँध रखना कठिन हो गया है।

''हमारे सम्मुख दो ही विकल्प हैं। या तो हम महाराज मातृगुप्त को हाथ-पाँव से बाँधकर सिंहासन पर बिठाए रखें अथवा इनको जानें दें और प्रवरसेन को राजा नियुक्त कर दें।''

इस पर एक मंत्री ने पूछ लिया, ''यह शूरसेन को आपने किस कारण बंदी बना लिया है?''

''वह राज्य और मंत्रिमंडल से विद्रोह करने जा रहा था। यदि वह सेना तक पहुँच जाता तो इस समय तो कश्मीर में सैनिक राज्य स्थापित हो जाता। मैंने मंत्रियों द्वारा राज्य की रक्षा के लिए शूरसेन को बंदी बना लिया है।''

मंत्रिमंडल स्थिति को समझ रहा था। इस पर अर्थमंत्री ने कहा, ''आप मंत्रिमंडल के इस निर्णय को महारानी अंजनादेवी के पास भेज दें और उनको अभी यहाँ बुलाकर उनसे यह वचन ले लें।''

मातृगुप्त ने महामंत्री द्वारा लिखित निर्णय पर हस्ताक्षर किए तो महामंत्री ने प्रवरसेन और उसकी माता को वहीं बुला लिया।

वे प्रासाद के एक आगार में स्नानादि से निवृत्त हो अल्पाहार लेने की तैयारी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर रहे थे कि महामंत्री का संदेश पहुँचा और वे मंत्रिमंडल में आ पहुँचे।

उनको महामंत्री द्वारा लिखित और मातृगुप्त द्वारा स्वीकृत मंत्रिमंडल का निर्णय सुना दिया गया।

इस पर प्रवरसेन ने कहा, "मुझे अपनी समिति से स्वीकृति लेनी है।"

"राजकुमार, जिससे चाहो सम्मति कर लो। परंतु चौथाई घड़ी में निर्णय करो अन्यथा यह निर्णय नहीं भी रह सकता है।"

"क्यों?" अंजना का प्रश्न था।

महामंत्री ने बात स्पष्ट कर दी। उन्होंने कहा, "इस कारण कि इस काल के उपरांत महाराज वानप्रस्थ लेने वाले हैं। उनके वानप्रस्थ लेते ही वह राजा नहीं रहेंगे और उनकी यह आज्ञा मानना मंत्रिमंडल के अधीन हो जाएगा। तब क्या होगा, मैं नहीं कह सकता।"

अंजनादेवी ने स्थिति को समझा और कहा, "हम आपके प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं, परंतु इस स्वीकृति के लिए हमारे प्रतिनिधिमंडल को तो आने दीजिए।"

"देखिए रानीजी, तुरन्त आप उनको बुला लें।"

अंजना के कहने पर प्रतिहार को भेजा गया और जयेंद्र तथा विश्रवा भागे-भागे आए और उनको पूर्ण परिस्थिति समझाई गई तो वे मान गए। चारों के हस्ताक्षर स्वीकृति के रूप में ले लिये गए।

अगले दिन मातृगुप्त वानप्रस्थियों के वस्त्रों में एक रथ में बैठे हुए और उनके पीछे-पीछे दूसरे रथ में मृणालिनी और नंदिनी भी भगवे वस्त्रों में राजप्रासाद से नगरद्वार की ओर चल पड़े। नगर में इस प्रस्थान का समाचार पहुँच चुका था और पूर्ण नगर के नर-नारी, बाल-वृद्ध राजमार्ग पर इस त्याग और तपस्या की मूर्ति को विदाई देने के लिए एकत्रित हो गए।

••

Central Library
167962
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar
081
167962

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
वर्ग संख्या R 089.9143 GUR-M आगत संख्या 167962

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुदत्त

8 दिसम्बर 1894
से
8 अप्रैल 1989

शिक्षा : एम. एस-सी.

प्रथम उपन्यास "स्वाधीनता के पथ पर" से ही ख्याति की सीढ़ियों पर जो चढ़ने लगे कि फिर रुके नहीं।

विज्ञान की पृष्ठिभूमि पर वेद, उपनिषद् दर्शन इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन आरम्भ किया तो उनको ज्ञान का अथाह सागर देख उसी में रम गये।

वेद, उपनिषद् तथा दर्शन शास्त्रों की विवेचना एवं अध्ययन अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत करना गुरुदत्त की ही विशेषता है।

उपन्यासों में भी शास्त्रों का निचोड़ तो मिलता ही है, रोचकता के विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि उनका कोई भी उपन्यास पढ़ना आरम्भ करने पर समाप्त किये बिना छोड़ा नहीं जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाकाल

हिन्दी के महान साहित्यकारों में से एक, श्री गुरूदत्त की कलम से निकले २५० ग्रन्थों मे से एक सशक्त ऐतिहासिक उपन्यास है महाकाल !

इस घटना प्रधान उपन्यास के भावो को प्रकट करने के लिए बीज महाकवि कलहण के ग्रन्थ राजतरंगिणी से लेकर एक अनुपम कृति देने का सफल यत्न ही है महाकाल !

ISBN -81-88388-38-6

हिन्दी साहित्य सदन
2 बी.डी.चैम्बर्स,
10/54, देश बंधु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005
Email : indiabooks@rediffmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar